वाराणसीस्थ आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यपीठाचार्य

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य-राम प्रपन्नाचार्य

योगीन्द्र प्रवर्त्तित विश्राम द्वारकास्थ श्री शेषमठ संचालित

ज.गु. श्री रामानन्दाचार्य-पीठ

सचित्र धार्मिक मासिक

संरक्षक- शेठ श्री अमरशी कुरजी मजिठिया

सम्पादक- स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य

सहसम्पादक- पं. शरच्चन्द्र शास्त्री

मध्ये मार्गपरिश्रान्तो विश्रामं प्राप्य शृङ्गिणः ।
आश्रमे परमारामे कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥
त्वया संस्थापितां मूर्तिं विश्रामद्वारकापते ।
अदृष्ट्वा द्वारकायात्रा नराणां निष्फला भवेत् ॥
यथा व्यासमनालोक्य काशीयात्राहिनिष्फला ।
तथैव द्वारकायात्रा ऋतेऽत्राऽगमनाद् भवेत ॥

कार्यालयः श्री कोसलेन्द्र मठ, सरखेज रोड, पालड़ी,
अहमदाबाद-३८०००७

वर्ष ४ विक्रमाब्द २०३९ अंक ११

श्रीरामानन्दाब्द ६८२ १ जनवरी १९८३

के द्वारा अग्निर्हिमस्य भेषजम्. ऊष्णत्वात्, सूर्यवत्, भी सिद्ध है। और अग्निर्हि,मस्य, भेषजम्—शु य. २३।१० इस शब्द प्रमाण द्वारा भी सिद्ध है। अतएव ये तीनों ही ज्ञ न स्वतन्त्र रूपेण प्रत्यक्ष, अनुमान, तथा शब्द से प्र प्त है। तब इन तीनों में किस प्रमाण को सबसे प्रबल माने ? शब्द प्रमाण के आग्रही कह उठेगे श्रुति प्रमाण को परन्तु यह कथन कथन मात्र है। क्योंकि न तो यह शब्द ज्ञान मौलिक ज्ञान है और न पूर्णतम अतः यह दोनों से प्रबल कभी हो नही सकना है। प्रत्यक्ष प्रमाण ही हमें अग्नि के हिम का औषध पूर्ण और यथार्थ ज्ञान प्राप्त कराता हैं। शब्द प्रमाण तो मात्र सङ्केत करता है पुनः वह सन्देह का भी विषय रहता उसमें विषयता का सङ्केत होने पर भी प्रकारता के यथार्थ अनुभव का अभाव रहता है। अतः यह अपूर्ण होने से प्रत्यक्ष के आगे निर्बल है। पुनः यह ज्ञान मौलिक भी नही है। इस मन्त्र के पूर्व मन्त्र में प्रश्न पूछा गया है—"किंस्विद्धिमस्य भेषजम शु. य. २३।९। अतएव यह ज्ञान प्रश्न जनित एतावता अमौलिक शब्द हैं॥ पुनः यह उत्तर 'गोः कृष्णत्वम् के समान अव्याप्त लक्षण हैं। इसका सल्लक्षण हिम का व्याघातक पद उष्ण होने से उष्णो हिमस्य भेषजम् ही होता। जो चिन्त्य हैं। यह शब्द ज्ञान प्रत्यक्ष एवं अनुमान से प्रबल नहीं प्रत्युतनिर्बल हैं। पुनः शब्द प्रमाण को दो प्रकार का माना गया हैं दृष्टार्थ, अदृष्टार्थ, स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात्—न्या. सु १।१।८। यहां दृष्टार्थ का प्रामाण्य प्रत्यक्ष से सिद्ध ह। एवं जिसका प्रामाण्य अनुमान से सिद्ध हो वह अदृष्टार्थक है—"सदृष्टार्थोऽपि

[शेष भाग टाइटल नं. ३ पर]

ईश्वर के साधक प्रमाण

ले० श्री वैदेहीकान्त शरण

क्रमागत

अत एव स्वयं ब्रह्मसूत्रकार एवं शंकराचार्य भी अनुमान के द्वारा ईश्वर को कर्मफल प्रदाता के रूप में सिद्ध करते हैं।

स्वतः प्रस्तुत प्रसङ्ग का सूत्र "शास्त्रयोनित्वात्" भी इस सूत्र में प्रयुक्त अनुमान बोधक हेतु वचन पञ्चमी विभक्ति (पञ्चम्यन्तं लिङ्गप्रतिपादकवचनं हेतुः त० सं०) के द्वारा ईश्वर को अनुमान द्वारा ही सिद्ध करने का सङ्केत करते हैं। यदि अनुमान द्वारा ईश्वर को सिद्ध करना इष्ट नहीं होता तो यहाँ अनुमान बोधक हेत्वर्थक पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग क्यों होता पुनः इस सूत्र में प्रयुक्त 'शास्त्र' पद व्यापक है, इसकी व्याप्ति अनुमान शास्त्र में भी अबाध है। अतः इस सूत्र से प्रत्यक्ष वा अनुमान का निषेध नहीं प्रत्युत ग्रहण ही होता है।

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः बृह०२।५।। "में परमात्मा को द्रष्टव्य (प्रत्यक्ष) एवं मन्तव्य (अनुमान) का विषय बतलाया गया है- "मुमुक्षुणा आत्मा द्रष्टव्यः, मुमुक्षोरात्मदर्शनमिष्टसाधनमिति। मन्तव्यः मननञ्चात्मन इतर भिन्नत्वेनानुमानम्।" "श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्योश्चोपपत्तिभिः। मत्वा च सततं ध्येयमेते दर्शनहेतवः। आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च। त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम्। "आगमेनानुमानेन ध्यानात्प्रत्यक्षणेन च। त्रिधात्मनि प्रमाणानां संप्लव ! स्वार्थमिष्यते।। खण्डनोद्धारे पृ० ३४०।।" श्री मद्भगवद्गीता भी अनुमान द्वारा परमात्मा का निरूपण करती है-

अनादित्वान्निर्गुणत्वात् परमात्मायमव्ययः ।

शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ।।गी. १३।३२।।

स्वयं सम्पूर्ण ब्रह्मसूत्र प्रायः हेतुओं द्वारा ही ब्रह्मज्ञान का निरूपण करते है—"ब्रह्मसूत्र पदैश्चैवं हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ।।गी. १३।४।।"

'अनुमान' शब्द में प्रयुक्त अनु पद का अर्थ पश्चात् और सादृश्य दोनों ही होता है—'अनु पश्चात्सादृश्योरपि ।।मे०।।"अतः अनुमान का अर्थ पश्चात् ज्ञान और सादृश्य ज्ञान दोनों है। उपनिषदों में भी इस सादृश्यज्ञान (अनुमान) के द्वारा ब्रह्म के जगत्कर्तृत्व का निरूपण किया गया है—"यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति । तथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाऽक्षरात्संभवतीह विश्वम् ।।मु० १।१।७।।" अतः उपनिषद् भी अनुमान द्वारा ब्रह्म के जगत्कर्तृत्व का प्रतिपादन करते हैं ।

न्यायाचार्य श्री उदयनाचार्य जी ने अकाट्य नव अनुमानों से जगत्कर्ता ईश्वर की सिद्धि की है—

"कार्यायोजन धृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः ।

वाक्यात् संख्या विशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः ।।न्या. कु ५।१।।

१. कार्यात्—क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् ।

सकर्तृकत्वं च उपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षा कृतिमज्जन्यत्वम् ।

२. आयोजनात्–'आयोजनं' कर्म, एवं च सर्गाद्यकालीन द्व्यणुकारम्भकपरमाणुद्वयसंयोगजनकंकर्मचेतनप्रयत्नपूर्वकं कर्मत्वात् अस्मादादि शरीरक्रियावत्।

३. धृतेः–'धृतीति ब्रह्माण्डादि पतनप्रतिबन्धकीभूत प्रयत्नवदधिष्ठितं धृतिमत्त्वात् वियति विहङ्गमधृतकाष्ठवत् धृतिश्च गुरुत्ववतां पतनाभावः।

४. आदेः-आदि पदात् नाशपरिग्रहः। 'ब्रह्माण्डादि प्रयत्नवद्विनाश्य, विनाशित्वात्, पाट्यमानपटवत्।

५. पदात्–पद्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या'पदं' व्यवहारः। पदादि सम्प्रदाय व्यवहारः स्वतन्त्र पुरुषप्रयोज्यः व्यवहारत्वात्, आधुनिक लिप्यादि व्यवहारवत्।

६. प्रत्ययकः–प्रामाण्यात्। वेदजन्यज्ञानं कारणगुणजन्यं प्रमात्वात्, प्रत्यक्षादिप्रमावत्।

७. श्रुतेः–वेदात्, 'वेदः पौरुषेयो वेदत्वात् आयुर्वेदवत्।

८. वाक्यात्–वेदः पौरुषेयो वाक्यत्वात्, भारतादिवत्। वेद वाक्यानि पौरुषेयाणि वाक्यत्वात्, अस्मादादि वाक्यवत्।

९. संख्याविशेषात्–द्व्यणुकपरिमाणं संख्याजन्यं परिमाण प्रचयाजन्यत्वे सति जन्यपरिमाणत्वात्।

तुल्य परिमाणक कपाल द्वयारब्ध घटपरिमाणात् प्रकृष्टताद‍ृश कपाल त्रयारब्धं घटपरिमाणवत्।"

इस प्रकार ईश्वर के साधक प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द–ये तीनों ही प्रमाण हैं। केवल शब्द प्रमाण ही नहीं। प्रत्यक्ष और

अनुमान को परमेश्वर का साधक प्रमाण नहीं मानने पर ईश्वर के प्रमात्व में त्रुटि होगी और वह यथार्थ वस्तु न होकर कवियों की कल्पना—' आकाश कमल के समान अलीक कोरा शाब्दिक विषय रह जायेगा। अत एव ईश्वर सर्व प्रमाण गम्य है। वस्तुतः वह प्रत्यक्ष करने योग्य है। शास्त्र भी उसके प्रत्यक्ष दर्शन (द्रष्टव्यः) करने का उपदेश करते हैं। अत एव प्रथम पक्ष नितान्त भ्रान्त है।

तृतीय पक्ष का कथन कि यदि ईश्वर प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों से सिद्ध नहीं हो सकता तो वह शब्द प्रमाण से भी सिद्ध नहीं हो सकता सर्वथा सत्य है। स्वयं उपनिषद् उसे शब्द का अविषय बतलाते है "यतो वाचो निवर्तन्ते आप्राप्य मनसा सह तैन्तिरीय०४-१— तब ब्रह्म के सम्बन्ध में शब्द प्रमाण कथमपि नहीं हो सकता है। पुनः स्वयं वेद कहते हैं कि इस सृष्टि को कौन जानता है कौन इसका वर्णन करे। यह सृष्टि किस उपादान कारण से उत्पन्न हुई ? किस निमिन्त कारण से ये विविध सृष्टि यां हुई ? सभी देवता तो सृष्टि के बाद उत्पन्न हुये है। कहां से सृष्टि हुई, यह कौन जानता है ? ये भिन्न-भिन्न सृष्टियां कहाँ से हुई किसने सृष्टि की और किसने नही की—यह सब वे ही जानते जो इनके अध्यक्ष परमधाम में रहते हैं। यह भी हो सकता है कि उन्हें भी इस सृष्टि रचना के बारे में कुछ भी मालूम नहीं हो-

"कोअद्धावेद कं इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
आर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आवभूव ॥

इयं विसृष्टिर्यत आवभूव यदि वा दवे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमेव्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥
ऋ० १०-१२९-६-७ ॥

अत एव जगत्सृष्टि की सिद्धि शब्द प्रमाण से कथमपि नही हो सकती । वेदोपदिष्ट परमेश्वर को इस सृष्टि का ज्ञान है या नहीं इसका अनिश्चय है ।

पुनः शब्द प्रमाण अपने प्रामाण्य के लिये परतन्त्र है (प्रमाया परतन्त्रत्वात्–न्या० कु० २।१७ शब्द प्रमाण का प्रमाण्य तभी होता है जब कि उसका वक्ता प्रमाण हो । आप्तोपदेशः शब्दः न्या०सू० १–१–७–आप्तः खलु साक्षात्कृत धर्मा । यथा दृष्टस्यार्थस्य चिख्यापयिषया प्रयुक्तः उपदेष्टा । साक्षात्करणमर्थस्याप्तिः । प्रवर्वते इत्याप्ततया । वा. भा. ॥" जब परमेश्वर को सृष्टि का ज्ञान है या नहीं का ही निश्चय नहीं है तब इस सम्बन्ध में शब्द प्रमाण है कैसे हो सकता ? पुनः हमारे लिये शब्द प्रमाण तो साक्षात् इस तत्त्व का साक्षात करनेवाले व्यक्ति का वाक्य ही हो सकता है । सुने हुये का वाक्य नहीं । ऐसा साक्षात् श्रुति नहीं अत एव यथार्थतः शब्द प्रमाण का इस प्रकरण में अभाव है । वेदादि के वाक्य उन साक्षात्कार किये प्रत्यक्ष दर्शी ऋषियों के वाक्य हैं या उन के नाम पर अन्य विद्वानों के ? इसका निश्चय नहीं है । अत एव शब्द प्रमाण का निश्चय नहीं है । अतः जब हम स्वतः प्रत्यक्ष दर्शी आप्त व्यक्ति वाक्य नहीं प्राप्त कर उनके

नाम पर सुनी सुनाई बात सुनते हैं तब वह पुरुष के मीमांसा शास्त्र प्रतिपादित भ्रम प्रमाद, विप्रलिप्सा आदि पुरुष दोष युक्त होने से कैसे प्रमाण हो सकता है ? शब्द प्रमाण तो सभी धर्मी, विधर्मी, अधर्मी आदि के यहाँ है।

हम ईश्वर के सम्बन्ध में वेद को प्रमाण मानने वाले हैं। किन्तु वेदों की प्रमाणिकता भी तो प्रत्यक्ष ("ऋषयः मन्त्र द्रष्टारः) एवं अनुमान (मन्त्रायुर्वेद प्रामाण्य वच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् न्या. सू. १-६९) के द्वारा ही सिद्ध करते हैं। अत एव शब्द प्रामाण्य मूल में भी प्रत्यक्ष एवं अनुमान प्रमाण ही हैं। अतः ईश्वर साधक प्रत्यक्ष एवं अनुमान को मानने पर ही शब्द प्रमाण भी ईश्वर साधक प्रमाण माना जा सकता है। अन्यथा नहीं।

लगता है कि ब्रह्मसूत्र के भाष्यकारों ने "शास्त्रयोनित्वात्" सूत्र की व्याख्या के प्रकरण में ब्रह्म के सम्बन्ध में नास्तिकों के समान प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों का खण्डन करते हुए रक्षा में हत्या अथवा विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम् की लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए ब्रह्म की सत्ता पर ही कुठाराघात किया है। अनुमान प्रमाणों का खण्डन करने से अनीश्वरवाद को बहुत बडी मदद मिली है।

जैसा कि ऊपर विस्तार से विचार किया जा चुका है ईश्वर के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष-अनुमान-शब्दादि सभी प्रमाण हैं। वह सर्व प्रमाण सिद्ध परम प्रामाणिक पुरुष है।

शंकराचार्य जी ने शारीरक भाष्य में सृष्टि उत्पादन आदि के विषय में अनुमान कोभी प्रमाण माना है—"सत्सुतु वेदान्त वाक्ये जगतो जन्मादि कारणवादिषु तदर्थ ग्रहणादमर्यादानुमानमपि वेदान्तवाक्याविरोधिप्रमाणं भवन्ननिवार्यते ।

कुछ लोग ब्रह्म के जगत्कर्तृकत्वादि के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष और अनुमान का निषेध करते हुये मीमांसकों का यह श्लोक प्रस्तुत करते हैं

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
यत्तं विदन्ति वेदेन तस्मा द्वेदस्य वेदता ॥ "

परन्तु यह भ्रान्त है । मीमांसकों का सिद्धान्त है कि वेद में किसी सिद्ध पदार्थ का प्रतिपादन नही हैं । उसमें सर्वत्र किसी न किसी क्रिया अथवा क्रिया सम्बन्ध अर्थ का ही प्रतिपादन है । जैसा कि मीमांसा के "आम्नायस्य क्रियार्यत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम् मी. सू. १–२–१ ' तद्भूतार्थानां क्रियार्थेन समाम्नायः–मी. सू. १·२–२५ आदि सुत्रों से सिद्ध है । उपरोक्त श्लोक भी 'उपाय' (क्रिया) विषयक ही है सिद्ध ईश्वर विषयक नहीं । अत एव यह श्लोक केवल उपाय सम्बन्ध में ही लौकिक पुरुष का 'अग्नि होत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः में उपाय के सम्बन्ध में न तो लिङ्ग दर्शनाभाव में अनुमान हो सकता हैं । और न प्रत्यक्ष के कारण केवल वेद को ही उपाय बोधक बतलाता है अत एव मीमांसकों के उक्त उपाय सम्बन्धी श्लोक से ईश्वर सम्बन्धी प्रत्यक्ष अथवा अनुमान का निषेध नहीं होता ।

न्याय शास्त्र ने तो मीमांसकों के उत्तम कथन कि वेद में किसी सिद्ध पदार्थ ईश्वर का प्रतिपादन नही है का अनुमान एवं प्रत्यक्ष द्वारा खण्डन किया है–

"कृत्स्न एव च वेदोऽयं परमेश्वरगोचरः ।
स्वार्थद्वारैव तात्पर्यं स्वार्गादिवद् विधौ ॥ न्या. कु. ५-१५

अतः उक्त आपत्ति भ्रान्त है ।

अब एक हो प्रमाण विषयक तात्विक प्रश्न रह जाता है कि जहाँ शब्द प्रमाण से ईश्वर को सिद्धि हो चुकी है वहाँ इस शब्द सिद्धि के रहते हुए अनुमान की प्रवृत्ति कैसे होगी इसका उत्तर यह है कि साध्य का ज्ञान हो अपना विरोधी नही है कि एकबार साध्य का ज्ञान हो जाने पर दूबारा उस साध्य का ज्ञान न हो सके । धारावाहिक बुद्धिस्थल में एक ज्ञान अनेक बार होती है । यह साध्य उन अनुमिति का भी विरोधी नही है । शब्दादि अन्य प्रमाणों से प्राप्त अर्थ को भी अनुमान प्रमाण से ज्ञान होता है । न्याय सूत्र भाष्यकार वात्स्यायन ने लिखा है कि "पुनः प्रमाणानि प्रमेयमभिसम्प्लवन्ते उत व्यवतिष्ठन्ते । इत्युभय दर्शनम् । अस्त्यात्मेत्याप्तोपदेशात् प्रतीयते, तत्रानुमानम् इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमित । प्रत्यक्षा युञ्जवानस्य योग समाधिजमात्ममनसो : संयोगविशेषादात्माप्रत्यक्ष इति अग्निराप्तोपदेशात् प्रतीयते अत्राग्निरिति । प्रत्यासीदता धूमदर्शनेनानुमीयते, प्रत्यासन्नेन च प्रत्यक्षत उपलभ्यते । हरिदासविवृति में लिखा है–
"शाब्दसिद्धावप्यनुमित्सयानुमितेन संशयासत्त्वं दोषाय ॥

अर्थात् शब्द प्रमाण से ईश्वर की सिद्धि रहने पर भी अनुमान के द्वारा उसको सिद्ध करने की इच्छा रहने से उसकी अनुमिति हो सकती है। इसलिए ईश्वर के विषय में संशय का नहीं होना अनुमान का बाधक नहीं है। इसी प्रकार शाब्दज्ञान प्राप्त करने में शाब्दज्ञान वा अनुमिति बाधक नहीं है। अत एव सभी प्रमाण अभिसम्प्लव द्वारा एक साथ परमेश्वर के साधक हैं और हो सकते हैं। इसमें कोई भी प्रमाण शास्त्रीय बाध नहीं है।

अब एक आपत्ति यह है कि "ईश्वर जिस प्रकार शास्त्र सिद्ध है उस प्रकार अन्य प्रमाण सिद्ध नहीं।"

परन्तु यह भी आपत्ति भ्रान्त है। वेदान्त शास्त्र (ब्रह्मसूत्र) सिद्ध ईश्वर अनुमान सिद्ध ही है जैसा कि ऊपर सिद्ध किया जा चुका है कि ब्रह्म सूत्र हेतु (हेतुरनुमानम्) के द्वारा ही ब्रह्म का विचार और निर्णय करते हैं। पुनः शास्त्रों का तात्पर्य भी ब्रह्म के प्रत्यक्ष दर्शन में ही है, कोरे शाब्दिक ज्ञान में नहीं (आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः)। अतः ईश्वर या किसी भी वस्तु विषय के सम्बन्ध में जैसा प्रमाण है, वैसा कोई भी प्रमाण नहीं है। अत एव प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध ईश्वर ही वेदान्त का तात्पर्य और अन्तिम लक्ष्य है।

एक प्रश्न और किया गया है कि किसी के पिता को प्रमाणित करनेवाला माता का शब्द (कथन) ही प्रमाण होता है। तब ईश्वर की सिद्धि प्रत्यक्ष तथा अनुमान से न होकर शब्द से ही इसमें क्या आपत्ति है?"

यह प्रश्न भ्रान्त है। किसी के पिता को प्रमाणित करनेवाला न तो माता का शब्द प्रमाण होता है और न सब माता ही, प्रत्युत केवल आप्तमाता का और पिता आदि का शब्द भी। यदि माता व्यभिचारिणी और कुलटा हो तो उसका शब्द कथमपि प्रमाण नहीं हो सकता। पुनः पिता का वचन भी प्रमाण होता है, क्योंकि वह उत्पादक और प्रत्यक्ष साक्षी है। पुनः यदि वैदिक विधि से गर्भाधान किया गया हो तो पुरोहित आदि का वचन भी प्रमाण है। पुत्रेष्टि यज्ञ के सभी लोगों का वचन प्रमाण है। पुनः इस संबन्ध में केवल शब्द ही प्रमाण नहीं है। प्रत्युत पुत्र की जन्मकुण्डली, हस्तरेखा ललाट रेखा, आकृति, रक्तपरीक्षा आदि भी प्रमाण हैं। अत एव रक्त परीक्षादि अनुमान और पिता से मिलती आकृति आदि प्रत्यक्ष प्रमाण भी है। अतः प्रश्न कर्ता का माता के ही शब्द प्रमाण के सबन्ध में उपरोक्त प्रश्न भ्रान्त है। अत एव ईश्वर के संबन्ध में न केवल शब्द प्रत्युत अनुमान और प्रत्यक्ष प्रमाण अबाध हैं।

अत एव द्वितीय पक्ष का कथन ही ठीक है कि ईश्वर के विषय में प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये सभी प्रमाण हैं। परमार्थ रूप में भी ब्रह्म प्रत्यक्ष का ही विषय है—"तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुरा ततम् ॥ ऋ. १।२२।२०॥"

सर्व प्रमाण सिद्ध परम प्रमाण परमात्मा की जय।

कुछ लोग प्रमाणों की प्रबलता निर्बलता का भ्रान्त विचार

प्रस्तुत करते हुए प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द प्रमाणों का निरूपण कर इनमें शब्द प्रमाण को प्रबलतम एवं अनुमान प्रमाण को निर्बलतम मानते हैं तथा शब्द प्रमाण के द्वारा प्रत्यक्ष एवं अनुमान का बाध मानते हैं। कुछ लोग अनुमान और शब्द को अपृथक् मान कर शब्द प्रमाण को अनुमानान्तर्गत ही मानकर शब्द को पृथक् प्रमाण मानते ही नहीं हैं। कुछ लोग अनुमान द्वारा शब्द का बाध मानते हैं। कुछ लोग प्रत्यक्ष द्वारा अनुमान और शब्द का बाध मानते हैं कुछ लोग प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द में किसी को अधिक बल एवं किसी को न्यून बल नहीं मानते एवं किसी का बाधक किसी को नहीं मानते। इसी प्रकार इन तीनों में किसी दो को सामान्य एवं एक को विशेष नहीं मानते प्रत्युत सभी को विशेष मानते हैं। जिस प्रकार केवड़ा, गुलाब और वेला के फूलों में अपनी अपनी पृथक् विशेषता है जो अन्य दो में नहीं है। जैसे विमान, जहाज, और कार में अपनी अपनी विशेषता है। इसी प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द की भी अपनी अपनी विशेषताएं है। अतएव प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द अपनी अपनी विशेषता से विशेषाविशेष रूपो से भिन्न भिन्न प्रकार से ईश्वर के प्रमाण बनते हैं। शब्द, अनुमान और प्रत्यक्ष ये तीनो का संयोग अनुमान है ऐसा भी कुछ लोगो का विचार है। शब्द, अनुमान और प्रत्यक्ष तीनो मिलकर ज्ञान की प्रक्रिया को पूर्ण करते है— शब्द नाम संकीर्तन रूप उद्देश्य का ज्ञापक है, अनुमान परीक्षा

का ज्ञापक है एवं प्रत्यक्ष फल का ज्ञापक है । सब मिलाकर अर्थ तात्पर्य प्रत्यक्ष अनुभूति में हीहै ।

अब ऊपरोक्त विभिन्न मतो में शब्द और अनुमान को एक ही प्रमाण मानने वाले वैशेषिक का कथन है कि शब्द और अनुमान समान विधि के कारण एक ही है । जिस प्रकार अनुमान में १ व्याप्तिग्रह, २ लिङ्ग दर्शन, ३ व्याप्तिस्मृति और ४ अनुमिति होती है ठीक उसी प्रकार शब्द में भी १. शक्तिग्रह २. वाक्य श्रवण, ३. पदार्थः स्मृति और ४ वाक्यार्थ बोध होता है। अतः समान विधि होने के कारण शब्द अनुमान के अन्तर्गत है। शब्द अनुमान है, व्याप्ति बल से अर्थ बोधक होने के कारण धूम के समान। इस अनुमान से इस तथ्य की सिद्धि होती है।

शब्द को अनुमान के अन्तर्गत होने में दूसरी युक्ति है। शब्द प्रमाण मानने वाले पदार्थ के संसर्ग बोध को ही वाक्यार्थ मानते है।, उस संसर्ग का बोध अनुमान के द्वारा हो सकता है। (१) पदार्थाः परस्परं संसर्गवन्तः आकांक्षा योग्यतासत्तिमत्पदस्मारितत्वात् "एवं (२) एतानि पदानि स्वस्मारितपदार्थ संसर्ग प्रमापूर्वकाणि आकांक्षादिमत्पदत्वात । इन अनुमानो से संसर्ग की अनुमिति हो सकती है। इसलिए शब्द को अलग प्रमाण मानने की आवश्यका नही हैं।

इस प्रथम पदार्थ पक्षक अनुमान—"एते पदार्थाः परस्परं संसर्गवन्तः आकांक्षा योग्यतासत्तिमत्पदस्मारितत्वात्" के सम्बन्ध

न्याय कुसुमाञ्जलि में शब्द को पृथक् प्रमाण मानने वाले नैया-
यिक पक्ष से श्रीउदयनाचार्यजी ने—अनैकान्त परिच्छेदे सम्भवे च न
निर्णय न्य. कु. ३।१३ इस कारिका के द्वारा आपत्ति कीहै कि
यहाँ इस अनुमान के द्वारा संसर्ग का परिच्छेदे निश्चय करने पर
अनैकान्तिक दोष होगा और केवल संसर्ग की संभावनासिद्ध करने
से निर्णय नहीं होगा। यदि केवल संसर्ग की संभावना मात्र अर्थात्
उनका संसर्ग हो सकता है, यह सिद्ध कर रहे है तो संसर्ग का
निश्चय नहीं हुआ, 'संसर्ग हो सकता है केवल इतना ही
संभावना सिद्ध हुई। संसर्ग है हीं यह बात निश्चित नही हो
सकी अतः संसर्ग का निर्णय नहीं हुआ। यदि संसर्ग का निश्चय
इससे सूचित होता है तो 'पयसा सिञ्चति इत्यादि में इसका
व्याभिचार होगा। क्योंकि पयस् शब्द के दो अर्थ होते हैं—एक
जल और दूसरा दूध। कहीं जल औ कहीं दूध से सिञ्चन दोनों
से ही हो सकता है। अतः पयसा सिञ्चति इन पदों में आकांक्षा,
योग्यता और आसत्ति सब है। अत एव इन पदार्थों में परस्पर
सम्बन्ध यहाँ अवश्य है—यह सिद्ध होता है। परन्तु
पयसा शब्द जल के अभिप्राय से बोला गया है, वहाँ
जल का तो सिञ्चन के साथ संसर्ग वक्ता की बुद्धि में है। दुध
का नहीं। परन्तु आप के हेतु 'योग्यता आकांक्षा आसक्तिमत्पद-
स्मारितत्वात् के अनुसार दुध के साथ भी उसका संसर्ग अवश्य
होना चाहिए। जो कि है नहीं। इसलिये परिच्छेद अर्थात् संबन्ध
के अवश्य भाव पक्ष में यह हेतु अनैशान्तिक है और सम्बन्ध के

सम्भावना पक्ष में संबन्ध का निर्णय नहीं होता है। इसलिये संसर्ग की सिद्धि अनुमान से नहीं हो सकती है।

परन्तु न्याय कुसुमञ्जलि के इस कारिका द्वारा आरोपित यह "अनैकान्तिकत्व का दोष निराधार और भ्रान्त है। उपस्थापित पयसा सिञ्जति का दृष्टान्त भ्रान्त है। जहाँ एक ही शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं, वहां उसे वक्ता ने किस अर्थ में प्रयोग किया है ? यही वक्ता का अभिप्राय 'तात्पर्य कहलाता है। तात्पर्य को प्राचीन नैयायिकों ने उक्त "आकांक्षा के भीतर ही अन्तर्मुक्त किया है। क्योंकि आकांक्षा में न केवल उद्देश्य पद के साथ विधेय पद की आकाक्षां एवं विधेय पद के साथ उद्देश्य पद को आकांक्षा रहता है। प्रत्युत उद्देश्य अथवा विधेय पदों के अभिप्रेत अर्थ की भी वक्ता का अभिप्राय अभिप्रेत अर्थ वा तात्पर्य के भी शाब्द बोध में प्रबल आकांक्षा रहती हैं अत एव तात्पर्य (वक्ता का अभिप्राय) ऊपरोक्त "अकांक्ष के अन्तर्गत हैं।" इसीलिये आकांक्षा के साथ ही इसे कहा गया हैं—

"यत्पदेन बिना यस्याननुभावकता भवेत् ।
आकांक्षा वक्तुरिच्छा तु तात्पर्यं परिकीर्तितम् ॥ भाषापरिच्छेदः॥

अतएव वैशेषिक द्वारा प्रस्तुत अनुमान के हेतु—"आकांक्षा-योग्यासत्तिमत्पदस्मारितत्वात् के' आकांक्षा पद के अन्तर्गत 'तात्पर्य का होने से यह हेतु पयसा सिञ्चति में अनैकान्तिक हेतु कथमपि नहीं है। प्रत्युत ऐकान्तिक और सद्धेतु है। इसलिए संसर्ग के परिच्छेद निश्चय के प्रकरण में यह साध्य साधक

हैं और इससे संसर्ग की सिद्धि अनुमान द्वारा सिद्ध होती हैं। पुनः तात्पर्य ज्ञान में भी प्रकरण के हेतु से अनुमान के द्वारा ही विवक्षा या तात्पर्य का ज्ञान होता है। अत एव शाब्द बोध अनुमान के द्वारा ही होता है अतः शब्द अनुमान के अन्तर्गत है।

अब पद पक्षक दूसरे अनुमान—"एतानि पदानिस्वस्मारितपदार्थ संसर्गप्रमापूर्वकाणि आकांक्षादिमत्पदत्वात्" में न्याय कुसुमाञ्जलि के—"आकांक्षा सत्तया हेतुर्योग्यासत्तिरबन्धना—न्या. कु. २।१३" के द्वारा यह आपत्ती की गयी है कि आकांक्षा स्वरूप सत्वरूप में शाब्द बोध का हेतु है। परन्तु अनुमान में आकांक्षा का ज्ञान आवश्यक है सत्ता नहीं। शब्द बोध में स्वरूपसती आकांक्षा उपयोगिनी है और अनुमान में 'ज्ञान सती' आकांक्षा। ज्ञानसती का भाव यह है कि आकांक्ष का उस समय विद्यमान नहीं रहने पर भी केवल उसके ज्ञान मात्र से काम चल सकता है, परन्तु शाब्द बोध में अविद्यमान आकांक्षा से काम नहीं चलेगा। वहाँ आकांक्षा 'सत्तया' अर्थात् विद्यमान रूप से होती है। अतः अनुमान के द्वारा संसर्ग की सिद्धि नहीं हो सकेगी।

परन्तु यह आपत्ति भ्रान्त है। यह कहना सर्वदा भ्रान्त है कि "शाब्द बोध में आकांक्षा की सत्ता अपेक्षित है उसका ज्ञान हो या न हो और अनुमान में इस आकांक्षा का ज्ञान हेतु है, उसकी सत्ता उस समय हो या न हो। "शाब्द बोध में आकांक्षा

की न केवल सत्ता अपेक्षित है प्रत्युत उसका ज्ञान भी। नही तो "पयसा सिञ्चति में उद्देश्य पद 'पयसा के साथ आकांक्षित विधेय पद सिञ्चति की सत्ता विद्यमान रहने पर भी बिना पयसा उद्देश्य पद के अर्थ ज्ञान अथवा 'सिञ्चति विषय पद के अर्थ ज्ञान के शाब्द बोध बन हो नही सकता है। अतएव शाब्द बोध में स्वरूप सती के साथ हीं ज्ञान सती भी आकाक्षा का होना आवश्यक है आकांक्षा अज्ञात विषयक हो ही नही सकती है, सर्वदा ज्ञात विषयक ही होती है। अतः शाब्द बोध की आकांक्षा भो ज्ञात सती है। पुनः अनुमान की भी आकाक्षा स्वरूप सती भी है। क्योंकि बिना स्वरूप ज्ञान के ज्ञान हो ही नहीं सकता है। अतएव इस प्रकरण में ज्ञान सती और स्वरूप सती की कल्पना व्यर्थ हैं। क्योंकि दोनों कीं व्याप्ति अनुमान और शब्द दोनों ही में हैं। अतएव यह पद पक्षक द्वितीय अनुमान भी निर्दोष है और शब्द प्रमाण अनुमान के अन्तर्गत ही सिद्ध हैं। फिर शब्द का अनुमान से अधिक बली होने एवं उससे अनुमान बाधित होने का प्रश्न ही कहाँ उठता है।

प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द प्रमाणों का अभि संप्लव (अनेक प्रमाण एक साथ द्वारा भी अर्थ की सिद्धि होती है और कही कही व्यवस्था (एक प्रमाण एक ही अर्थ की सिद्धि) के द्वारा भी जैसे प्रत्यक्ष ज्ञान से भी अग्नि हिम का औषध सिद्ध हैं। अनुमान

(शेष भाग टाइटल नं. २ पर)
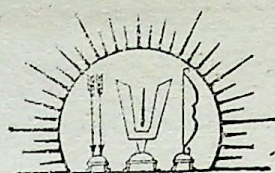
सर्वेश्वराभ्यां श्रीसीतारामाभ्यां नमः ।

आनन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।

जगद्गुरुश्रीटीलाचार्याय नमः । जगद्गुरुश्रीमङ्गलाचार्याय नमः ।

पण्डितसम्राट्श्रीवैष्णवचार्यसम्पादिते लघुपासनाङ्गचतुष्टयसंग्रहे

जगज्जननीश्रीसीतालघूपासनाङ्गचतुष्टयम्
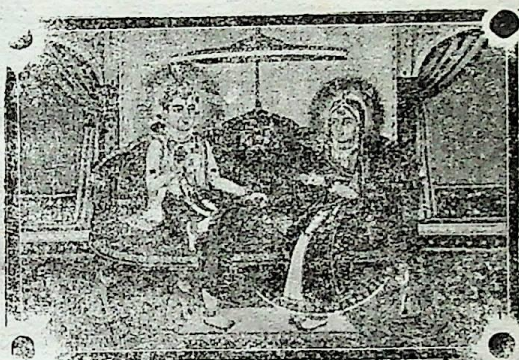
दिव्यदेहगुणास्त्राय साञ्जनेयाय शेषिणे ।
सानुजाय ससीताय रामाय ब्रह्मणे नमः ॥२॥

प्रकाशकः—पण्डितसम्राट्स्वामीश्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठाचार्य

ऋणदेरी श्रीराममन्दिर शारंगपुरदर्वाजाबाहर

अहमदाबाद—२

श्रीरामानन्दसप्तमशताब्दी

मूल्य, ७५ पैसे. सन् १९८२ ईसवी प्रति—५००

श्रीरामानन्द प्रिन्टिंगप्रेस—अहमदाबाद

पण्डितसम्राट्श्रीवैष्णवाचार्यप्रणीता

श्रीविदेहजापञ्चश्लोकी

नमस्ते नमस्ते जगत्कारिकायै
नमस्ते नमस्ते जगद्धारिकायै ।
नमस्ते नमस्ते जगद्धारिकायै
नमस्ते नमस्ते जगत्तारिकायै ॥१॥

नमस्ते नमस्ते महाशान्तिदायै
नमस्ते नमस्ते महाकान्तिदायै ।
नमस्ते नमस्ते महादुःखहर्त्र्यै
नमस्ते नमस्ते महासौख्यकर्त्र्यै ॥२॥

नमस्ते नमस्ते समृद्धिप्रदायै
नमस्ते नमस्ते सुबुद्धिप्रदायै ।
नमस्ते नमस्ते सुभक्तिप्रदायै
नमस्ते नमस्ते सुमुक्तिप्रदायै ॥३॥

नमस्ते नमस्ते त्रिलोकी-जनन्यै
नमस्ते नमस्ते कृपासिन्धवे च ।
नमस्ते नमस्ते पथःशिक्षिकायै
नमस्ते नमस्ते जगद्रक्षिकायै ॥४॥

नमस्ते नमस्ते सुराद्यर्चितायै
नमस्ते नमस्ते सुरादिस्तुतायै ।
नमस्ते नमस्ते विदेहात्मजायै
नमस्ते नमस्ते च रामप्रियायै ॥५॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता ।
पञ्चश्लोकीत्वियं भूयाद् विश्वभूतविभूतये ॥६॥

पण्डितसम्राट्श्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितः

प्रातःकालीनः श्रीसीतास्तवः ।

प्रातर्नमामि रघुनायकवल्लभाया
पद्माङ्कुशादिलसितं हि पदारविन्दम् ।
दिव्यं महामुनिमनोभ्रमराभिसेव्यं
पापापहं सुखदमुक्तिकरं प्रणामात् ॥१॥

प्रातर्भजामि मिथिलेशसुताकराब्जं
रक्तं सुरम्यविमलं शुचिकोमलं च ।
आपद्गताभयकरं भयदं भयाना--
मालम्बनं च वरदं पदमाश्रितानाम् ॥२॥

प्रातः स्मरामि वसुधातनुजामुखाब्जं
हास्यश्रियाविलसितं सुविशालनेत्रम् ।
मञ्जुस्वनस्य जनकं जनमोदहेतुं
बिम्बाधरं रुचिरकुण्डलरम्यगण्डम् ॥३॥

प्रातः श्रयामि वसुधातनयां च दिव्यां
विद्युल्लताद्युतिमतीं सुषमानिधानम् ।
दिव्यैर्विभूषणपटैः सुविभूषिताङ्गीं
ध्येयामनुग्रहमयीं मुनिभिः सुमुक्त्यै ॥४॥

प्रातर्वदामि मिथिलेश्वरकन्यकायाः
सीतेति नाम निखिलाघहरं जनानाम् ।
प्रेम्णा सकृच्च कथितं यमयातनाह्वन्-
मुक्तिप्रदं सकलसौख्यकरं पवित्रम् ॥५॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
सीतास्तवमधीयाना यान्तु सीताप्रसन्नताम् ॥

श्रीमैथिलीपञ्चकम् ।

या श्रीरामपरेशदिव्यवनिता या दिव्यधामेश्वरी
या च श्रीमिथिलाधिपस्य तनया योमारमासंस्तुता ।
या चाभीष्टफलप्रदा हरिहरब्रह्मादिभिर्वन्दिता
या वाचां मनसस्तथा न विषयः सा मैथिली पातु माम् ॥१॥
याऽऽर्त्तत्राणपरा त्रिलोकजननी श्रीरामचन्द्रप्रिया
या लोकैकभवाब्धिभीतिहरणी मृत्योर्भयाद् रक्षिणी ।
या वात्सल्यगुणाम्बुधिश्च जगतः सृष्ट्यादिहेतुः शुभा
या सौन्दर्यनिधिः सुरम्यवदना सा मैथली पातु माम् ॥२॥
या चामोघसुकीर्त्तना भगवती दुर्भाग्यभोगैकहृद्
या चामोघसुपूजना भगवती स्वतसिद्धिसम्पत्तिदा ।
या चामोघसुवन्दना भगवती सद्भुक्तिमुक्तिप्रदा
या चानुग्रहरूपिणी भगवती सा मैथिली पातु माम् ॥३॥
या चोदारशिरोमणिर्गुणनिधिर्या सर्ववित् सर्वकृद्
यो योगादिसुदुर्लभा सुलभतां संयाति सद्भक्तितः ।
या सच्छास्त्रनिरूपिताऽथ जगतो हेतुस्त्रिधा सम्मता
या चानन्दमयी सुदिव्यतनुभृत सा मैथली पातु माम् ॥४॥
या स्वापादितसम्प्रदायजलधेः संवर्धिनी कौमुदी
या बिम्वी विभुवैभवा च वरदा सूर्यादिसम्भासिनी ।
या मुक्तेः पथदर्शिका सुखकरी श्रीराघवप्रीतिदा
या नित्या सकलेश्वरी भगवती सा मैथिली पातुमाम् ॥५॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
पञ्चकं भवतादेतत् सर्वकल्याणकारकम् ॥६॥

पण्डितसम्राट्स्वामि श्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता

श्रीसीतापूजापद्धतिः ।--

ईशित्री जगतोऽस्य विश्वजननी लावण्यवारांनिधि-
र्वात्सल्यादिगुणावधिः श्रितजनाभीष्टार्थदा सर्ववित् ।
ध्येया सज्जगदीशितु रघूपतेर्विम्बी प्रिया जानकी
यत्कारुण्यदिदृक्षुणा भगवता सर्वं जगत् सृज्यते ॥१॥ ध्यानम्

आगच्छ भूमिजे ! देवि ! श्रीमद्रामस्य वल्लभे ! ।
तवार्चनं करिष्यामि जगन्मातः ! कृपां कुरु ॥१॥ आवाहनम् ।

त्रिदेवीभिः स्तुते सीते ! त्रिभिर्देवैश्च वन्दिते ! ।
दिव्यास्तरणसंयुक्तं गृह्यतां दिव्यमासनम् ॥२॥ आसनम् ।

देवैः सिद्धैर्मुनीन्द्रैस्त्वं पूजिता भक्तवत्सले ! ।
पाद्यं मयाऽर्पितं सीते ! गृहाण सकलेश्वरि ! ॥३॥ पाद्यम् ।

दिव्यौषधिरसोपेतं दिव्यगन्धेन संयुतम् ।
मया दत्तं गृहाणार्घ्यं मातः ! सीते ! दयाम्बुधे ! ॥४॥ अर्घ्यम् ।

दिव्यपात्रे स्थितं चाथ सुगन्धवासितं जलम् ।
गृहाणाचमनीयं च श्रीसीते करुणाम्बुधे ! ॥५॥ आचमनम्

शर्कराक्षीरदध्याज्यैः मधुना च समन्वितम् ।
स्नातुं पञ्चामृतं दत्तं गृहाण जनकात्मजे ! ॥३॥ पञ्चामृतम्

तोयैस्तीर्थाहृतैर्दिव्यैर्दिव्यौषधिरसान्वितैः ।
सुस्नापम्यहं सीते ! स्वीकुरुष्व नमोऽस्तु ते ॥७। शुद्धस्नानम् ।

भासुरं रक्तवर्णं च हेमसूत्रैर्विभूषितम् ।
सीते ! गृहाण वस्त्रं च नमस्ते सुषमाम्बुधे ! ॥८॥ वस्त्रम् ।

कुङ्कुमागरुयुक्तं च संयुक्तं चन्दनादिभिः ।
गन्धं गृहाण सीते ! त्वं नमोऽनुग्रहकारिणि ! ॥९॥ गन्धम् ।
हरिद्रां कुङ्कमं चाथ सिन्दूरं कज्जलं तथा ।
दत्तं सौभाग्यद्रव्यं च गृहाण परमेश्वरि ! ॥१०॥ सौभाग्यद्रव्यम्
संस्कृतं विविधैर्गन्धै रक्तवर्णं मनोहरम् ।
स्वीकुरुष्व गुलालं च श्रीसीते ! रामभामिनि ! ॥११॥ गुलालम् ।
मणिमुक्ताफलैः सीते ! मङ्गलतन्तुभिर्युतम् ।
कम्बुकण्ठि ! गृहाणेदं कण्ठसूत्रं मनोहरम ॥१२॥ कण्ठसूत्रम् ।
विविधं भूषणं रम्यं हेमरत्नैश्च निर्मितम ।
मातार्गृहाण दत्तं च रामाभिन्नस्वरूपिणि !॥१३॥ भूषणम् ।
सुगन्धीनि सुरम्याणि पुष्पाणि विविधानि च ।
सीते ! गृहाण दत्तानि नमस्ते सर्वशोभिणि ॥१४॥ पुष्पम् ।
चन्दनागुरुसंयुक्तगुग्गुलादिसमन्वितम् ।
धूपं गृहाण हे सीते ! नमस्ते कीर्त्तिशालिनि! ॥१५॥धूपः
घृतवर्त्तिसमायुक्तं रम्यज्वालासमन्वितम ।
दत्तं गृहाण दीपं श्रीसीते ! सूर्यादिभासिनि !॥१६॥ दीपः ।
मधुरं घृतपक्वं च पूपादि पायसं तथा ।
नैवेद्यं गृहाण सीते ! विविधैर्व्यञ्जनैर्युतम् ॥१७॥ नैवेद्यम् ।
श्रीसरयूजलं शुद्धं निर्मलं पुष्पवासितम् ।
दत्तं गृहाण सीते ! त्वं नमस्ते वेदवन्दिते ॥१८॥ जलम् ।
सुन्दरं शोधितं पक्वं सुधावन्मधुरं फलम् ।
सीते ! गृहाण चाम्रादि नमस्तेऽमोघदर्शने ! ॥१९॥ फलम्

सद्गन्धेन च शुद्धेन सरयूवारिणा वृतम् ।
अमोघाराधने ! सीते ! गृहाणाचमनीयकम् ॥२०॥ आचमनम्
खादिरैलादिसंयुक्तं शुद्धं पूगीफलान्वितम् ।
कृपालो ! कृपया सीते ! ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥२१॥ ताम्बूलम्
चामरद्वयसंयुक्तं श्वेतं छत्रं च सुन्दरम् ।
दत्तं गृहाण हे सीते ! नमस्ते सकलेश्वरि !॥२२॥ राजोपचराः ।
घृताक्तवर्त्तिकर्पूरज्वालया च समन्वितम् ।
नीराजनं गृहाणेदं मातः ! सीते ! नमोऽस्तु ते ॥२३॥ नीराजनम् ।
दिव्यैः सुवर्णमाल्यैश्च दत्ता पुष्पाञ्जलिर्मया ।
जगन्मातर्गृहाण त्वं नमस्ते रामवल्लभे !॥२४॥ पुष्पाञ्जलिः ।
मयाऽतिश्रद्धया दत्तं श्रीफलं मधुरं बहु ।
सदक्षिणं गृहाणेदं कृपया हे कृपाम्बुधे ! ॥२५॥ श्रीफलम् ।
जन्मान्तरकृतं पापमेतज्जन्मकृतं तथा ।
सर्वं तद् विलयं यातु श्रीमत्सीताप्रदक्षिणात् ॥२६॥ प्रदक्षिणा ।
यथालब्धोपचारैस्ते सीते पूजा मया कृता ।
पूर्णतां यातु सा मातरपराधं क्षमस्व मे ॥२७॥ क्षामापनम्
जगत्कर्त्र्यै नमः सीते जगद्भर्त्र्यै नमस्तथा ।
जगतो हारिकायै च तारिकायै नमोऽस्तु ते ॥२८॥
भगवत्यै नमस्तेऽस्तु श्रीसीतायै नमोऽस्तु ते ।
सर्वेश्वर्यै नमस्ते श्रीरामपत्न्यै नमोऽस्तु ते ॥२९॥
मन्त्रराजप्रदां वन्दे वन्दे सिद्धिप्रदायिनीम् ।
भक्तिमुक्तिप्रदां वन्दे वन्दे चानन्ददायिनीम् ॥३०॥ नमस्कार ।
इतिलघुश्रीसीतोपासनाङ्गचतुष्टये प्रथममङ्गम् ॥१॥

आनन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्योक्ताः

षोडशार्चोपचाराः

आवाहनासनाभ्यां च पाद्यार्घ्याचमनैस्तथा ।
स्नानवस्त्रोपवीतैश्च गन्धपुष्पसुधूपकैः ॥
दीपनैवेद्यताम्बूलप्रदक्षिणविसर्जनैः ।
षोडशार्चाप्रकारैस्तमेतैरर्चेत् सदा सुधीः ॥

—०—

पण्डितसम्राट्श्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितं

श्रीजानकीकवचरत्नम् ।

स्वप्ने जागरणे चाथ सुषुप्तावप्यहर्निशम् ।
सर्वतः सर्वथा पातु जननी जानकी सदा ॥१॥
प्राच्यां चाथ प्रतीच्यां हि पातु मां पापहारिणी ।
उदीच्यां भूमिजा पातु चावाच्यां देवपूजिता ॥२॥
आग्नेय्यां पातु हेमाङ्गी नैर्ऋत्यां रामवल्लभा ।
वायव्यां वायुजाऽन्विष्टा चैशान्यां निखिलेश्वरी ॥३॥
वामेऽग्रे दक्षिणे पृष्ठे पातु सर्वत्र मुक्तिदा ।
मारुतेर्वरदा पातु स्वास्थ्यं मारुतिवन्दिता ॥४॥
देहं पातु हि वैदेही मतिं पातु मतिप्रदा ।
सुखं तु सुषमासिन्धुः पातु कीर्त्तिं च कीर्त्तिदा ॥५॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
पठनाद् धारणाद् वास्तु कवचं विघ्नघातकम् ॥६॥
इतिलघुश्रीसीतोपासनाङ्गचतुष्टये द्वितीयमङ्गम् ॥२॥

श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे श्रीजानकीनवमीनिर्णयः ।

पुष्यान्विवतायां तु कुजे नवम्यां
श्रीमाधवे मासि सिते हलेन ।
कृष्टा क्षितिः श्रीजनकेन तस्याः
सीताऽऽविरासीद् व्रतमत्र कुर्यात् ॥३॥

पण्डितसम्राट्श्रीवैष्णवाचार्यकृता

श्रीसीता नमस्कार माळा ।

भूमिजायै नमस्तुभ्यं सीतादेव्यै नमोऽस्तु ते ।
रामप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्ते रामवल्लभे ॥१॥

सर्वेश्वरि ! नमस्तुभ्यं नमस्ते करुणाब्धये ।
दुःखहन्त्रि ! नमस्तुभ्यं सुखदात्रि ! नमोऽस्तु ते ॥२॥

जगत्कर्त्रि नमस्तुभ्यं जगद्धत्रि ! नमोऽस्तु ते ।
जगद्हर्त्रि ! नमस्तुभ्यं मुक्तिदात्रि ! नमोऽस्तु ते ॥३॥

वसुधात्मजे नमस्तुभ्यं वसुदायै नमोऽस्तु ते ।
नमः शरण्यवर्यायै नमो दारिद्र्यनाशिनि ! ॥४॥

नमस्ते वेदवेद्यायै भक्तिलभ्ये ! नमोऽस्तु ते
नमस्ते वेदवन्द्यायै सर्वज्ञायै नमोऽस्तु ते ॥५॥

नमस्ते दिव्यदेहायै नमस्ते गुणसिन्धवे ।
नमस्ते दोषशून्यायै नमो लावण्यसिन्धवे ॥६॥

नमश्चामोघपूजायै ह्यमोघस्तुतये नमः ।
नमश्चामोघभक्त्यै ते नमश्चामोघवन्दने ! ॥७॥
नमस्ते ज्ञेयवर्यायै ध्येयवर्ये ? नमोऽस्तु ते ।
नमो वदान्यवर्यायै रामपत्न्यै नमोऽस्तु ते ॥८॥
नमो निग्रहशून्यायै नमोऽनुग्रहशालिनि ! ।
नमोऽवगुणशून्यायै नमाः सद्‌गुणशालिनि ॥९॥
नमस्ते साधुशीलायै नमस्ते कीर्त्तिशालिनि ।
नमस्ते मन्त्रदात्र्यै च नमस्ते मारुतेर्गुरो ! ॥१०।
नमस्ते विश्वमूलायै नमस्ते विश्वरक्षिणि ।
नमो विश्वशरण्यायै नमस्ते विश्वरक्षिणि ॥११॥
नमः प्रपदनीयायै भजनीये नमोऽस्तु ।
नमस्ते कीर्त्तनीयायै स्मरणीये नमोऽस्तु ते ॥१२॥
नमस्ते पूज्यवर्यायै स्तुतवर्ये नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते वन्द्यवर्यायै नमस्तेऽमोघदर्शने ॥१३॥
नमोऽचिद्विशिष्टायै नमोऽचिच्चित्स्वरूपिणि ।
नमोऽचिच्चिद्विभिन्नायै नमोऽचिच्चिच्छरीरिणि ॥१४॥
नमः कारणरूपायै कार्यरूपिणि ते नमः ।
नमो जगज्जनन्यै ते जगद्‌रूपिणि ते नमः ॥१५॥
नमस्त्रिदेववन्द्यायै त्रिदेवीवन्दिते नमः ।
नमः परात्परायै ते नमः सर्वावतारिणि ॥१६॥
नमो विभवरूपायै व्यूहरूपिणि ! ते नमः ।
नमस्तेऽर्चास्वरूपिण्यै नमोऽन्तर्यामिरूपिणि ॥१७॥

नमस्ते विभुदे देवि नमस्ते विभुरूपिणि ।
नमस्ते विश्वभिन्नायै नमस्ते विभुवल्लभे ॥१८॥
नमस्ते विभुलोकायै नमस्ते जनकात्मजे ।
नमस्ते जानकीदेव्यै नमो जनकनन्दिनि ! ॥२०॥
नमो मैथिलकन्ये ते नमोऽस्तु मैथिलात्मजे ।
नमो मैथिलि ! मातस्ते मिथिलेशसुते नमः ॥२१॥
मात्रे नमोऽस्तु सीतायै नमो वात्सल्यवारिधे ।
नमस्ते श्रुतिगीतायै नमस्ते क्षितिनन्दिनि ! ॥२२॥
नमस्ते मुक्तसेव्यायै नमस्ते मुक्तवन्दिते ।
नमस्ते विघ्नहन्त्र्यै च नमस्स्ते मङ्गलप्रदे ! ॥२३॥
रामाभिन्ने नमस्तेऽस्तु श्रियः श्रियै नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते दिव्यवस्त्रायै नमस्ते दिव्यभूषणे ॥२४॥
नमः स्वयम्प्रकाशायै नमो भास्करभासिनि ।
नमः प्रपत्तिशिक्षित्र्यै नमः प्रपन्नरक्षिणिः ! ॥२५॥
नमस्ते सत्यसङ्कल्पे नमस्ते सर्वशेषिणि ।
नमश्चावाप्तकामायै सर्वशक्ते नमोऽस्तु ते ॥२६॥
भगवत्यै नमस्तेऽस्तु मन्त्रराजप्रदे नमः ।
नमस्ते दिव्यलोकायै नमस्ते दिव्यपार्षदे ॥२७॥
वैष्णवभाष्यकरश्रीवैष्णवाचार्य निर्मिता ।
स्तान्नस्कारमालेयं श्रीसीताम्बाप्रसादिनी ॥२८॥
इतिलघु श्रीसीतोपासनाङ्गचतुष्टये तृतीयमङ्गम् ।

पण्डितसम्राट् श्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितं

श्रीसीतानामशतकम् ।

सीता रामप्रिया सीता मीता सीता श्रुतिश्रुता ।
सीता दिव्यतनुः सीता सीता सीता च भूमिजा ॥१॥
सीता दिव्यगुणा सीता सीता सीता च मैथिली ।
सीताऽखिलेश्वरी सीता सीता सीता विदेहजा ॥२॥
सीता सुरस्तुता सीता सीता सीता मुनिस्तुता ।
सीता बुधस्तुता सीता सीता सीता गुणाम्बुधिः ॥३॥
सीता हि सर्जिनी सीता सीता सीता सुपालिनी ।
सीता च हारिणी सीता सीता सीता हि तारिणी ॥४॥
सीता च सर्ववित् सीता सीता सीता दयाम्बुधिः ।
सीता दुःखहरी सीता सीता सीता सुखप्रदा ॥५॥
सीता हि सिद्धिदा सीता सीता सीता च बुद्धिदा ।
सीता हि भक्तिदा सीता सीता सीता च मुक्तिदा ॥६॥
सीता ज्ञेयोत्तमा सीता सीता सीता परात्परा ।
सीता ध्येयोत्तमा सीता सीता सीता वराश्रयः ॥७॥
सीता सीता जगन्माता सीता सीता जगत्पिता ।
सीता सीता जगद्बन्धुः सीता सीता जगत्सखा ॥८॥
जगन्निमित्तमूला च श्रीमद्रामप्रसादिका ।
सीता मन्त्रप्रदाऽन्याच्छ्रीसम्प्रदायप्रवर्त्तिका ॥९॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
पाठाच्च शतकं भूयाच्छ्रीमत्सीताप्रसादकम् ॥१०॥

इतिलघुश्रीसीतोपासनाङ्गचतुष्टये चतुर्थमङ्गम् ॥४॥

पण्डितसम्राटश्रीगौणवाचार्यकृतः

श्रीरामदयितास्तवः

न जाने त्वत्तोऽन्यं जननि ! हि निजोद्धारजनकं
तवाग्रे चोद्धर्तुं पतित इहचात्रास्मि हि ततः ।
कुरूद्धारं मातर्मम निजजनस्यापि कृपया
श्रयेऽहं त्वत्पादौ प्रणतसुखदे ! रामदयिते ! ॥१॥

महानज्ञोऽहं गौ सकलगुणहीनः कुमतिमान्
हतो मद्दुर्भाग्यैः सकलविधिदीनः, कुकृतिमान् ।
विरक्तः सत्सङ्गात् कुमतिजनसङ्गे च निरतः
प्रपन्नस्ते पादौ जननि ! करुणाब्धेऽतिमृदुलौ ॥२॥

अहोऽस्मिन् संसारे जननि ! तव तुल्या न जननी
कुपूत्रं मत्तुल्यं सततमिह या रक्षति जनम् ।
सुधीन्द्रोक्तिस्त्वत्तो भवति चरितार्था बुधमता
"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति" ॥३॥

उमाश्रीब्रह्माण्यो जननि तव चांशादिह मता
जगत्सृष्टिस्थेमप्रलयसमुदायस्तव कृतिः ।
त्वमेवैका मातर्मतिवसुविहीनं ह्यपि जनं
भवाब्धेः रक्षित्वा त्वमृतपद दानाय यतसे ॥४॥

चतुर्वक्त्रैर्ब्रह्मा प्रभवति न वक्तुं तव गुणान्
न पञ्चास्यो शम्भुः कथयितुमलं ते गुणनिधिम् ।
गणेशो वाण्यां वा गुणकथनशक्तिश्च नहि ते
कथं मत्तुल्यः स्यात् स्तुतिकरणयोग्यो जननि ! ते ॥५॥

गौष्णवभाष्यकारश्रीगौष्णवाचार्यनिर्मितः ।
स्तवोऽयं भवतात् पाठात सर्वकल्याणकारकः ॥६॥

—०—

पाण्डितसम्राट्स्वामिश्रीगौष्णवाचार्यकृतः

श्रीजगन्मातृस्तवः ॥

वन्दे वेदनि वेदितां गुणनिधिं वन्दे सुचिन्त्यां परां
वन्दे शक्तिसमन्वितां भगवतीं वन्दे जगत्सर्जिकाम् ।
वन्दे चाखिललोकलीनकरणीं वन्दे जगत्पालिनीं
वन्दे श्रीजगदीशरामदयितां वन्दे जगन्मातरम् ॥१॥

वन्दे शास्त्रसमन्वितां सुखमयीं वन्दे च सर्वेश्वरीं
वन्देऽहं चिदचित्तनुं सकलगां वन्दे च रामात्मिकाम् ।
वन्दे श्रीजगदंशिनीं सुरुचिरां वन्देऽखिलान्तःस्थितां
वन्दे श्रीजगदीशरामदयितां वन्दे जगन्मातरम् ॥२॥

वन्देऽहं क्षितिजां च कोपरिहितां वन्दे क्षमाशालिनीं
वन्दे पापविनाशिनीं शुचितमां वन्दे परां भक्तिदाम् ।
वन्दे दिव्यशरीरिणीं शासिमुखीं वन्दे शुभां मुक्तिदां
वन्दे श्रीजगदीशरामयिदतां वन्दे जगन्मातरम् ॥३॥

वन्दे ब्रह्मशिवादिसंस्तुतपदां वन्दे परां देवतां
वन्दे मारुतिवन्दितां च वरदां वन्दे दयावारिधिम् ।
वन्दे स्वात्मसमर्पिणामभयदां वन्दे शरण्यां परां
वन्दे श्रीजगदीशरामदयितां वन्दे जगन्मातरम् ॥४॥

वन्दे भास्करभासिनीं स्वमहसा वन्दे जगच्छेषिणीं
वन्दे द्वन्द्वविवर्जिता सुखकरीं वंन्दे स्वनाथानुगाम् ।
वन्दे श्रीमिथिलाधिपस्य तनयां वन्दे महावत्सलां
वन्दे श्रीजगदीशरामदयितां वन्दे जगन्मातरम् ॥५॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितः ।
स्तवोऽयं भवतात् पाठात् सर्वथा सुखदायकः ॥६॥

अथ श्रीवशिष्ठसंहितार्गतं श्रीहनुमत्प्रोक्तं

श्रीसीताऽष्टाक्षरस्तोत्रम् ।

श्रीअङ्गद उवाच

लङ्कायां हि प्रचण्डाग्नेर्यत्पाठाद्रक्षितोऽसि तत् ।
सीताऽष्टाक्षरस्तोत्रं वक्तुमर्हसि मारुते ! ॥१॥

श्रीहनुमानुवाच

रामभक्त ! महाभाग ! सन्मते ! बालिनन्दन !
श्रीसीताऽष्टाक्षरस्तोत्रं सर्वभीतिहरं शृणु ॥२॥
श्रीमद्रामप्रिया पुण्या श्रीमद्रामपरायणा ।
श्रीमद्रामादभिन्ना च श्रीसीता शरणं मम ॥३॥
शरण्या श्रितरक्षित्री भास्करादेर्विभासिका ।
आकारत्रयशिक्षित्री श्रीसीता शरणं मम ॥४॥
शक्तिदा शक्तिहीनानां भक्तिदा भक्तिकामिनाम् ।
मुक्तिदा मुक्तिकामानां श्रीसीता शरणं मम ॥५॥
ब्रह्माण्युमारमाऽऽराध्या ब्रह्मेशादिसुरस्तुता ।
वेदवेद्या गुणाम्भोधिः श्रीसीता शरणं मम ॥६॥

शून्या हि निग्रहेणाथानुग्रहाब्धिः सुवत्सला ।
जननी सर्वलोकानां श्रीसीता शरणं मम ॥७॥

चिदचिद्भ्यां विशिष्टा च सच्चिदानन्दरूपिणी ।
कार्यकारणरुपा च श्रीसीता शरणं मम ॥८॥

विशोका दिव्यलोका च विभ्वी दिव्यविभूषणा ।
दिव्याम्बरा च दिव्याङ्गी श्रीसीता शरणं मम ॥९॥

कर्त्री च जगतो भर्त्री हर्त्री जनकनन्दिनी ।
जगद्धर्त्री जगद्योनिः श्रीसीता शराणं मम ॥१०॥

सवकर्मसमाराध्या सर्वकर्मफलप्रदा ।
सर्गेश्वरी च सर्वज्ञा श्रीसीता शरणं मम॥११॥

नित्यमुक्तस्तुता स्तुत्या सेविता विमलादिभिः ।
अमोघपूजनस्तोत्रा श्रीसीता शरणं मम ॥१२॥

कल्पवल्ली हि दीनानां सर्वदारिद्र्यनाशिनी ।
भूमिजा शान्तिदा शान्ता श्रीसीता शरणं मम ॥१३॥

आपदां हारिणी चाथ कारिणी सर्वसम्पदाम् ।
भवाब्धितारिणी सेव्या श्रीसीता शरणं मम ॥१४॥

श्रीवशिष्ठ उवाच

पाठाद् हनुमता प्रोक्तं नित्यमुक्तेन श्रद्धया ।
श्रीसीताऽष्टाक्षरस्तोत्रं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१२॥

देवस्तु स च तत्रैवाकस्मादन्तर्हितोऽभवत् ।
राजाऽपि प्रययौ तस्माद्धर्षशोकसमन्वितः ॥१०३॥
राजधानीं समागत्य राज्यकार्याणि मन्त्रिणि ।
संन्यस्य प्रययौ शीघ्रं गङ्गायास्तीरमुत्तमम् ॥४॥
गजोक्तविधिना राजा सर्वं चक्रे प्रयत्नतः ।
शापात् पापाच्च निर्मुक्तः पुत्रं कालेन चाप्तवान् ॥०५॥
एवं माहात्म्यसंयुक्तो राममन्त्रो विशेषतः ।
मोक्षप्रदो महामन्त्रो मन्त्रराजः प्रशस्यते ॥१०६॥

गजदेव तो अचानक वहीं अलक्षित हो गया । राजा भी वहां से हर्ष और शोक से युक्त होकर अपने घर चला आया ॥१०३॥

अपनी राजधानी आकर राज्य के सब कार्य मन्त्रिके अधीन कर शीघ्र गङ्गाजी के तीर की यात्रा की ॥१०४॥

राजा ने गज के वचनानुसार सब कार्य बहुत यत्न से किया शाप और पाप से रहित होकर समय पर पुत्र भी प्राप्त किया ॥१०५॥

ऐसे महात्म्य से युक्त श्रीराममहामन्त्र राज है यह विशेषरूप से मोक्षदायक महामन्त्र मन्त्रराज कहा जाता है इच्छानुसार अन्यफल तो देता ही है उपासनानुसार ॥१०६॥

श्रीसीता रामतः प्राप सा ददौ वायुसूनवे ।
ब्रह्मणे स ददावित्थं मन्त्रराजपरम्परा ॥१०७॥

प्रातरुत्थाय ये नित्यं सततं श्रद्धयाऽन्विताः ।
पठन्तीमां पर प्रीत्या मन्त्रराजपरम्पराम् ।
तेऽपि ब्रह्मपदं यान्ति मुक्त्वा देहमिमं खलु ॥१०८॥

यह मन्त्रराज श्री सीता जी ने सर्वेश्वर श्री राम जी से प्राप्त किया उन्होंने श्री हनुमान् जी को दिया इस श्री राममहामन्त्र को श्री हनुमानजी ने श्री ब्रह्मा जी को दिया, इसप्रकार से श्री-राममन्त्रराज की परम्परा चली आती है गीतानन्दभाष्यमें जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने इसी अपनी परम्परा का इस प्रकार उल्लेख किया है ।

"श्रीरामं जनकात्मजामनिलजं वेधोवसिष्ठामृषी
योगीशञ्च पाराशरं श्रुतिविदं व्यासं जिताक्षं शुकम् ।
श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यान्यतीञ्
छ्रीमद्राघवदेशिकञ्च वरदं स्वाचार्यवर्यं श्रये" ॥१०७॥

प्रातःकाल में उठकर जो हमेशा श्रद्धायुक्त होकर इस श्री राममन्त्रराज की परम्परा बहुत प्रीति से बढते हैं वे भी इस पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़कर ब्रह्मस्थान श्रीसाकेत धाम को प्राप्त करते हैं ॥१०८॥

ऋषय ऊचुः

राममन्त्रस्य माहात्म्यं श्रुत्वा वेदविदांवर ! ।
कृतार्थाः कृतकृत्याश्च सर्वथैनाधुना वयम् ॥१०९॥

इति श्रीपाञ्चरात्रे श्रीमद्वाल्मीकिसंहितायां
कथामुखेन राममन्त्रमाहात्म्य वर्णनं नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ मुनीश्वर ! आप से इस श्रीराममन्त्र का महात्म्य सुनकर इस समय में हमसब सवप्रकार से कृत कृत्य हो गये हैं ॥१०९॥

इति श्री पाञ्चरात्रे श्रीमद्वाल्मीकि संहितायां श्री राममन्त्र माहात्म्य वर्णनात्मकस्य तृतीयाध्यायस्य स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य-कृत प्रकाश हिन्दी व्याख्या ॥३॥
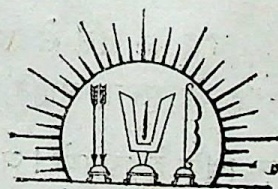
वाल्मीकिसंहितायां चतुर्थोऽध्यायः

ऋषय उचुः

भगवंस्ते मुखोद्गीर्णं निपीय वचनामृतम् ।
तृप्तिर्न जायतेऽस्माकं शुश्रूषा चैव वर्धते ॥१॥

अतः श्रोतुं समिच्छामः सकाशात्ते महामुने ! ।
वैष्णवैः कीदृशं पुण्ड्रं कार्यं विष्णुपरैरिति ॥२॥

वाल्मीकिरुवाच

धर्मतत्वप्रिया यूयमृषयो ज्ञानवेदिनः ।
तस्माद्वक्ष्यामि युष्मभ्यं पुण्ड्रं कार्यं तु यादृशम् ॥३॥

चतुर्णामपि वर्णानां यथा ब्राह्मण उत्तमः ।
सर्वेषामपि धर्माणां तथा वैष्णव उच्यते ॥४॥

ऋषियों ने कहा कि हे भगवन् ! आप के मुख से निकला हुआ वचन रूप अमृत पीकर हमें तृप्ति नहीं होती है, आप के वचनामृत के सुनने की इच्छा बढ रही है ॥१॥

अतः हे महामुने ! आप के पास से विष्णुपरायण वैष्णवों का धारणीय पुण्ड्र कैसा है वह सुनना चाहते हैं ॥२॥

वाल्मीकि जी ने कहा कि हे ऋषियों ! आप धर्म के तत्त्व के प्रेमी और ज्ञान के जानने वाले हैं, इसकारण से आप को जैसा पुण्ड्र वैष्णवों का कर्तव्य है वह कहूँगा ॥३॥

सर्वेषामपि वेदानां पुराणानां च सर्वथा ।
परहिंसा न कर्तव्याऽत्रैकमत्यं च विद्यते ॥५॥

अहिंसा परमो धर्मोऽहिंसा परमं व्रतम् ।
अहिंसा परमं ध्येयं नास्ति धर्मस्ततोऽधिकः ॥६॥

स एव परमो धर्मः केवलं पृथिवीतले ।
वैष्णवैः पाल्यते नित्यं तस्माद् वैष्णव उत्तमः ॥७॥

सुवर्णानि ददानानामश्वमेधशतानि च ।
कुर्वाणानां नृणां धर्मो जायते यस्तु नित्यशः ॥८॥

स धर्मः प्राप्यते नित्यं परहिंसा विवर्जितैः ।
मानवैस्तु जगत्यस्मिन्नास्ति कोऽप्यत्र संशयः ॥९॥

चार वर्णों में जैसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं वैसे सवधर्मों में वैष्णवधर्म उत्तम कहा जाता है ॥४॥

सभी वेदों का और पुराणों का एक मत है कि—परहिंसा सबप्रकार से वर्जित है ॥५॥

अहिंसा परमधर्म है और परम व्रत है और अहिंसा परमध्यान योग्य है अहिंसा से वडा अन्य धर्म नहीं है ॥६॥

वही अहिंसाधर्म पृथिवीतल में सीर्फ वैष्णवों से पाला जाता है इस हेतु से वैष्णव श्रेष्ठ हैं ॥७॥

सुवर्णों का दान करने से सौ अश्वमेध यज्ञ करने से मनुष्यों को जो धर्म इसलोक में सर्वदा होता है ॥८॥

वेवेष्टिदं जगत्सर्वं यः स विष्णुः स्मृतो बुधैः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुसेवापरायणः ॥१०॥
वैष्णवा यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति देवताः ।
स्वयं गच्छति विष्णुश्च ह्येष वेदार्थसङ्ग्रहः ॥११॥
गंगा च यमुना चैव कावेरी च सरस्वती ।
सरयूनर्मदा सर्वास्तीर्थनद्यः प्रयान्त्यपि ॥१२॥
यत्रैव वैष्णवाः सन्ति तत्रायोध्या च काशिका ।
मथुराऽवन्तिका तत्र पुर्यः सर्वस्य पाविकाः ॥१३॥

वह धर्म पर हिंसा रहित मनुष्य प्राप्त कर सकते हैं इसमें कोई संदेह नहीं है । ९॥

जो सब जगत् को व्याप्त करते हैं वे पण्डितों से विष्णु कहे जाते है विष्णु की सेवा में तत्पर जन सव पापों से मुक्त हो जाता है ॥१०॥

वैष्णव जहाँ जाते हैं वहाँ सभी देवता जाते हैं और विष्णु खुद वहां जाते हैं यह वेदार्थों का संग्रह सार है ॥११॥
गङ्गा यमुना कावेरी और सरस्वती सरयू और नर्वदा सभी तीर्थ नदियाँ भी वहाँ जाती हैं, ॥१२॥

जहाँ वैष्णव रहते हैं, वहीं अयोध्या काशी मथुरा और अवन्तिका प्रभृति मन को पवित्र करने वाली पुरी भी हैं ॥१३॥

भूतप्रेतपिशाचाद्या ये च राक्षसयोनयः ।
सर्वे तस्मात् पलायन्ते यत्र गच्छन्ति वैष्णवाः ॥१४॥

रमन्ते योगिनो यस्मिन् स रामः परिकीर्तितः ।
परिवेष्ट्य स्थितः सर्वं सैव विष्णुः समीरितः ॥१५॥

स एव भगवान् कृष्णो गोपी गोपानुरञ्जकः ।
तस्य विष्णो महा बाहोर्भक्तानां पुण्ड्रसंग्रहः ॥१६॥

उच्यते श्रूयतां सम्यक् सावधानेन चेतसा ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदा कार्यं विष्णुभक्तिपरायणैः ॥१७॥

पातित्यमन्यथा प्राप्य रौरवं नरकं व्रजेत् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो विप्रो विष्णुध्यानपरायणः ॥१८॥

वीतपापः स धर्मात्मा स्वर्गलोकं समश्नुते ।
हरेः पादाकृतिं कुर्यान्मध्यच्छिद्रसमन्वितम् ॥१९॥

जिसमें योगीजन रमण करते हैं वह श्री राम है, श्रीराम ही सबको परिवेष्टित कर के स्थित है अतः वहीं विष्णु इस नामसे कहा गया है, ॥१४॥

वही श्री राम श्री कृष्ण रूप में गोपी गोपों का अनुरञ्जक है। उन महाबाहु विष्णु के भक्तों के पुण्ड्रों का संग्रह रूप से कहा जाता है उसे सावधान मन से अच्छी तरह सुनिये॥१७।

विष्णु की भक्ति में तत्परजनों को सदा ऊर्ध्वपुण्ड्र करना

ऊर्ध्वपुण्ड्रं स्वमोक्षाय दुःखनाशाय सर्वथा ।
आचम्यैवोर्ध्वपुण्ड्रं तु शुद्धया च मृदा सदा ॥२०॥
कुर्याच्चाथान्तरालेषु हरिद्राधारणं तथा ।
रैवतकाच्चित्रकूटाद् यादवाद्रेश्च वैष्णवाः ॥२१॥
मृत्तिकाहरणं कुर्युरूर्ध्वपुण्ड्राय सर्वदा ।
गंगायाः सूर्यकन्यायाः सरय्वा वा मृदा सदा ॥२२॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं शुभं कुर्युर्वैष्णवा धर्मरक्षकाः ।
पूर्वं सिंहासनं कुर्युस्ततः पार्श्वद्वयं पुनः ॥२३॥

चाहिए यदि वह ऊर्ध्व पुण्ड्र नहीं करे तो पातित्य प्राप्त कर अर्थात् प्रतित होकर रौरव नरक में जायेगा ॥१८॥

विष्णुभक्ति परायण ब्राह्मण ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी हो तो पापरहित वह धर्मात्मा स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है ॥१९॥

हरि के चरणाकार मध्यच्छिद्र से युक्त ऊर्ध्व पुण्ड्र करने वाले का सब प्रकार के दुःखनाश होकर वह मोक्षभागी होता है ॥२०॥

पहले आचम कर विशुद्ध मिट्टी से ही हमेशा ऊर्ध्व पुण्ड्र करे और बीच में हलदी का धारण करे जो कुङ्कुम वा श्री है हलदी में नीबू के रस देने से लाल हो जाता है वही श्री है ॥२१॥

रैवतक चित्रकूट यादव गिरि से वैष्णव लोग सर्वदा ऊर्ध्व पुण्ड्र के लिए मिट्ठी ले आवे ॥२२॥

ततः पश्चाच्च तन्मध्ये लिखेयुः सुन्दरीं श्रियम् ।
रजन्या श्रियमालिख्य मृदावाऽपि च शुक्लया ॥२४॥
वैष्णवो मुक्तिमाप्नोति सर्वकल्मषवर्जितः ।

ऋषय ऊचुः

भगवंस्त्वद्वचः श्रुत्वाऽभवामच्छिन्न संशयाः ॥२५॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य भेदोऽन्यः स्याद्यदीह तमप्यलम् ।
श्रोतुमिच्छामआख्याहि सर्वसामर्थ्यवानसि (वन्मुने) ॥२६॥

वाल्मीकिरुवाच

एकदा सुखमासीनं वैकुण्ठे च रघूत्तमम् ।
वायुसूनुर्महातेजा ब्रह्मचारि जितेन्द्रियः ॥२७॥

अथवा गंगा यमुना और सरयू नदी की मिट्टी से धर्मरक्षक वैष्णव शुभ ऊर्ध्व पुण्ड्र करे ॥२३॥

पहले सिंहासन करे बाद में पार्श्वद्वय करे उसके बाद उसके बीच में अच्छी तरह से श्री लगावें ॥२४॥

हलदी से वा श्वेत मिट्टी से श्री तीलक करने वाला श्री वैष्णव सब पापों से रहित हो कर मोक्ष पाता है ॥२५॥

ऋषियों ने कहा--कि हे भगवन् ! आपके वचन सुनकर छिन्न संदेह हम हों गये । यदि ऊर्ध्व पुण्ड्र का दुसरा भेद हो तो वह भी हम सुनना चाहते हैं आप सर्व सामर्थ्यवान् हैं अतः वह भी अच्छी तरह कहिये । ॥२६॥

एतादृशान्बहूनप्रश्नानपप्रच्छ (चकार) कपिकुञ्जरः।
श्रीरामस्तोषयामास तं तथाऽहं तथर्षयः ॥२८॥
सर्वं वदामि युष्मभ्यं शृणुध्वं मुनिसत्तमाः।
तच्छ्रुत्वाच्छिन्नसंदेहा यूयं तेन भविष्यथ ॥२९॥

भगवद्वचनं हनूमन्तं प्रति

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य भेदास्तु बहवः सन्ति शाश्वताः।
तानहं ते वदिष्यामि श्रूयतां (शृणुत्वं) कपिकुञ्जर ? ॥३०॥
मद्भक्ता द्विविधाः प्रोक्ताः शुद्धसत्वः सुबुद्धयः।
मामेव केवलं लोके भजन्ते जानकीं विना ॥३१॥
जानकीसहितं मां तु भजन्ते सर्वदाऽपरे।
एतेष्वपि च केचित्तु भक्तिमन्तोऽधिकं मयि ॥३२॥

बाल्मीकि जी ने कहा--कि--एक समय में वैकुण्ठ में सुख पूर्वक वैठे श्री राम जी से महातेजस्वी ब्रह्मचारी जितेन्द्रि वानरश्रेष्ठ श्री हनुमान जी ने ऐसे वहुत प्रश्न किये तब श्री रामजी ने उन्हें जैसे सन्तुष्ट किये वैसे ही हे ऋषियों मुनि श्रेष्ठों आप से कहता हूँ सुनिये उसे सुनकर आप नष्ट संदेह हो जायेंगें ॥२७-२८-२९॥

श्री रामवचन श्री हनुमान जी के प्रति—

ऊर्ध्वपुण्ड्र के भेद बहुत हैं तथा सार्वदिक हैं, हे कपिश्रेष्ठ उन भेदों को आपको कहता हूँ सुनिये ॥३०॥

मेरे भक्त दो प्रकार के हैं शुद्ध सत्त्व और सुबुद्धि। प्रथम मुझे श्री सीता रहित भजते हैं दूसरे भक्त सीता श्री सहित मुझे सदा भजते हैं ॥३१॥

जानक्यामेव चान्येषां दृढा भक्तिः प्रजायते ।
मदनुरागिणो भक्ता धारयन्ति न च श्रियम् ॥३३॥
सीताभक्ताः प्रकुर्वन्ति मध्ये विन्दुं श्रियं शुभाम् ।
येषां सदाऽऽवयोरेव भक्तिर्भवति वै समा ॥३४॥
ते शुक्लां रक्तवर्णाश्च दीर्घां विदधति श्रियम् ।
कृष्णरूपधरं मां ये वैष्णवाः समुपासते ॥३५॥
ते कृष्णं चापि रक्तं चाप्यूर्ध्वपुण्ड्रं सविन्दुकम् ।
कुर्वन्ति च महाभागा भक्ति भावसमन्विताः ॥३६॥
इति श्रीपाञ्चरात्रे श्री वाल्मीकिसंहितायामूर्ध्वपुण्ड्र
निरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

इन भक्तों में कोई मुझ में अधिक भक्तिवाले होते हैं । तथा दूसरे की भक्ति सीता में ही दृढ होती है ॥३२॥

मुझ में हो अनुराग वाले भक्त श्री का धारण नहीं करते हैं, श्री सीता जी के भक्त बीच में शुभ सूचक विन्दु श्री करते हैं ॥३३॥

जिनकी भक्ति हम दोनों में श्री सीता राम में समान होती है वे बीच में सफेद लाल लम्बी श्री का धारण करते हैं, ॥३४॥

जो महाभाग भक्ति भाव से युक्त वैष्णव कृष्ण रूप धारी मुझे भजते हैं वे काला और लाल विन्दु सहित ऊर्ध्वपुण्ड्र करते हैं ।

इति श्री वाल्मीकी संहितायामूर्ध्वपुण्ड्र
निरूपणस्य चतुर्थाध्यायस्य प्रकाशः ॥४॥

श्रीरामाय नमः

श्री वाल्मीकिसंहितायाः

पञ्चमोऽध्यायः

ऋषयऊचुः

महर्षे ! कृतकृत्याः स्मोनिपीयत्वद्वचोऽमृतम् ।
इदानीं किञ्चिदन्यद्वै जिज्ञास्यं नोऽस्ति हे प्रभो ।१।
वैष्णवानां च सर्वेषां केन केन च कर्मणा ।
कालक्षेपस्तु कर्तव्यस्तन्मे(तन्नो) ब्रूहि समासतः ॥२॥

वाल्मीकिरुवाच

एकदातु पुराकाले गिरिजा गिरिजापतिम् ।
इदमेव परंतत्त्वं पप्रच्छ श्रद्धया युता ॥३॥

ऋषियों ने कहा कि विभो महर्षे ! आप के वचन रूप अमृत का पान कर हम कृतकृत्य हैं, इस समय में कुछ दुसरा प्रष्टव्य-है ॥१॥

सब वैष्णवों को कौन कौन कर्म से कालक्षेप करना चाहिये वह संक्षेप से हमें कहिये ॥२॥

श्री वाल्मीकिजी ने कहा कि एक समय में पूर्वकाल में श्री पार्वतीजी ने श्रीशिवजी को यही उत्कृष्ट तत्त्व श्रद्धा से युक्त हो पूछा ॥३॥

रुद्रस्तुतद्वचः श्रुत्वा ह्यत्यन्तप्रीतमानसः ।
उवाच वचनं चेदं वैष्णवानां शिरोमणिः ॥४॥

रुद्रोक्तिः पार्वतीं प्रति

ब्राह्ममुहूर्ते चोत्थाय भगवन्नाम संस्मरेत् ।
ततो बाह्यप्रदेशेषु मलमूत्रे [त्रं] विसर्जयेत् ॥५॥

सप्तवारंच मृत्स्नाभिर्हस्तौसम्यग् विशोधयेत् ।
त्रिवारं सर्वदा कुर्यात् पादयोरपि शोधनम् ॥६॥

नद्यां वापि सरस्यांवा तटाकेवा महाहृदे ।
कूपेवा सर्वदा स्नायाच्छुद्धिमिच्छन् द्विजोत्तमः ॥७॥

तब वैष्णवों के मध्य में सर्वश्रेष्ठ श्री शिवजी ने श्री पार्वतीजी का वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्नचित होकर यह वक्ष्यमाण वचन कहा--कि ॥४॥

श्री शिवजी का वचन श्री पार्वतीजी के प्रति वैष्णव ब्रह्म मुहूर्त यानी रात्रि के चौथे भाग में उठकर यानी जागकर भगवान् के नाम का स्मरण करे वाद बाहर प्रदेश में दूर जाकर मल और मूत्र का त्यांग करे ॥५॥

उसके बाद अच्छी मिट्टी से सात बार दोनो हाथों को शुद्ध करे, प्रतिशौच जाने में दोनों पावों को भी तीनबार मृत्तिका से शुद्ध करे ॥६॥

द्वादशानूर्ध्वपुण्ड्रांश्च कृत्वावै संयतेन्द्रियः ।
सन्ध्याभिवन्दनं कुर्यान्मोक्षकामः सदाद्विजः ॥८॥

धनुर्बाणधरोरामोद्विभुजः श्यामसुन्दरः ।
जलजाक्षः किरीटी च सीतया सहितः सदा ॥९॥

ध्यानगम्योऽनुसन्ध्येयः सर्वश्रीवैष्णवैर्हृदि ।
सीतोष्णसुखदुःखेषु मित्रामित्रो प्रियाप्रिये ॥१०॥

हस्त पादशोधन के बाद दन्त धारण कर नदी सरोवर तडाग (पोखरा) महा अगाध जल वाले जलाशय में और उसके अभाव में कूंए में ब्राह्मण जो शुद्धि की इच्छा वाला हो सर्वदा यानी प्रतिदिन स्नान करे ॥७॥

स्नान के बाद बारह ऊर्ध्व पुण्ड संयतेन्द्रिय होकर तिलक कर मोक्षार्थी ब्राह्मण सर्वदा सन्ध्या वन्दन करे ॥८॥

ऊर्ध्व पुण्ड्र करने के बाद धनुर्बाण धारी द्विभुज श्यामवर्ण मनोहर कमल नयन मुकुटधारी सदा श्री जानकी जी के साथ विराजमान ध्यान से प्राप्य श्रीरामजी का स्मरण मन में सब श्री वैष्णवों को करना चाहिये ॥९॥

वैष्णव को सदा ज्ञान योग में तत्पर पवित्र हो शीत गर्मी सुख और दुःखों में समान मित्र और शत्रु में समान और प्रिय और अप्रिय में समान रहना चाहिये ॥१०॥

समःस्याद् वैष्णवोनित्यं ज्ञानयोगरतः शुचिः ।
अनिशं भगवान् रामोजगन्माता च जानकी ॥११॥

भक्त्या त्वनन्यया देवि ध्यातोभक्तं प्रपश्यति ।
नित्यवैभवसंयुक्तो नित्यलीलापरायणः ॥१२॥

नित्यशोभैकनिलयो नित्यकेलिकरः प्रभुः ।
सर्वस्य जगतः कर्ता भर्ता हर्ता तथैव च ॥१३॥
नित्यमुक्तैः समाकीर्णो हनुमदादिभिः सदा ।
सीताशोभितवामाङ्गो रामो राजीवलोचनः ॥१४॥

हे पार्वती भगवान् श्री रामजी भगवती जगज्जननी श्रीजानकी जी अनन्य भक्ति से सर्वदा ध्यान करने वाले कपने भक्त को देखते हैं ॥११॥

वे श्री रामजी नित्य वैभवोंसे युक्त हैं नित्यलीला में तत्पर नित्य शोभाओं का एक मात्र आधार हैं नित्य क्रीडा को करने वाले प्रभु श्रीराम हैं ॥१२॥

सब जगत् का कर्ता भर्ता और हर्ता नित्य जीवनमुक्त श्री हनुमान्जो आदियों से सदा सेवित श्री जानकी जी से शोभित स्वभक्तानुकूल स्वभाव वाले सहस्त्र दल कमल के समान नेत्र वाले भूलीला आदि देबियों से सेवित चरण कमल लाले हैं ॥१३॥

वे सर्वात्मा सर्वात्मना शुद्ध सनातन सर्वभावमय स्वामी सर्वव्यापक सर्वद प्रभु हैं ॥१४॥

भूलीलेत्यादिदेवीभिः सेविताब्जपदद्वयः ।
सर्वात्मा सर्वनामा च शुद्धो बुद्धः सनातनः ॥१५॥
सर्वभावमयः स्वामी सर्वगः सर्वदः प्रभुः ।
स्वर्णसिंहासनासीनः साकेते परमे पदे ॥१६॥
नित्यं ध्येयः स तद्भक्तैरेष धर्मः सनातनः ।
ततः पश्चात्त्रिराचम्य रामभक्तिसमन्वितः ॥१७॥
महोपनिषदं प्रेम्णा मैथिल्याः सततं पठेत् ।

गिरिजोवाच

नाथ ! केयं त्वयाऽऽदिष्टामहोपनिषदश्रुता ॥१८॥
मैथिल्यास्तु महालक्ष्यास्तन्मेब्रूहिदयानिधे ! ।

सुवर्ण सिंहासन पर बैठे हुए परमपद साकेत में वे श्री रामजी उनके भक्तों से नित्य ध्यातव्य है उन श्री रामचन्द्रजी का ध्यान रूप यह कर्म ही सनातन धर्म है ॥१५॥

उसके बाद तीन आचमन कर श्रीरामजी की भक्ति में तत्पर हो प्रेम से श्री मैथली महोपनिषत् का पाठ करे ॥१६॥

श्री पार्वती ने पूछा हे स्वामिन् श्री शिवजी ! श्री मैथिली महालक्ष्मी की महोपनिषत् आपने कही वह अश्रुत है हे दयानिधे वह मुझे कहिये ।.१७॥

श्री शिवजी ने कहा - कि—हे पार्वती देवि ! नित्य शुद्ध सनातनी वेद में प्रसिद्ध और वेदस्वरूपिणी श्री मैथिली—महोपनिषत् के स्वरूप को कहता हूँ सुनो ॥१८॥

प्रमाणमर्थस्याऽनुमानादिति–वा. भा. १।१।८। अतएव शब्द का भी प्रामाण्य प्रत्यक्ष एवं अनुमाम के द्वारा हो सिद्ध होने के कारण शब्द प्रमाण अनुमान और प्रत्यक्ष से निर्बल है। यह हुआ विचार जहाँ प्रमाण अभिसम्प्लव होता है उस विषयक। परन्तु कुछ विशेष विषयों में जहां प्रमाण अभिसम्प्लव न होकर व्यवस्था होती हैं जैसे–'अग्नि होत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः यहां लौकिक पुरुप को स्वर्ग का ज्ञान नहीं प्रत्यक्ष से होता है न अनुमान से प्रत्युत केवल शब्द प्रमाण से 'स्तनयित्नु शब्दे श्रूय माने शब्द हेतो रनुमानम् यहाँ न तो प्रत्यक्ष प्रमाण होता है और न आगम, प्रत्युत केवल अनुमान, पाणौ प्रत्यक्ष उपलभ्य-मानेनानुमानम नागम यहां न अनुमान हो सकता हैं न आगम प्रत्युत केवल प्रत्यक्ष। अतएव व्यवस्था के प्रकरण में जैसे आकाश या पहाड पर न जल पोत जा सकता है और न कार प्रत्युत हवा-ईजहाज (हेलिकोप्टर) जल में न हवाई जहाज जा सकता है न कार प्रत्युत जलपोत, स्थल पर न हवाईजहाज चल सकता है न जल पोत प्रत्युत कार। इसी प्रकार प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द इन तीनों में हो अपनो अपती विशेषता है जो अन्य दो में नही है। अतएव सभी प्रमाण इस व्यवस्था के प्रकरण में अबाध हैं।

अतएव ईश्वर के प्रकरण में सभी प्रमाण अपनी अपनी स्व-विशेषता से ईश्वर की सिद्धि करते हैं और ईश्वर सर्वप्रमाण सिद्ध परम प्रामाणिक तत्त्व है।

प्रत्यक्षमनुमानञ्च शास्त्रञ्च विविधागमम्।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता॥ मनु० १२।१०५॥

पाटोत्सव

सनातन जगत् में पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दपीठ उत्सव पारायण प्रवचन आदि आयोजनों के लिये सुविख्यात है। इन आचार्यपीठों में कदाचित्‌हि कोई महिना खाली जाता है कि कोई न कोई धार्मिक व सामाजिक कार्य का अयोजन नहो। आचार्य पीठ के विशेष आयाजनों में से एक श्रीविश्रामद्वारकाधोश जीका पादोत्सव है जो माघ शुक्ल पञ्चमी के दिन बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है। उसदिन भगवान् की शोभा यात्रा विशिष्ट सजावट से वाजते गाजते निकलती है तीर्थस्थान के चारों ओर दूर-दूर के हजारों लोग बडे उत्साह से इस यात्रा में सम्मिलित होते हैं। इस वर्ष दि० १९-१-८३ बुधवार को यह उत्सव मनाया जायेगा। इस प्रसंग में श्रीमद् भागवत रामायण प्रवचन का भी आयोजन है जो १९।१।८३ से २६।१।८३ तक सम्पन्न होगा।

मुद्रकः-श्रीरामानन्द प्रिंटिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद-२२

त्रिदण्ड संस्थान श्रीशेषमठ-धर्मप्रचार विभागसे धर्मप्रचारार्थ प्रकाशित

प्रेषक-श्री कोसलेन्द्र मठ सरखेज रोड
पो० पालड़ी, अहमदाबाद-३८० ००७
प्रापक ग्रा. नं.
प्रति श्री. ......

१७७ रजिस्ट्रार
गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार (यु. पी.)

वाराणसीस्थ आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यपीठाचार्य

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य - राम प्रपन्नाचार्य

योगीन्द्र प्रवर्तित विश्राम द्वारकास्थ श्री कोशलमठ संचालित

ज. गु. श्री रामानन्दाचार्य - पीठ

सचित्र धार्मिक मासिक

संरक्षक - शेठ श्री अमरशी कुरजी मजिठिया

सम्पादक - स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य

सहसम्पादक - पं. शरच्चन्द्र शास्त्री

जगन्नाथोऽनाथावनदृढ मतिः सर्वगतिकः
स्वतन्त्रस्सर्वज्ञा निरवधिककल्याणग्रगुकः ।
विरिञ्चेशानाद्यैरमरपतिभिः स्वर्चितपदः
परेशः श्रीरामोविहरतु हृदब्जे मम चिरम् ॥
(जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्याः)

कार्यालयः श्री कोसलेन्द्र मठ, सरखेज रोड, पालडी,
अहमदाबाद - ३८०००७

वर्ष ४ विक्रमाब्द २०३९ अंक १२
श्रीरामानन्दाब्द ६८३ १ फरवरी १९८३

श्रीवेदरहस्यमार्तण्डभाष्यकार जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्य
दुर्वादिध्वान्तमार्त्तण्डनिर्मिता

श्रीबोधायनद्वादशी

बोधायनाय वरधर्मसुबोधकाय
बोधायनाय वरगृह्यविदे नमस्ते ।
बोधायनाय निगमस्य रहस्यदाय
बोधायनाय निगमार्थविदे नमस्ते ॥१॥

बोधायनाय गमनागमनाशकाय
बोधायनाय निगमैकनिधे नमस्ते ।
बोधायनाय सुमतेर्वरदानदाय
बोधायनाय कुमतेश्च हृते नमस्ते ॥२॥

बोधायनाय वरयोगिसुवन्दिताय
बोधायनाय वरयोगविदे नमस्ते ।
बोधायनाय वरसिद्धसुपूजिताय
बोधायनाय वरसिद्धिनिधे नमस्ते ॥३॥

बोधायनाय वरवादिभयङ्कराय
बोधायनाय वरवादकृते नमस्ते ।
बोधायनाय वरशास्त्रसुबोधकाय
बोधायनाय वरबोधनिधे नमस्ते ॥४॥

बोधायनाय गुरवे पुरुषोत्तमाय
बोधायनाय महते मुनये नमस्ते ।
बोधायनाय शुकलब्धसुतारकाय
बोधायनाय महिमाम्बुधये नमस्ते ॥५॥

[शेष भाग टाइटल ३ पर [
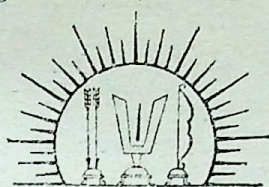
श्रीविश्रामद्वारिका में पाटोत्सव सम्पन्न

पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्द पीठ में श्री विश्रामद्वारिकाधीशजी का पाटोत्सव विशेष समारोह के साथ प्रतिवर्ष वसन्तपञ्चमी के दिन अयोजित होता है। इस वर्ष श्रीमद्भागवत सप्ताह एकाह श्रीरामयाग तथा श्रीरामार्चा महा पूजा के आयोजन के साथ कार्यक्रम आयोजित था जिसमें हजारों भाविक उत्सव में संमिलित होकर लाभान्वित हुए ता० १९-१-८३ को श्रीविश्रामद्वारकाधीशजी की शोभायात्रा डंकानीशान वेदध्वनि—पुरुष सूक्त पाठ तथा भजन कीर्तन मण्डली कला पूर्ण रूप से सजे जलपूर्ण कलश से सुशोभित कामिनियाँ व अनन्त अन्य नर नारी से युक्त होकर निकली। दर्शकों की भीड जम गई थी। श्रीविश्राम द्वारकाधीशजी का रथ कला पूर्ण ढंग से सजाया गया था जिसे गोपाल सत्संग मण्ल के स्वयं सेवक बडे प्रेम से खीच रहे थे। श्रीराममहायाग ता. २६।१।८३ को ८ से १२ में सम्पन्न हुआ तथा श्रीरामार्चा महा पूजा तथा महात्म्य प्रवचन ता० २७।१।८३ को ८।३० से १२ बजे तक सम्पन्न हुआ। समागत सज्जन—अतिथि तथा तीर्थ स्थल के समस्त वालकों को श्रीरामार्चा महापूजा का प्रसाद सेवन कराया गया। श्रीमद्भागवत के प्रवाचक पश्चिमान्नाय श्रीरामानन्द पीठाधीश्वर श्रीरामानन्द दर्शन जगत के ख्यातनामा स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य जी थे। भागवतामृत पान करने के लिये हजारों की भीड जम जाती थी। सानन्द वातावरणमें सब्र कार्यक्रम सम्पन्न हुये।
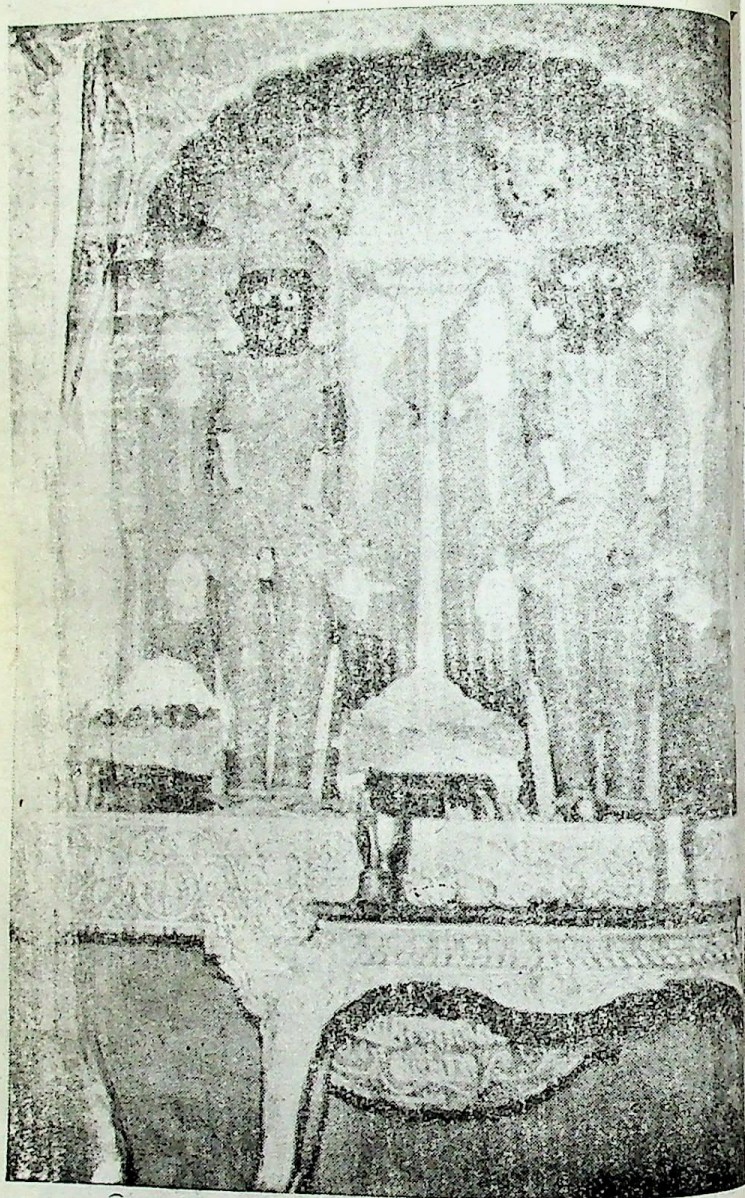
विश्राम द्वारकाधीश श्रमाधवराय तथा श्रीकल्याणराय जी
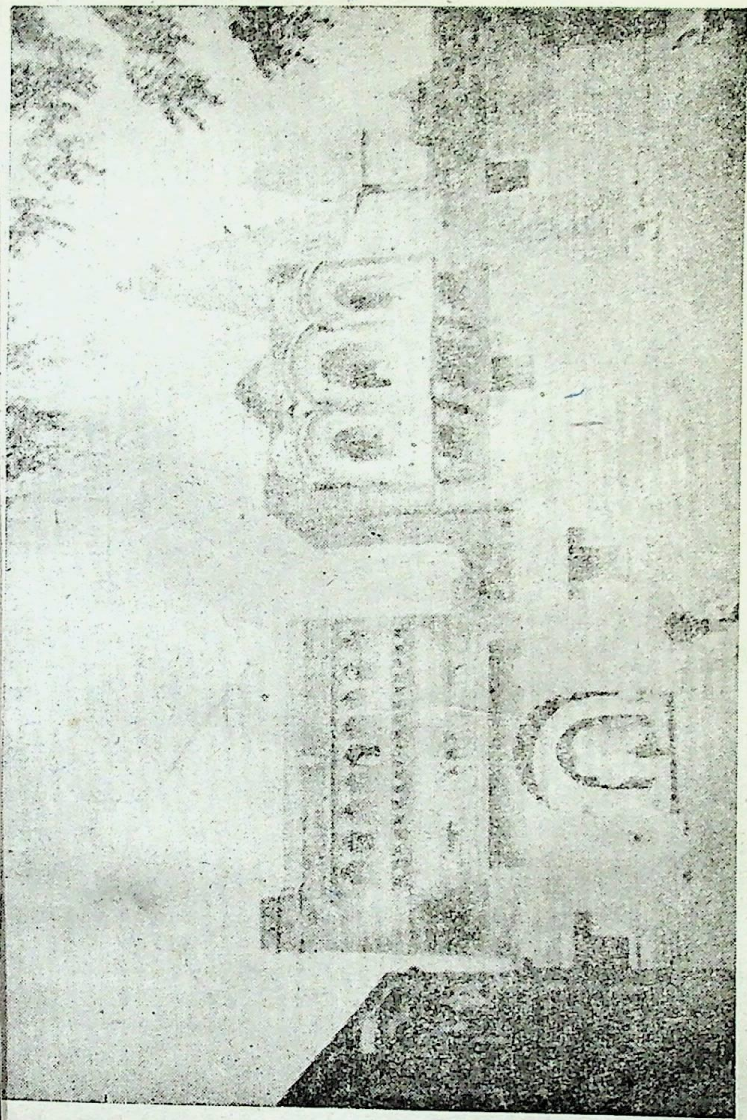
विश्रामद्वारका की चित्ताकर्षक झांका

विश्रामद्वारिकाधीश जी के शोभायात्रा का एक दृश्य जिसमें मन्दिर शिखरों की भव्य झांकी के साथ जलपूर्ण कलश लिए अनन्त युवतियां तथा रथ के साथ अनन्त पुरुष वर्ग दिखाई दे रहे हैं ।
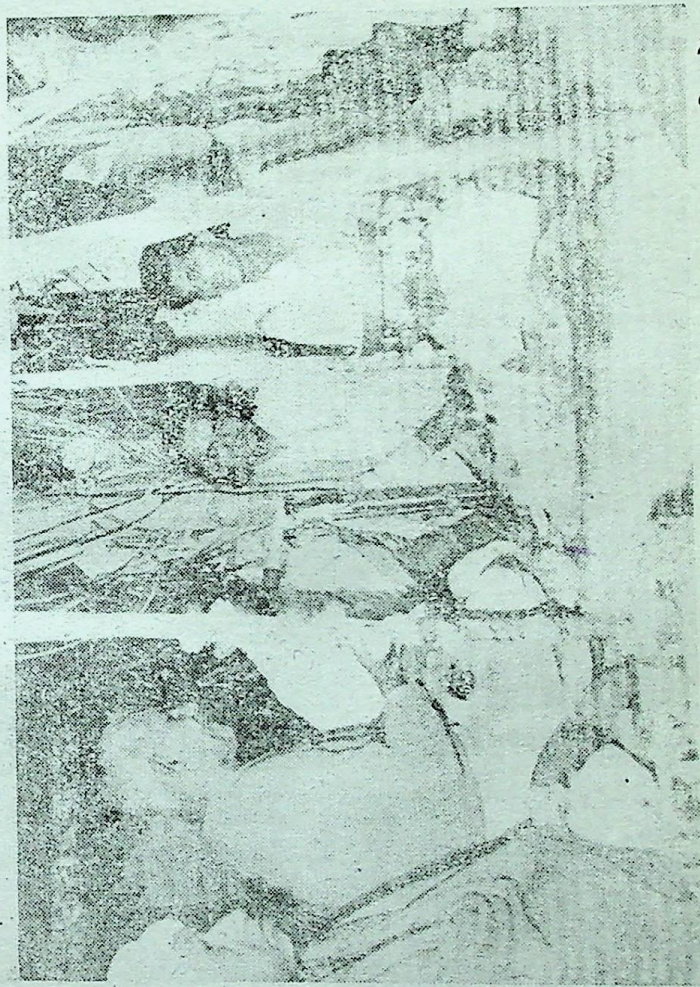
श्री विश्राम द्वारका में सम्पन्न ऐतिहासिक श्री राममहायज्ञ का एक दृश्य जिसमें शास्त्री प्रभृति दिखाई दे रहे हैं।

श्रीवसन्तपञ्चमी

भरतीय संस्कृति का यह विशेष पर्व अनेक विशेषताओं को लेकर आता है। विशेषकर यह सरस्वती समुपासकों का पर्व माना जाता है। इसमें सरस्वती की पूजा-आराधना की जाती है। यह पर्व ऋतुओं के राजा वसन्त का आमुख होने से प्रत्येक जीव-मात्र को मुखरित कर देता है। इसके गहनकक्ष में अनेक विशेताएँ सन्निहित हैं। भारतीय दर्शन (श्री रामानन्द दर्शन) के महाविभूतिद्वय श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के २४ वें आचार्य जगद्गुरु श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी तथा ३९ वें आचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्य जी वेदान्तकेशरीजी भी इस पुण्यतिथि से अछूते नहीं रह सके। २४ वें आचार्य की अवतारतिथि रही तो २९ वें आचार्यश्री की पुण्यतिथि।

श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के २४ वें आचार्य

जगद्गुरु श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी

आविर्भाव-वसन्तपञ्चमी संवत् १५०२ वि.

तिरोभाव-अज्ञात शोध प्रयत्न चालू है।

जन्मस्थल-काशी

द्वारपीठस्थल-श्री बालानन्दमठ जयपुर

जीवन-परिचय

सरयूपारीण ब्राह्मण पिता का नाम यज्ञनिधिशर्मा त्रिपाठी। माता का नाम श्रीमती श्रीदेवी जन्मनाम श्रीअनूपनिधि शर्मा सम्प्रदाय-मतानुसार श्री अत्रि ऋषि के अवतार।

कर्मकाण्ड एवं वैदिक, ऋचाओं के प्रति अनुरक्ति के बचपन में ही संस्कार। यज्ञनिधि जी द्वारा नित्यहवन होने से उन्हें अग्निहोत्री भी कहा जाना। भक्ति का चस्का। १८ वर्ष की वय में सांख्य, न्याय, वैशेषिक, व्याकरण, शास्त्रों एवं चारों वेदों का सम्यक् ज्ञान। भगवान् श्री रामानन्दाचार्यजी से ही श्रीमठ में दीक्षान्त—भाषणश्रवण। श्रीसम्प्रदाय के प्रति प्रेम और धर्म रक्षाकी भावना जाग्रत होना। काशी में भागीरथी में कूद कर जान दे देने वाले युवक को देखकर विरक्त। घर पर ही असंग जीवन। माता पिता द्वारा प्रव्रज्या के लिये आज्ञा। काशी से गढ़मुक्तेश्वर। गुरुजी द्वारा गृहस्थ धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित कर उसी जीवन को ओर संकेत। श्रीअनूपनिधि द्वाविरक्ति में दृढ़निष्ठा। वसन्त पञ्चमी सं० १५२८ को श्रीसम्प्रदाय के २३ वें आचार्य ज. गु. श्री भावानन्दाचार्य जी द्वारा दीक्षित। ज. गु. श्रीभावानन्दार्य जी के साकेत गमन के पश्चात् गढ़मुक्तेश्वर से तीर्थयात्रा श्रीहनुमदाचार्यजी (छोटे गुरुभाई) कोगढ़मुक्तेश्वर रखकर हरिद्वार को। कनखलमें ज. गु. श्री भावानन्द्राचार्य स्थापित श्रीहनुमान् मन्दिर में। समस्त भारत की तीर्थ यात्रा। विद्वानों पर विद्वत्ता से, साधुता से तान्त्रिकों पर तन्त्र—मन्त्र विद्या से विजय। भालप्रदेश प्रवेश (वर्तमान) में श्रीवैष्णव विचारधारा एवं रामभक्ति का प्रचार। गिरिनगर में सामूहिक शास्त्रार्थ में विजय। वीरमगाम में तान्त्रिक शक्ति का परिचय। सिद्धपुर में ज. गु. श्रीरामानन्दाचार्य के भाषण स्थल पर वेदान्तस्तम्भ बनाने का संकल्प। पुस्कर एवं आबू के वाममार्गी गढ़ध्वस्त (वर्तमान जयपुर) में श्रीराममन्दिर का निर्माण। शिष्य द्वारा चणरपादुका प्रात करके वहीं रहना। कालान्तर में द्वारपीठ। मीरिण में साकेत वास।

प्रबन्धः—(१) गीतार्थसुधा (२) श्रौतार्थसंग्रह (३) रामचन्द्रविंशति आदि।

मुच्यते स्मरणाद् यस्य सद्यो भवभिया नरः।
ब्रह्मेशाद्यमरैर्वन्द्यं रामचन्द्रं नमामि तम॥

श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के ३९ वें आचार्य

महामहोपाध्याय जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्य जी "वेदान्तकेसरी"
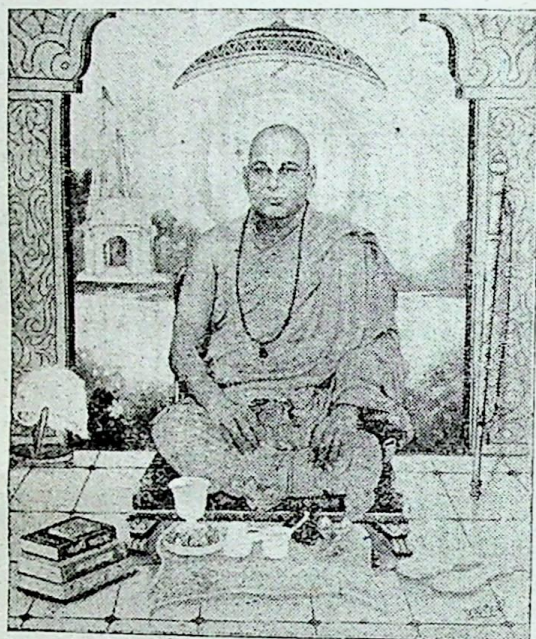
आविर्भाव-विजयादशमी आश्विनशुक्ल १०, वि. सं. १९४३ **तिरोभाव** वसन्तपञ्चमी वि. स. २००७ **जन्मस्थल**-मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश)

ईसु की उन्नीसवीं सदी का प्रारम्भ भारतीय इतिहास के अनुसन्धान के साथ हुआ। इस समय भारतीय संस्कृति से आकृष्ट अंग्रेजी जाति ने अपने प्रकार से ऐतिहासिक अनुसन्धान करने का प्रयत्न किया। भारतीय विद्वानों में भी उनकी इस भावना का प्रभाव हुआ और सभी

भारतीय मानो स्वसंस्कृति के संरक्षण के लिए जागृत हो उठे हों ऐसा प्रतीत होने लगा। इस शताब्दी के तीसरे उत्तरार्द्ध में उत्तर भारत के श्रीसम्प्रदायानुयायिओं में भी अपनी गत परम्पराओं को खोजने का प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। भगवान् श्रीराम से मंत्र–वैभिन्य, इष्ट वैभिन्य एवं आचरण की परम्परागत भिन्नता ने उत्तरी भारत के श्रीसम्प्रदाया-नुयायिओं को अपनी परम्पराओं की शोध के लिये आवाहन किया धीरे धीरे परम्पराओं की शोध की इस प्रवृत्ति ने श्रीसम्प्रदायरक्षान्दोलन का स्वरूप ले लिया। श्रीरामानन्द सम्प्रादाय को पुनः सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होने का अवसर मिला। यह परम्परा परित्राण का आन्दोलन युद्ध के जैसा चला और श्रीरामानन्द सम्प्रदाय पुनः अपने अतीत गौरव के लिए जाज्वल्यमान नक्षत्र सा उद्दीपित हो उठा।

इस परम्परा परित्राणान्दोलन के कर्णधारों में प्रधान थे महा-महोपाध्याय जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी महाराज श्री रामानन्दपीठाधीश 'वेदान्त केशरी'। उनके खोजपूर्णलेखों उद्बोधक–उत्ते-जक वक्तव्यो तथा सचोट शास्त्रार्थपटुता ने जहाँ एक ओर सहयोगी अनुयायिओं को प्रेरक बल दिया उनका हौसला बढ़ाया–उन्हे कुछकर गुजरने के लिए साहस प्रदान किया वहीं नवजागृत सम्प्रदाय के इति-हास पर अपनी अमिट छाप छोड दी। इस परित्राण आन्दोलन में जिन विशिष्ट विभूतियों ने किसी भी तरह योगदान किया वे भले ही समय के प्रभाव में विस्तृत कर दी गई हों–हों गई हों परन्तु उनका कृतित्व तो सदैव काल की विस्मरणशीलता को अँगूठा दिखाता सा सम्-प्रदायाकाश में नक्षत्रवत् उद्भासित रहेगा ही।

'दर्शन-निधि' ज. गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी की अवि-श्रान्त अनवरतन की गई सेवाओं का आदर श्रीरामानन्द सम्प्रदाय ने उन्हें अपना सम्प्रदायाचार्य घोषित करके किया। कुम्भ गाइड हरिद्वार

पश्चात् से उनका जीवन ही सम्प्रदाय का इतिहास बन गया और जब भी कोई इस सम्प्रदाय के विशिष्ट इतिहास को लिपिबद्ध करेगा एकमेव यही व्यक्तित्व इस समय का प्रकाशस्तम्भ रहेगा।

श्री वेदान्त केशरीजी आचार्य श्री हनुमदाचार्यजी के चरणाश्रित होकर श्री अवध में बड़ास्थानाधिपति श्रीसाकेतवासी श्री महान्त राम-मनोहरप्रसादाचार्य जी के सान्निध्य में रह कर अध्ययन अध्यापन करने लगे। उच्चकोटि के विद्वान् हो जाने पर भी उनका अध्ययन निरंतर जारी रहा। उस समय पर मिथिला प्रान्तमें जाकर उन्होंने वहाँ के उच्च कोटि के दार्शनिक महामहीम श्रीबालकृष्णमिश्र आदि विद्वानों से न्याय-वेदान्तमीमांसा आदि दर्शनों का सम्यक् अध्ययन किया और उनकी कुशाग्र बुद्धि ने उनका पूर्ण ग्रहण किया वेदान्ती जी जब अवध में ही थे तभी वेदान्त विद्यालय के आचार्य पदपर एक दाक्षिणात्य श्रीरामा-नुजीय पण्डित नियुक्त हुए थे। उन्होने कण्ठीधारण करने वाले श्रीरामा-नन्दीय छात्रो को वेदान्त पढ़ाने में संकोच दिखलाया। इसी पर विवाद प्रारंभ हुआ जिसने कालान्सर में परम्परा रक्षा का रूप ले लिया। परम्परा रक्षा का स्वतः एक लम्बा इतिहास है इस क्रान्ति के प्रथम अग्रगामी श्री वेदान्तकेशरीजी ही बने। आनन्दभाष्कार ज. गु. श्री रामानन्दाचायजी आचार्यसार्वभौम कृत प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यो को प्राप्तकरने में आपने अथक् प्रयत्न किया और अन्ततो गत्वा आपके तत्वावधान मेंब्रह्मसूत्रादि के आनन्दभाष्यों का प्रकाशन हुआ। ब्रह्मचारी श्रीवासुदेवा चार्यजी ने "प्रकाशन का गुरुतरभार महर्षि कल्प पं० श्रीरामवल्लभा शरणजी महाराजने वेदान्तकेशरी स्वामी श्रीरघुवराचार्यजी को सौंप दिया यह कार्य उस समय श्रीवेदा-न्तकेसरीजी महाराज के मान का ही समझा गया अन्य के मानका नहीं," इन शब्दों में इस घटना का स्मरण किया हैं [विरक्त दिनांक ३०–८–१९७३ ई. पृष्ठ ५]

(द्वितीय संकरण) [यह कुंभगाइड सन् १९३८ में हरिद्वार कुम्भ के अवसर पर सेंट्रल पब्लिसिटी एण्ड मार्केटिङ्ग कम्पनी. न. ३ नया बजार देहली द्वारा प्रकाशित किया गया था] में प्रकाशित, उनका एक चित्र जिसके नीचे जगद्गुरु श्रीरामानन्द–सम्प्रदायाचार्य 'दर्शन निधि' स्वामी श्रीरघुवराचार्यजी (शींगड़ा मठ)लिखा हैं इस घटनाका साक्षी भरता सा लगता है ।

गाइड में प्रकाशित चित्र के नीचे का उक्त पंक्तियाँ क्या ऐसा नहीं कहतीं कि श्रीशेष (शींगड़ा) मठाधीश स्वामी श्री रघुवराचार्य जी को नवजागृत श्री रामानन्द सम्प्रदाय का प्रथम श्रीरामानन्द सम्प्रदाया-चार्य बनने का महनीय गौरव प्राप्त हुआ ?

जीवन—परिचय

श्रीसम्प्रदाय के अद्वितीय विद्वान् शतावधानी महामहोपाध्यायजी के पूर्व जीवन (गृहस्थाश्रम) का ज्ञान किसी को भी विशेष नहीं है। सन्त तो 'हरि जानत सब विनहि जनाये, कहहुं कवन सिद्धि लोक रिझाये" के मानने वाले होते हैं । बडे प्रयत्न से वर्तमान पीठाधिपति ज. गु. श्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्य जी योगीन्द्र द्वारा जो उनके प्रिय कृपापात्र तथा उत्तराधिकारी आचार्य है-केवल इतना ही ज्ञात किया जा सका कि उनका जन्म त्रिप्रवरान्वित वशिष्ठगोत्रीय शुक्लयजुर्वेदीय वाजसनेय शाखाध्यायी समृद्ध कान्यकुब्ज ब्राह्मण उपाध्याय परिवार में विक्रम संवत् १९४३ आश्विन शुक्ल विजयादशमी को हुआ था । वस्तुतः इस कर्मठ महापुरुष ने विजय को ही जीवन भर वरण किया । आप के पिता श्री का नाम श्रीरामनिवास उपाध्याय माता जी का श्रीजानकीदेवी तथा गृहस्थाश्रमका नाम श्रीनिवास उपाध्याय था । विरक्त आश्रम में प्रविष्ट होने के पश्चात्–श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के ३८ वें आचार्य जगद्गुरु श्रीहनुमदाचार्यजी से वि. सं. १९६१ विजयादशमी को शिष्यत्व प्राप्त करने के

पश्चात् से उनका जीवन ही सम्प्रदाय का इतिहास बन गया और जब भी कोई इस सम्प्रदाय के विशिष्ट इतिहास को लिपिबद्ध करेगा एकमेव यही व्यक्तित्व इस समय का प्रकाशस्तम्भ रहेगा।

श्री वेदान्त केशरीजी आचार्य श्री हनुमदाचार्यजी के चरणाश्रित होकर श्री अवध में बड़ास्थानाधिपति श्रीसाकेतवासी श्री महान्त राम-मनोहरप्रसादाचार्य जी के सान्निध्य में रह कर अध्ययन अध्यापन करने लगे। उच्चकोटि के विद्वान् हो जाने पर भी उनका अध्ययन निरंतर जारी रहा। उस समय पर मिथिला प्रान्तमें जाकर उन्होंने वहाँ के उच्च कोटि के दार्शनिक महामहीम श्रीबालकृष्णमिश्र आदि विद्वानों से न्याय-वेदान्तमीमांसा आदि दर्शनों का सम्यक् अध्ययन किया और उनकी कुशाग्र बुद्धि ने उनका पूर्ण ग्रहण किया वेदान्ती जी जब अवध में ही थे तभी वेदान्त विद्यालय के आचार्य पदपर एक दाक्षिणात्य श्रीरामा-नुजीय पण्डित नियुक्त हुए थे। उन्होने कण्ठीधारण करने वाले श्रीरामा-नन्दीय छात्रो को वेदान्त पढ़ाने में संकोच दिखलाया। इसी पर विवाद प्रारंभ हुआ जिसने कालान्तर में परम्परा रक्षा का रूप ले लिया। परम्परा रक्षा का स्वतः एक लम्बा इतिहास है इस क्रान्ति के प्रथम अग्रगामी श्री वेदान्तकेशरीजी ही बने। आनन्दभाष्कार ज. गु. श्री रामानन्दाचायजी आचार्यसार्वभौम कृत प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यो को प्राप्तकरने में आपने अथक् प्रयत्न किया और अन्ततो गत्वा आपके तत्वावधान मेंब्रह्मसूत्रादि के आनन्दभाष्यों का प्रकाशन हुआ। ब्रह्मचारी श्रीवासुदेवा चार्यजी ने "प्रकाशन का गुरुतरभार महर्षि कल्प पं० श्रीरामवल्लभा शरणजी महाराजने वेदान्तकेशरी स्वामी श्रीरघुवराचार्यजी को सौंप दिया यह कार्य उस समय श्रीवेदा-न्तकेसरीजी महाराज के मान का ही समझा गया अन्य के मानका नहीं," इन शब्दों में इस घटना का स्मरण किया हैं [विरक्त दिनांक ३०–८–१९७३ ई. पृष्ठ ५]

महामहोपाध्याय जी को इस विश्रामद्वारकास्थ श्रीरामानन्दपीठ श्री शेषमठ (शींगड़ा) का सच्चा उत्तराधिकारी मानाजाकर जब इस पीठ का आचार्य बना दिया गया तो उन्होंने संम्प्रदाय संरक्षा के लिए विद्वान निर्माण करने के लक्ष्य से एक श्रीरघुवर संस्कृत महाविद्यालय का (२६।४-३१) में निर्माण किया जहाँ से पण्डितसम्राट् स्वमी श्री वैष्णवाचार्य जी वेदान्तपीठाधीश, जगदुद्धारक श्रीरामपदार्थदास जी श्रीरामवल्लभाकुञ्ज अयोध्या, जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र—आचार्यपीठ काशो ब्रह्मचारी श्रीवासुदेवाचार्यजी एवं ज. गु. श्रीजानकीदासजी जैसे अनेक विद्वान् उद्भूत हुये। इस महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त अनेक छात्र गुजरात एवं गुजरातेतर राज्यों के विद्यालयों के उच्चपदों तथा महाविद्यालयों कालेजों स्कूलों में अनेक मिलेंगे। आज भी यह विद्यालय उद्देश्यों की पूर्ति अजस्त्रगति से करता चला आ रहा है। इसमें उत्तर प्रदेश विहार उड़ीसा आसाम आदि प्रदेश एवं सुदूर नेपाल तक के छात्र विद्यार्जन के लिये आते हैं। अभी-अभी आपका संस्मरण करते संप्रदाय के दिग्गज पत्रकार ब्रह्मचारी श्रीवासुदेवाचार्य जी ने लिखा है

'वेदान्त केसरी जी में अपूर्व प्रतिभा थी। दर्शनीय मूर्ति थे और गम्भीरता के साक्षात् प्रतिमूर्ति जिसका होना एक विशिष्टतम विद्वान् में आवश्यक है, आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर अंग्रेजी सरकार ने आपको "महामहोपाध्याय" की सर्वोत्कृष्ट उपाधि प्रदान की। आप शतावधान थे। अनेकों द्वारा किये गये १०० प्रश्नों का उत्तर यथा क्रम से देने में सिद्ध हस्त थे। असाधारण शक्तिमान् पुरुष ही ऐसा करने में समर्थ हो सकते हैं। आपके दर्शन मात्र से राजे महाराजे प्रभावित हो उठते थे। कितने राजा रानियों ने आपसे दीक्षा ली। सौराष्ट्रस्थित लींमड़ी तथा पोरबन्दर के राणा के परिवारवालों ने आपका शिष्यत्व प्राप्त किया। परिणामस्वरूप अत्यन्त समृद्धिशाली श्रीशेषमठ (शींगड़ामठ) आपके अधिकार में आया। सिद्धपुर में वेदान्त प्रचारके

लिए आपने वेदान्ताश्रम का निर्माण तथा वेदान्तस्तम्भ बनाने का संकल्प किया। विद्यालयों द्वारा आपके शरीर से प्रचार सुन्दर हुआ। आपकी ख्याति खूब बढी। आप सच्चे आस्तिक कट्टर श्रीरामनन्दीय श्रीवैष्णव थे शुद्ध सनातनधर्म के विरुद्ध कुछ भी विचार प्रकट करना आप महान् पाप समझते थे। लक्ष्मी आपके चरणों में लोटती थी। आपने श्रीरामानन्दसम्प्रदाय की सेवा किसी अन्य से कम नहीं की। आपने जो कुछ किया ठोस कार्य किया। आप विद्वानों का आदर करना जानते थे। योग्यायोग्य की पहिचान रखते थे। अहंकार आपका स्पर्श नहीं कर पाया था। मानव रूप में आप साक्षात् देवस्वरूप थे।

अन्य पण्डितों की तरह वेदान्त केशरी जी आत्म प्रशंसी नहीं थे। वे अपनी प्रशंसा जब किसी के मुख से सुनते थे तो संकोच का अनुभव करते थे। विद्वानों की विद्वत्ता का मूल्यांकन यथार्थ रूप में किया करते थे। एकवार सार्वभौम श्री वासुदेवचार्य जी की चर्चा चलने पर वेदान्त केशरी जी ने अहमदाबाद वाले पण्डितसम्राट् स्वावी श्रीवैष्णवाचार्य जी से कहा था। दार्शनिक सार्वभौम स्वामी श्रीवासुदेवाचार्य जी के समान विद्वान् श्रीरामानन्दसम्दाय में तो कोई है ही नहीं, अन्यत्र भी बहुत कम होंगे। सार्वभौम जी में अलौकिक विद्वत्ता है। उन्होंने अपने से अधिक विद्वान् स्वामी श्रीवासुदेवाचार्य जी को माना था। यह उनके द्वारा ज्ञानी के सम्यक् आदर का प्रतीक तथा उनकी नम्रता का मूर्ति मंतचित्र है। (विरक्त ३०-८ १९७३ ई. पृष्ट ५)

सम्प्रदाय का यह देवांश दिनांक ११-२ १९५१ ई. के दिन तिरोभाव को प्राप्त हुआ। तात्विक विद्वान् की दृष्टि से महामहोपाध्याय जी अद्वितीय थे। आपने अनेक प्रवन्ध लिगे हैं जो दर्शन भण्डार के अमूल्य-रत्न है।

श्रीआचार्यप्रवर से प्रसादित कतिपय निबन्ध

१–श्रीरामावतार २–भगवद् भक्त और भक्ति ३–श्रीवैष्णवाचार ४–शान्ती प्राप्त करने का उपाय ५–आचार (गुरु) सेवा ६–एक प्रश्न-७–प्रश्न ८– अन्तर्यामीस्वरूप ९–पञ्चसंस्कारों में मालाधारण १०–वैष्णव सम्प्रदायों से भारत का गौरव ११–गुरुशरणागति १२–बोधप्रद वाक्य १३–श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवों से निवेदन १४–भगवान् का तिलक १५–वैष्णव भास्कर के लिये प्रश्नावली,

१६– धर्म और धर्माभास १७–सनातन धर्म १८–भगवत्पूजन १९–ब्रह्मसूत्र २०–श्रीमद्भागवत में श्रीरामावतार २१– वासुदेव मन्त्र २२–अखाड़ों के लिए मेरा विचार २३– मौन २४–मन्त्रराजमीमांसा (पारिष्कारिक ग्रन्थ) २५–श्रीरघुवरीयवृत्तिः (ब्रह्मसूत्रीयवेदान्तवृत्तिः) २६-सेवासमीक्षा २७–विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तसार २८-विशिष्टाद्वैत शङ्का मीमांसा २९–साधुओं का कर्त्तव्य ३०– श्रीरघुवरीयगीतार्थचन्द्रिका (गीता विषयक अमूल्य वादग्रन्थः) ३१–धर्मसङ्ग्रह ३२–श्रीरामपद्धति अर्थचन्द्रिका ३३–श्रीसम्प्रदाय और अन्त्यजस्पर्श ३४– विशिष्टा द्वैत सिद्धान्त ३५–तत्व प्रकाशिका ३६–नीराजनस्तव ३७– श्रीसीतारामस्तव ३८–रम्यधर्मोपदेश ३९–संस्कृतिचक्र और तत्परिहारोपाय ४०–श्रीरामानन्दसम्प्रदाय और वर्ण व्यवस्था ४१– श्रीसम्प्रदायनिष्ठा ४२– मंगल भवन अमंगलहारी ४३– अखाड़ों के प्रति ४४– मठमन्दिर तीर्थों का रक्षण ४५– साधुपुरुषों के लक्षण ४६– सम्प्रदायाचार ४७– ज. गु. श्रीरामानन्दचार्य जी ४८–साकारोपासना ४९– श्रीरामनवमी ५०–श्रीरामानन्दसम्प्रदाय का वैभव ५१– दास और आचार्य ५२– धर्म का रक्षण कीजिए ५३– श्रीरामरक्षास्तोत्रमहात्म्य ५४– सनातन धर्म पर आपत्ति ५५– प्रत्युत्तर ५६– विजयोत्सव ५७– धर्म मार्ग ५८–महाविद्यालय की आवश्यकता ५९– तत्वविचार, ६०– जगद्गुरु का

जन्मोत्सव ६१- जगद्गुरु का प्रादुर्भाव ६२- श्रीरामानन्द सम्प्रदाय को किस की आवश्यकता है ६३-वेदान्तविद्या ६४- सौराष्ट्र में वैष्णवसभा ६५-नित्यविभूति और लीलाविभूति ६६- समाज और सम्प्रदाय ६७- उत्तर काण्ड विवेक ६८- वेदार्थ रक्षा ६९- श्री वै. म. भाष्कार भाष्य ७०- परमगतिमीमासा टीका ७१--भाष्य पदानुन- आनन्दभाष्य की टीका ७२-विद्या ७३-- भगवद्भक्ति ७४- निःश्रेयसमार्ग ७५-आचार्योपसत्ति ७६- उन्नतिउन्याय श्रीवैष्णवधर्म ७७-सत्संग ७८--गुरु पूर्णिमा ७९-. प्रेमभाव ।
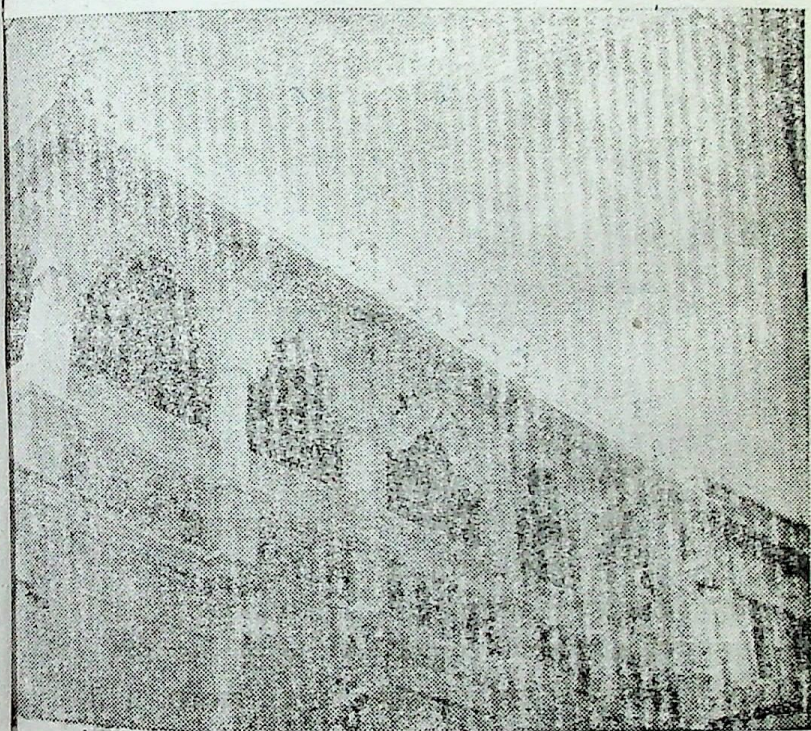
श्री विश्रामद्वारकाधीशजीका नव परिस्कृत ऊपर मञ्जिल
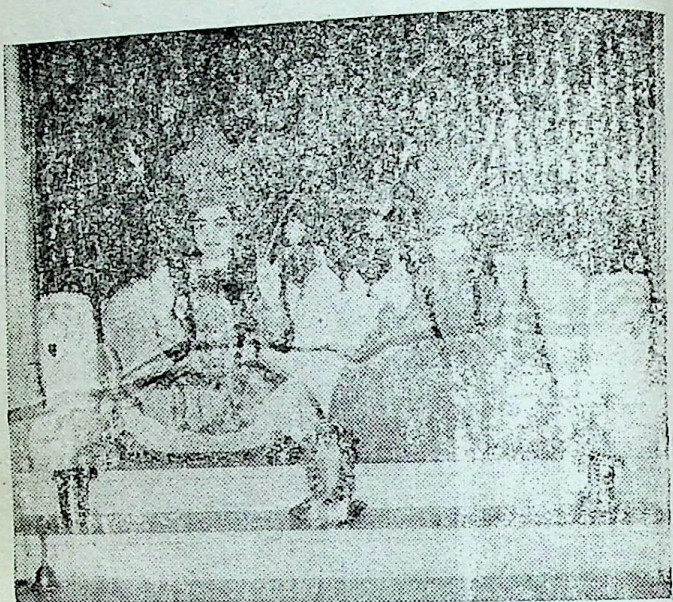
आचार्यपीठ के आराध्य सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी

जायामा मैथिलीतः स्मितशुचिवदनो हासभासाभिरामः
श्यामः सीतासखीनां हृदिरतिसुकरः कासते यश्वकामः ।
वामः श्रीतारि शिष्टौ दशमुखवदनोद्दामशोभाविरामः
श्रीरामः शंतनोतु श्रुतिरतिमुनिभिर्मन्यते मानकामः ॥१॥
औद्धत्याधूतधर्मश्रुतिरतिरहित क्रूरकर्म प्रहारी
हारी कामारिवेधो मुनिजन मनसां जानकी हृद्विहारी ।
वारि क्लेशाग्निकाण्डे रघुकुलतिलकः कीर्त्यतेयोऽसुरारी
धारी मुक्तिप्रसादं शुभमिहतनुतां मारुतीशः खरारिः ॥२॥
(जगद्गुरुश्रीरामानन्दार्यरघुवराचार्याः)

रुद्र उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नित्यां शुद्धां सनातनीम् ।१९।
महोपनिषदं वेदविश्रुतां वेदरूपिणीम् ।

अथ श्री मैथिलीमहोपनिषद्

नित्यां निरञ्जनां शुद्धां रामाऽभिन्नां महेश्वरीम् ।
मातरं मैथिलीं वन्दे गुणग्रामां रमारमाम् ॥१॥

ॐ तत्सत् । रामरूपिणे परब्रह्मणे नमः । अथ हवै-कदा रत्नसिंहासने समारूढां भगवतीं मैथिलीं लाटयायनः कौञ्जायनः खाडायनो भलन्दनो विल्व ऐलाक्यस्तालुक्य

अथ मैथिली महोपनिषत्–

नित्य निरञ्जन यानि आवरणरहित श्रीरामचन्द्रजीसे अभिन्न यानि श्रीरामस्वरूपा महेश्वरी गुणसमूह युक्त लक्ष्मी की भी लक्ष्मी जगत् की माता श्री मैथिली को मैं वन्दन करता हूं । १॥

ॐ तत्सत् 'ॐ तत् सद् इति निर्देशो ब्रह्मण स्त्रिविधः स्मृतः इस भगवद्गीता वचन से ॐ से तत् से और तत् से ब्रह्म का निर्देश कहा गया है वह तीन प्रकार का निर्देश मैथिली महोप-निषत् के आदिमें जानना चाहिये । श्रीरामरूप वाले परब्रह्म को नमस्कार हो । एक समय में लाटचायन १ कौञ्जायन २ खाडायन ३ भलन्दन ४ विल्व ५ ऐलाक्य ६ तालुक्य ७ ए

६

एते सप्त ऋषयः प्रेत्यतामूचुः । भूर्भुवः स्वः । सप्तद्वीपा वसुमती । त्रयो लोकाः । अन्तरिक्षम् । सर्वे त्वयि निवसन्ति । आमोदः । प्रमोदः । विमोदः । सम्मोदः । सर्वांस्त्वं सन्धत्से । आञ्जनेयाय ब्रह्मविद्या प्रदात्रि धात्रित्वा सर्वे वयं प्रणमामहे ॥

अथ हैनान् मैथिल्युवाच—वत्साः कुशलिनोऽदब्धासोऽरेपसः किं कामा यूयं प्रत्यपद्यध्वम् । ते होचु र्मातर्मोक्षकामैः किं जाप्यं किं ध्येयं किं विज्ञेयमित्येतत् सर्वं नो ब्रूहि ।

सात ७ ऋषियों ने रत्नसिंहासन पर बैठी हुई भगवती मैथिली के पास जाकर आदर पूर्वक उनको पूछा । भूलोक अन्तरिक्ष लोक स्वर्गलोग । सात द्वीपवाली पृथिवी । तीन स्वर्ग मर्त्य पाताल ये लोक हैं । अन्तरिक्ष-आकाश ये सब आप में रहते हैं । आमोद प्रमोद संमोद विमोद इन सबों को आप अच्छी प्रकार धारण करती हैं । श्रीहनुमान्‌जी को ब्रह्म विद्या देने वाली ! हे धात्रि ! सर्व लोकाधारिणि श्रीसीते आपको हम सब बार बार प्रणाम करते हैं । उक्त प्रकार से नमस्कार करने के बाद इन सात ऋषियों को मैथिली नें कहा कि—हे वत्स तुम एवं कुशल हो कपट रहित सब को मित्र करने वाले किस कामना से आये है ? ऋषियों ने कहा कि—हे मातः मोक्षकामना वाले को क्या अपना चाहिये ? क्या विज्ञातव्य है ? यह सब हमें कहिये ।

श्रीमैथिली ने कहा कि—"राम" यह दो अक्षर जपने योग्य

सोवाच–राम इत्यक्षर द्वयं जाप्यम् । रिं राम इत्यक्षर त्रयं जाप्यम् । रुं राम इत्यक्षर त्रयं जाप्यम् । रें राम इत्यक्षरत्रयं जाप्यम् । रैं राम इत्यक्षरत्रयं जाप्यम् । रों राम इत्यक्षरत्रयं जाप्यम् । एतदेव हि तारकम् । एतदेव हि बन्धनबन्धनम् । सार्धतिस्त्रो मात्रा ओमित्यत्र । इमानि त्र्यक्षराणि जपंस्तज्जपति त्रीणि वै दुःखानि । आध्यात्मिकमाधिदैविकमाधिभौतिकम् । इमानि त्र्यक्षराणि जपंस्तानि प्रणाशयति । विष्णुलोकात् परे लोके साकेते शुभशंसिनो । राजन्त रामचन्द्रेति जपन् बन्धाद् विमुच्यते जपन् बन्धाद् विमुच्यते । इति प्रथमोपनिषत् ॥१॥

है। 'रिं राम' अक्षरत्रय जपने योग्य है। 'रु राम' यह अक्षरत्रय जपनीय है। रें राम' यह अक्षरत्रय जाप्य है। और 'रै राम' यह अक्षरत्रय जाप्य है। और 'रो राम' यह अक्षरत्रय जाप्य है। यही तारक है। यही बन्धनों का बन्धन है। ओम् इसमें साढे तीन मात्राएं हैं। इन साढे तीन अक्षरों की जपने वाला उसे जपता है। तीन दुःख है। आध्यात्मिक यानि शारीरिक। आधिदैविक–यक्ष राक्षसादि देवयोनिके प्रकोप से उत्पन्न। आधिभौतिक यानि वृश्चिक सिंह व्याघ्र आदि सर्व प्राणियों से आया हुआ। इन साढे तीन अक्षरों के जप करने वाला मानव उन तीनों दुःखों को नष्ट करता है। विष्णु लोक से भी परलोक शुभ सूचक

परात्परतरो निखिलहेयप्रत्यनीकगुणाकरो जगदादिकारणममिततेजोराशिर्ब्रह्मादिदेवैरप्युपास्यः स श्री भगवान् दाशरथिरेव प्राप्यो दाशरथिरेव प्राप्यः ।

इति द्वितीयोपनिषत् ॥२॥

सकलजगत्कारणबीजं भक्तवत्सलः स एव भगवाञ्ज्ञेयः स एव भगवाञ्ज्ञेयः । इति तृतीयोपनिषत् ॥३॥

ते ह पुनरेनामूचुः—षट्स्वपि मन्त्रेषु कतमो गरीयान्? कर्ममभिन्त्र्य स्वकं कल्याणमभिपश्यामः ? । तन्नो ब्रूहि महे-

साकेत लोक है उसमें विराजमान श्रीरामचन्द्रजी को जपनेवाला संसार बन्धन से निश्चय ही विमुक्त होता है ॥

यह प्रथम उपनिषत् है ॥१॥

पर से अतिशय पर सब ग्राह्य गुणो के आकर जगत् के आदि कारण अतुलित तेजों के समूह ब्रह्मा आदि देवों से सभी सर्वदा उपासनीय भगवान् श्रीदाशरथि प्राप्य हैं समस्त जीवात्मा मात्र से प्राप्य वे ही सर्वेश्वर श्रीदाशरथि ही प्राप्य हैं ।

यह दुसरा उपनिषत् है ॥२॥

सब जगत् के कारणों के कारण भक्तवत्सल वे ही सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी जानने के योग्य हैं वे ही भगवान् श्रीरामचन्द्र ज्ञेय हैं । यह तीसरा उपनिषत् है ॥३॥

उन ऋषियों ने फिर मैथिलीजीसे प्रार्थना की छ मन्त्रों

श्वरि ! सोवाचैनान्—सर्व एव मन्त्राः सुखप्रदाः शुभप्रदाः। एकमक्षरमुच्चारितं सदाजन्मभिरर्जितानि महापातकान्यपि विनाशयति। तत्रापि षडक्षरो मन्त्रः सर्वोत्कृष्टः। आशुफलप्रदः। सर्वमेववाञ्छितमभिपूरयति। मोक्षार्थी मोक्षं लभते। स्वर्गार्थी च स्वर्गम्। पुत्रार्थी पुत्रम्। धनार्थी धनम्। विद्यार्थी विद्याम्। यद्यत्कामयते सर्वमग्रतः स्थितमिवाभिपश्यन्ति। ततः स एव सर्वोत्कृष्टः स एव शिवकारणम्। स एव जाप्यः॥

इति चतुर्थ्युपनिषत् ॥४॥

इममेव मनुं पूर्वं साकेतपतिर्मामिवोचत्। अहं हनुमते मम प्रियाय प्रियतराय। सर्वेदवेदिने

में भी कौन मन्त्र अतिशय श्रेष्ठ है ?। किस मन्त्र को अभिमन्त्रित का यानि जपकर हम अपना कल्याण प्राप्त कर सकेगें। हे महेश्वरी। उस मन्त्र को हमें कहिये॥

सर्वेश्वरी श्रीमैथिलीजी ने उन ऋषियों को कहा कि—पहले कहे हुए राम आदि छ मन्त्र सभी कल्याण दायक हैं। शुभदायक क्षेमप्रद और धनप्रद हैं। एक भी अक्षर उच्चारित होने पर सौ जन्मों से किये हुए पातक भी नष्ट करता है। श्रीरामचन्द्रजी के उन मन्त्रों के मध्यम में षडक्षर (रां रामाय नमः) मन्त्र सबसे श्रेष्ठ है। शीघ्र फलदायक है। सभी अभिलषित

ब्रह्मणे स वशिष्ठाय । स व्यासाय । स शुकाय ॥
इत्येषोपनिषत् । इत्येषा ब्रह्मविद्या ॥
ते प्रणम्योचुः-कृतकृत्या वयम् । विदितवेदितव्याः । पूर्णकामाः । संशयाद्विमुक्ताः । त्वं हि मातर्नूनमस्माकं गुरुरस्माकं गुरुः । इति पञ्चम्युपनिषत् ॥ समाप्तोपनिषत् ॥

इमामेवोपनिषदं पठित्वा श्रद्धयाऽन्वितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तश्चाचार्यस्तवनं पठेत् ॥२०॥

पदार्थों को परिपूर्ण करता है । इस षडक्षर जप से मोक्षाभिलाषी मोक्ष प्राप्त करता है । स्वर्गाभिलाषी स्वर्ग प्राप्त करता है । पुत्रेच्छु पुत्र प्राप्त करता है, धनकामी धन प्राप्त करता है । विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है । जो जो चाहता है सो सब सामने उपस्थित देखता है । अतः वही रामषडक्षर मन्त्र राज सब मन्त्रों श्रेष्ठ है । वही कल्याणों कारण है । वही जपने का योग्य है ।

यह चौथा उपनिषद है ॥४॥

यही षडक्षर राममन्त्र साकेत के स्वामी सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ने मुझे कहा । अर्थात् सविधि उपदेश दिया । मैंने मेरे प्रियातिप्रिय सेवक श्रीहनुमानजी को कहा उपदेश दिया । श्रीहनुमानजी ने वेदके ज्ञाता श्रीब्रह्माजी को कहा उपदेश दिया । ब्रह्माजी ने वशिष्ठजो को कहा उपदेश दिया । वशिष्ठजी ने व्यासजी को कहा उपदेश दिया । व्यासजीने शुकदेवजी कहा उपदेश दिया । यही उपनिषत् है, यही ब्रह्मविद्या है । नियमपूर्वक गुरुजी से

गिरिजोवाच-

आचार्यः क एवासौ स्तोतव्यो योऽत्र कथ्यते ? ॥

रुद्र उवाच-

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि तत्त्वमत्र सुखावहम् ॥२१॥
सर्वेषामेव मन्त्राणां राममन्त्रः परः स्मृतः ।
तस्यैव चोपदेष्टारो मुख्याचार्या बुधैः स्मृता ॥२२॥

शिक्षा लेनेपर जीवोंकी मुक्ति होती है । ऋषियोंने मैथिलीजी को प्रणामकर कहा कि-हम कृतकर्तव्य और ज्ञातज्ञातव्य पूर्णकाम और संदेह से रहित हुए । हे जगन्मातः आप हमारे अवश्य संदेह दूर करनेवाली आप ही हमारे गुरु हैं । यह पाँचवा उपनिषत् है ।

मैथिली महोपनिषत् सम्पूर्ण हुआ ॥

श्रद्धा से युक्त इसी मैथिली महोपनिषत का पाठकर सब पापों से रहित हो आचार्यस्तोत्र पढे ॥२०॥

श्रीपार्वतीजी ने पूछा कि--

हे नाथ ! जो यहाँ आचार्य स्तुत्य कहा जाता है; वह कौन है ?

श्रीशिवजी ने कहा कि--

हे पार्वती देवि ! यहाँ मैं सुखप्रद तत्त्व कहूँगा उसे सुनो । ॥२१॥

आचार्या बहवोऽभूवन् राममन्त्र प्रवर्तकाः ।
किन्तु देवि कलेशादौ पाखण्ड प्रचुरे जने ॥२३॥
रामानन्देति भविता विष्णुधर्म प्रवर्तकः ।
यदा यदा हि धर्मोऽयं विष्णोः साकेतवासिनः ॥२४॥
कृशतामेति भो देवि तदा सः भगवान् हरिः ।
रामानन्द-यतिर्भूत्वा तीर्थराजे च पावने ॥२५॥
अवतीर्य जगन्नाथो धर्मं स्थापयते पुनः ।
देशकालानवच्छिन्नो विष्णोर्धर्मः सुखप्रदः ॥२६॥

सब मन्त्रो के मध्यमें श्रीराममन्त्र श्रेष्ठ कहा गया है, उसी के उपदेशक प्रधान आचार्य पण्डितो से कहे गये हैं ॥२२॥

श्रीराममन्त्र के प्रवर्तक आचार्य बहुत हुए । किन्तु हे देवि! कलियुग के आदि में बहुत पाखण्डवाले जन होने पर विष्णुधर्म के प्रवर्तक श्रीरामानन्द इस नाम से प्रख्यात आचार्य होगे ॥२३॥

साकेतवासी विष्णु का यह धर्म जब जब ह्रास प्राप्त कर जाता है, तब तब हे देवि ! वे भगवान् हरि ॥२४॥

श्रीरामानन्द नामक यति होकर पवित्र तीर्थराजमें अवतार लेकर वे जगत्स्वामी फिर धर्मकी स्थापना किया करते हैं ॥२५॥

देश और काल से अवछिन्न अर्थात् अवशिष्ट विष्णु का धर्म सुखदायक है वह काल से अनाच्छादित—अनावृत हमेशा प्रवृत्त होता रहता है ॥२६॥

कालानाच्छादितो ह्येवं सततं सम्प्रवर्तते ।
सूर्यप्रभो महाकायो विशालाक्षो महामतिः ॥२७॥
महावीर्यो महासत्त्वो महातेजा जितेन्द्रियः ।
चतुर्णामपि वेदानां वक्ता विद्वाच्छ्रुतिश्रुतः ॥२८॥
सर्वेषामेव शास्त्राणां यथातथ्येन तत्त्ववित् ।
अन्तर्यामी महायोगी यति राजो यतीश्वरः ॥२९॥
धर्मात्मा धर्ममूर्तिश्च धर्मरक्षा परायणः ।
ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी ब्रह्मतत्त्वविशारदः ॥३०॥
ब्रह्मवेत्ता तपोराशिर्यतीन्द्रो यतिनां पतिः ।
सत्यवक्ता सत्यकर्ता सत्यसन्धो दृढव्रतः ॥३१॥

वे श्रीरामानन्दयति–सूर्यसदृश विशाल शरीरवाला विशाल (दीर्घ) नेत्रवाला बड़ेवीर्यवाला महासत्त्व–महाबल वडा तेजस्वी जितेन्द्रिय–वशीकृतेंद्रिय, ऋग्यजुः सामाथर्व चार वेदो का वक्ता विद्वान् प्रख्यात सब शास्त्रोका यथार्थ रूपसे तत्त्ववेत्ता ॥१८॥

अन्तर्यामी महायोगी यतियो में श्रेष्ठ धर्मात्मा धर्ममूर्ति धर्म की रक्षा में तत्पर ॥१९॥

ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी–ब्रह्मतेजस्वी ब्रह्मतत्त्वज्ञान में निपुण ब्रह्मवेत्ता तप का समूह यतिराज यतियोंका स्वामी ॥३०।

सत्यवादी सत्यकर्मवाला सत्यप्रतिज्ञावाला दृढव्रतवाला शान्त दान्त क्षमा से युक्त विजय करनेवाला दिशाओं में प्रख्यात होंगे ॥३१॥

शान्तो दान्तः क्षमा युक्तो विजयीदिक्षु विश्रुतः ।
नाभूद ब्राह्मणः कश्चिद्राममन्त्र प्रवर्तकः ॥३२॥
तस्माद् ब्रह्मकुले जन्म गृहीत्वा भगवान् स्वयम् ।
यत्र स्नात्वा महापापी चापि याति परां गतिम् ॥३३॥
तस्मिन्नेव महापुण्ये तीर्थराजे च पार्वति ! ।
सर्वशास्त्रार्थ सम्पन्न ब्रह्मचारी महाव्रती ॥३४॥

श्रीराममन्त्र का विशेष प्रवर्तक कोई ब्राह्मण नहीं हुआ। इससे भगवान् स्वयं ब्राह्मण के कुल में जन्म लेकर इस महामन्त्र का प्रचार करेगे ॥३२॥

हे पार्वति ! श्रीराम जगदीश की अत्यन्त प्रिय अयोध्या नगरी है, उसे छोडकर तीर्थराज में या काशी में रहने की बुद्धि क्यों की ॥३७॥

पार्वतीने पूछा कि—

हे तत्वज्ञ निःसंशय मेरा संशय दूर कीजिये । जिस तीर्थराज में महापापी स्नानकर परमगति प्राप्त करता है उसी परमपवित्र उसी तीर्थराज में अवतीर्ण हो ॥३४॥

सर्वशास्त्रार्थों से सम्पन्न ब्रह्मचारी महाव्रती त्रिदण्डधारी देव श्रीरामानन्दजी काशी में निवास करेगा । उनका स्त्रोत्र महापातकोंका नाशक है ॥३४॥

त्रिदण्डं धारयन् देवः काश्यां वासं करिष्यति ।
तस्य संस्तवनं देवि महापातकनाशनम् ॥३५॥

गिरिजोवाच-

रामस्य जगदीशस्यायोध्या प्रियतरा मता ।
तां विहाय कथं नाथ तीर्थराजे मतिः कृता ॥३६॥
इति नः संशयं छिन्धि तत्त्वविच्छिन्नसंशय ।

रुद्र उवाच-

साधु पृष्टं त्वया देवि श्रुणु तत्त्वं वदामि ते ॥३७॥
एकदा तीर्थराजे हि निर्विण्णो दशवार्षिकः ।
ब्राह्मणो ब्रह्मतेजस्वी नाम्ना स तु मनःसुखः ॥३८॥
पितरं मातरं त्यक्त्वा रामभक्ति परायणः ।
अनन्यचेतसा तत्र रामचन्द्रं स्मरन् स्थितः ॥३९॥
प्रायशो भगवद् भक्ता बालरूपं प्रियं प्रभोः ।
ध्यायन्ति हृदये नित्यं सर्वलोकसुखप्रदम् ॥४०॥

शिवजी ने कहा हे पार्वती देवि ! आपने अच्छा पूछा मैं तत्त्व-यथार्थ कहता हूँ सुनिये । एक समयमें तीर्थराज में दश-वर्षका ब्रह्मतेजस्वी मनःसुख नाम का ब्राह्मण विरक्त हो ।।३८।।

माता और पिता को छोडकर श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिमें तत्पर तथा अनन्य चित्तसे श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करता था ।३९।।

प्रायः भगवान् के भक्तलोक प्रभु का सर्वजनसुखदायक

तदेव रूपं पध्यायंश्चिरकालं तपोऽतपत् ।
तस्य भक्तिं समालोक्य निर्व्याजामथ सात्त्विकीम् ॥४१॥

विह्वलो भगवांस्तत्र रममाणः स्वमायया ।
प्रादुर्बभूव तदा समुद्धर्तुं करुणालयः ॥४२॥

मनः सुखस्तु तं दृष्ट्वा बाल्यादाहूय सन्निधौ ।
कस्त्वं कस्मात् समायातः सर्वं ब्रूहि ममाग्रतः ॥४३॥
त्वदीयां सरलां वृत्तिं कान्तिं चाप्यद्भुतामिमाम् ।
वचनं मोहनं श्रुत्वा प्रीतिःकाऽप्यध्यजायत ॥४४॥

प्रिय बालरूप का ध्यान वह मन में हमेशा किया करते हैं ॥४०॥

उसी बालरुप का ध्यान वह मन:सुख बहुत काल तक करता हुआ तप करने लगा । उसकी निष्कपट सात्विक भक्ति देखकर ॥४१॥

भगवान् अपनी माया से क्रीडा करते हुए करुणालय भगवान् उस अपने सेवक मन:सुख का उद्धार करने के लिए वहां प्रकट हुए ॥४२॥

मन:सुख उन भगवान् को देखकर अपने समीपमे बुलाकर वालस्वभाव से कहने लगा कि—आप कौन है कहां से आए है यह सब मेरे समझमें कहिए ॥४३॥

आपकी सत्य वृति अद्भुत इस कान्ति को देखकर और मोहक वचन सुनकर विलक्षण प्रीति हो गयी ॥४४॥

भगवांस्तद्वचः श्रुत्वा किञ्चित्स्मरमुखोऽभवत् ।
पश्चाद्विमोहयामास तमन्यैर्वचनैः प्रिये ॥४५॥
प्रश्नं तं सोऽपि विस्मृत्य बालो बालस्वभावतः ।
हरिणा साकमत्यर्थं प्रारेभे तत्र खेलितुम् ॥४६॥
आप्रहरं समाक्रीडय वैकुण्ठाधिपतिंहरिः ।
गन्तुमाज्ञापयेत्येतद्वच तस्य पुरोऽब्रवीत् ॥४७॥
अतीवानुभवन् दुःखं विप्रस्त्वेवमुवाच तम् ।
तात केन प्रकारेण गन्तुं त्वां कथयाम्यहम् ॥४८॥
हृदये परमो ह्लादो जायते तव दर्शनात् ।
किन्तु तातः कथं त्वाऽहं निरोद्धुंशक्नुयामतः ॥४९॥

भगवान् मनःसुख का वचन सुनकर थोड़ा प्रसन्न मुखवाले हो गए । हे प्रिये ! फिर भी पिछे से दुसरे वचनों से उस मनःसुख को मोहित करने लगे । मनःसुख लडका भी उस प्रश्न को भूलकर लडके के स्वभाव से हरि के साथ खेलने का प्रारंभ कर दिया तथा खेल में मग्न हो गया वैकुण्ठ के स्वामी हरि मनः सुख के साथ एक प्रहर तक क्रीडा कर उसके समक्ष 'जानकी आज्ञा दो' यह वचन कहा ॥४७॥

यह सुनकर मनःसुख ब्राह्मण बहुत दुःख का अनुभव करता हुआ हरि के प्रति कहने लगा कि—हे तात ! मैं किस प्रकार से आपको जानने के लिये कहूं । आपके दर्शन से मेरे हृदय में

गच्छ तात ! सुखं तेऽस्तु ब्राह्मणो निर्धनस्त्वहम् ।
अरण्यौकाश्च किं तुभ्यं प्रयच्छाम्युपहारकम् ॥५०॥

इत्युक्त्वा स च धर्मात्मा कुट्यां गत्वा च विह्वलः ।
फलमेकं समादाय हस्ते तस्य समार्पयत् ॥ ५१ ॥

हरिर्हस्तं प्रसार्याथ गृहीत्वाऽपि च तत्फलम् ।
उवाच वचनं चेदमश्रुपूर्ण विलोचनः ॥ ॥ ५२ ॥

हे तात त्वन्मुखाम्भोजविलसच्छब्दरेणवः ।
सुखयन्ति मनोऽस्माकं तर्पयन्ति च चेतनाम् ॥ ५३ ॥

बहुत-आनन्द उत्पन्न हो रहा है। किन्तु हे तात मैं आपको कैसे रोक सकता हूं। इससे ॥४९॥

हे तात ! आप जाइये, आपको सुख हो। मैं दरिद्र ब्राह्मण वन में रहने वाला हूं, आपको क्या भेट दूं। ॥५०॥

यह कहकर विह्वल हो कर कुटीर में जाकर एक फल लेकर उनके हाथ में समर्पित कर दिया ॥५१॥

हरि हाथ पसार कर वह फल लेकर आँसू से भरे आँख वाला होकर यह वचन कहने लगे ॥५२॥

हे तात ! तेरे मुख रूप कमल से निकले शब्द रूपधूलियां हमारे हृदय को तृप्त कर रही हैं, और हमारी चेतना को भी तृप्त कर रही है ॥५२॥

आपकी प्रेरणा से प्राप्त अचानक सज्जन समागम सदा कल्याणके लिये होगा, हम यही चाहते हैं ॥५४॥

भगवत्प्रेरणा प्राप्ताऽऽकस्मिकः सत्समागमः ।
शुभाय सर्वदा भूयादित्येवाशास्महे वयम् ॥ ५४ ॥

त्वदीयां मधुरां वाचमाचम्यैव मनःसुख ।
अनुभावि सुखं यत्तत् स्थायितामेतु सततम् ॥ ५५ ॥

कौतस्कुतस्तु संजातो नदी नौका समागमः ।
आगमाय भवेत्तात सुखशान्त्योः सदाऽऽवयोः ॥ ५६ ॥

हारिणा ते स्वभावेन मनःसुख हृता वयम् ।
परवन्तः प्रयामोऽतः किं कुर्याम विधेः पुरः ॥ ५७॥

चञ्चलायां मनो भूमौ जाता या प्रेमवल्लरी ।
स्मृतिशीतजलेनेयं सेचनीया प्रयत्नतः ॥ ५८ ॥

हे मनःसुख ! तेरी मधुर वाणी सुनकर मैने जिस सुख का अनुभव किया वह सदा स्थिरता प्राप्त करे कहीं से नदी और कहीं से नौका का समागम रूप जो समागम हम दोनों का हुआ । हे तात ? वह हम दोनों का सदा सुख और शान्तियों के आगम का कारण हो अर्थात् शान्ति दाता हो ॥५६॥

हे मनःसुख ! तेरे मनोहर स्वभाव से हर लिये गये है हम पराधीन होकर जा रहे हैं इस विधाता के आगे हम क्या कर सकते हैं ? ॥५७॥

चञ्चल मनोरूप भूमि में प्रेमरूप लता उत्पन्न जो हुई है वह स्मरण रूप शीतल जल से प्रयत्त्न से सींचने की योग्य है ॥५८॥

सत्यमेवासि शान्तात्मन् ! मनःसुखः ! मनःसुखः ।
केवलं ते वियोगोऽस्ति सन्तापाय च मादृशाम् ॥५९॥
अहमप्यस्मि हे तात ब्राह्मणस्तद्वदस्व मे ।
किं तुभ्यं संप्रयच्छामि यत्ते हितकरं भवेत् ॥६०॥
ब्राह्मणोऽप्यवदद्वाचमन्यस्मिञ्जन्मनीह वै ।
यथाकथञ्चित् सम्बन्ध आवयोः स्याद् ध्रुवोऽचलः ॥६१॥
एवमस्त्विति चोक्त्वा स हरिरन्तर्दधौ किल ।
गतमोहो द्विजेन्द्रः स दध्यौ किं याचितं मया ॥ ६२ ॥
यदेव बन्धनं छेत्तुं त्यक्त्वा गृहमिहागतः ।
तदेव बन्धनं नूनं मोहात् सम्प्रार्थितं मया ॥ ६३ ॥

हे शान्त हृदय ! मनःसुख ! तुम सचमुच मनःसुख अर्थात् हृदय को आनन्दित करनेवाले हो तुम्हारा वियोग मेरेसे जनों के लिये केवल सन्ताप के लिये ही है ॥५९॥

हे तात ! मैं भी ब्राह्मण हूं इस हेतु से मुझे कहो कि-तुझे क्या दूं जो तेरा हितकर हो ॥६०॥

मनःसुख नामक ब्राह्मण ने कहा–कि दूसरे जन्म में या इस जन्म में किसी भी प्रकार से हम दोनों का दृढ स्थिर सम्बन्ध हो ॥६१॥

बाद हरि जी ऐसा हो यह कहकर अलक्षित हो गये । मोह रहित ब्राह्मण श्रेष्ठ मनःसुखने विचारा कि–अहो मैंने क्या मांग लिया ॥६२॥

पश्चात् ततापं धर्मात्मा बह्वित्थं दुःखविह्वलः ।
अबन्नानि न जग्राह निद्रां लेभे न वा निशि ॥६४॥

भक्तस्य तादृशीं खिन्नां दशां दृष्ट्वा रघूत्तमः ।
रात्रौ स्वप्ने कुमारायात्मानं प्राकटयत् प्रभुः ॥६५॥

गतबन्धोऽपि भक्तानां निबद्धः प्रेमबन्धनैः ।
तेनैव बालरूपेण ह्युपतस्थौ प्रभुः पुनः ॥६६॥

धर्मात्मानं च तं विप्रं निमग्नं शोकसागरे ।
सम्यक् संतोषयामास भगवान् रघुनायकः ॥६७॥

जिस बन्धनको काटने के लिये घर छोड़कर मै यहाँ आया, वही बन्धनको निश्चय ही माहसे मैंने पुनः मांगा ।।६३॥

इस प्रकारसे धर्मात्मा मनःसुख दुःख विह्वल हो पछताने लगा, और अपने जल और अन्न का ग्रहण नहीं किया और रात में निंद नहीं पाई ॥६४॥

तब श्रीराम प्रभुने अपने भक्त की खेदयुक्त अवस्था देखकर उसी बालरूप से रातमें स्वप्नावस्थामें अपना बाल स्वरूप प्रगट किया ॥६५॥

बन्धन रहित प्रभु भक्तों के प्रेमरूप बन्धनों से बध कर उसी बाल रूप से फिर उपस्थित हुए ॥६६॥

पूरणाय प्रतिज्ञायास्तस्या एव हरिः प्रिये ! ।
प्रयागे तीर्थराजे स्वमहिमानमदिद्युतत् ॥६८॥

गिरिजोवाच-

नाथ ! त्वद्वचनं श्रुत्वा संशयो मे स निर्गतः ।
ततः परं च किं कार्यं वैष्णवैस्तन्निबोधय ॥६९॥

रुद्र उवाच-

मिथ्यावादो विवादश्च परिहासो वृथाभ्रमिः ।
दुर्जनानां च संसर्गो दर्शनं भाषणं तथा ॥७०॥
कूटं मिथ्यापवादश्च हिंसनं परनिन्दनम् ।
त्याज्यान्येतानि कार्याणि वैष्णवैः सात्त्विकैः सदा ॥७

भगवान् श्रीरघुनाथजी शोक समुद्र में डूबे हुए उस धर्मा
मनःसुख ब्राह्मण को अच्छी तरह सन्तुष्ट कर दिये ॥६७॥

हे प्रिये ! (पार्वति !) हरिने अपनी ही प्रतिज्ञा के
के लिये तीर्थराज प्रयागमें अपना महत्त्व प्रकाशित किया उ
के यहाँ ब्राह्मण रूप से अवतार लिया ॥६८॥

श्री पार्वतीजी ने पूछा कि—हे नाथ ! आपका वचन
कर वह संदेह दूर हुआ । उसके बाद वैष्णवों का कर्तव्य
है, सो मुझे समझाइये ॥६९॥

श्रीशिवजी ने कहा कि— मिथ्यावाद विवाद परिहास
घूमना दुर्जनों का संसर्ग दर्शन और भाषण ॥७०॥

कुर्वन्नेतानि कर्माणि सततं वैष्णवब्रुवः ।
अतिक्रम्य सदाचारं न हरिं प्राप्नुयात् क्वचित् ॥७२॥
सत्यमेव परो धर्मः सत्यमेव परंतपः ।
सत्यमेव व्रतं पुण्यं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥७३॥
आचार्यमनुवर्तेत नाचरेत् तस्य विप्रियम् ।
एवं कुर्वन सदा देवि ! मानवोऽत्र प्रशस्यते ॥७४॥
इत्येवं पार्वतीं रुद्रः कालक्षेपविधिं पुरा ।
आदिशत् स च युष्मभ्यं श्रावितोऽथ महर्षयः ॥७५॥

जूआ मिथ्या अपवाद हिंसा दूसरों की निन्दा इतने काम सात्विक वैष्णवों को सदा छोड देना चाहिये ।७१॥

इतने कार्य करता हुआ अपने को वैष्णव कहनेवाला सदाचार छोडकर वाला हरि को कहीं नहीं पा सकेगा ॥७२॥

सत्य ही उत्कृष्ट धर्म है सत्य ही उत्कृष्ट तप है, सत्य ही पवित्र व्रत है अतः सत्य वचन बोले ॥७३॥

आचार्य का अनुगमन करे आचार्य प्रिय–प्रतिकूल आचरण नहीं करे' हे देवि हमेशा इस प्रकार करने वाला मनुष्य अच्छा कहा जाता है ॥७४॥

हे महर्षियों ! श्री शिवजी ने पूर्व काल में कालक्षेप विधान श्री पार्वतीजी के प्रति कहा, वही आज आप लोगों को मैंने सुनाया है ॥७५॥

ऋषय ऊचुः-

श्रुतवन्तो वयं सर्वं धर्ममार्गं महामुने ।
त्वत्कृपातः कृपा सिन्धो कार्त्तार्थ्यं च गता वयम् ॥७६॥

इति श्रीपाञ्चरात्रे श्रीबाल्मीकि संहितायां
कालक्षेपविधिनिरूपणं नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

वाल्मीकि संहितायाम्

षष्ठोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः-

महाभाग ! श्रुतं सर्वमस्माभि भाग्यशालिभिः ।
संशयोऽत्र विनष्टो नः कृपया ते महामुने ! ॥१॥
कस्मिंस्तीर्थे च संस्थाने विरक्तैर्वैष्णवैर्विभो ।
कालक्षेपः प्रकर्तव्यः कृपया ब्रूहि नोऽधुना ॥२॥

हे महामुनि श्रीवाल्मीकिजी ! हे दयासागर ? आप से उपदिष्ट सभी धर्म मार्ग सुनकर हम सब कृतार्थ हो गये ॥७६॥

श्री पाञ्चरात्रे श्रीवाल्मीकि संहितायां कालक्षेप विधि-निरूपणात्मकस्य पञ्चमस्याध्यायस्य हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥५॥

वाल्मीकिरुवाच

ऋषयः श्रूयतां वच्मि युष्माकं यन्मनीषितम्
वेदेषु यच्च शास्त्रेषु दृष्टं तच्च निशम्यताम् ॥३॥
अयोध्या परमा पुण्या सर्वपापप्रणाशिनी ।
अखिलेभ्यश्च जन्तुभ्यः सततं मोक्षदायिनी ॥४॥
अयोध्याः पथोरेणु यद्युड्डीय शिरो लगेत् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नरो नास्त्यत्र संशयः ॥५॥

ऋषियों ने कहा कि– हे महाभाग ! महामुने आपकी कृपा से भाग्यशाली हम लोगोंने सब सुना यहाँ हमारा संशय दूर हो गया ॥१॥

हे विभो ! विरक्त वैष्णवों को किस तीर्थ में और किस संस्थान में कालक्षेप करना चाहिये यानि समय विताना चाहिये यह हमें कहिये ॥२॥

बाल्मीकिजी ने कहा कि–हे ऋषियों ! आपलोग सुनिये, आपलोगों का जो मनोऽभिलषित है जो वेदों में और शास्त्रों में और शास्त्रोंमें वर्णित है या देखा गया है उसे सुनिये ॥३॥

सब पापोंको दूर करनेवाली अयोध्या नगरी बहुत पवित्र है, वह श्रीरामप्रिया सब प्राणियोंको हंमेशा मोक्ष देनेवाली है ॥४॥

जिस मनुष्य के मस्तकपर अयोध्या की धूलि उडकर लग जाती है वह मनुष्य निःसन्देह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥५॥

रमया च रमाकान्तो भ्रातृभिः सकलैः सह ।
हनुमदादिभिः स्वीयैः सर्वैः पारिषदैः सह ॥६॥
यत्र लीलामयो लीलां कुरुते च निजेच्छया ।
लोकानां पावनीं यत्र सरयूर्भाति नित्यशः ॥७॥
यस्यामेव निमज्जन्ति चत्वारो भ्रातरः सदा ।
जगन्माता महालक्ष्मीश्चापि प्रेम पुरस्सरम् ॥८॥
यज्जलं स्प्रष्टुकामास्ते ब्रह्माद्या देवयोनयः ।
आङ्काक्षन्ति भुवो वासं वन्द्या वन्द्य जनैरपि ॥९॥

जिस अयोध्यामें लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मीजी लक्ष्मणादि सभी भाईयों के साथ और श्रीहनुमान्‌जी आदि अपने सब सदस्यों के साथ ॥६॥

लीलामय श्रीरामचन्द्रजी अपनी इच्छा से लीला किया करते हैं, और लोगों को पवित्र करनेवाली सरयूनदी जहाँ हँमेशा विराजमान रहती है ॥

जिस सरयूनदी में चारो भाई सदा स्नान किया करते हैं, और जगज्जननी श्रीमहालक्ष्मी भी प्रेम पूर्वक स्नान किया करती है ॥८॥

जिस सरयूजी के जलके स्पर्श करने के अभिलाषी ब्रह्मा आदि देवयोनियाँ सभी सब वन्दनीयजनों से वन्दन योग्य होकर भी पृथिवी का निवास चाहते हैं ॥९॥

एवं गुणयुताऽयोध्या स केतापर नामिका ।
रामभक्तैः सदा सेव्या तत्पदाकाङ्क्षिभि र्नरैः ॥१०॥

नित्या कृष्णपुरी दिव्या कृष्णलीलास्थली च या ।
स यत्र भगवान् कृष्णो नित्यलीलाकरः प्रभुः ॥११॥

गोपिकाभिश्च गोपैश्च चिरं चिक्रीड धर्मदृक् ।
सा मथुराऽपि संसेव्या भुक्तिदा मुक्तिदा ध्रुवा ॥१२॥

द्वारिका नगरी रम्या यां द्वारीकृत्य मानवाः ।
अनायासत एवेतः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥१३॥

इस प्रकारके गुणोंसे युक्त साकेत दुसरा नामवाली अयोध्यापुरी श्रीरामचरणाभिलाषी श्रीरामभक्त मानवो से हमेशा सेवनीय है ॥१०॥

जो नित्य श्रीकृष्णपूरी नित्य श्रीकृष्णचन्द्रजी की लीला स्थली है, जहाँ नित्यलीलाकारी प्रभु प्रसिद्ध भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ।

गोपीजनो के साथ और गोपो के साथ धर्मानुरक्त चिरकाल रमण किये हैं, वह मथुरा नगरी भी स्थिर भोगमोक्षदात्री संसेवनीय है ॥१२॥

भगवानकी सुन्दर द्वारका नगरी है, जिसे मानव अद्वारको ही द्वार बनाकर विना प्रयास ही इस लोक में परमगति पाते हैं ॥१३॥

धनुषा च शराभ्यां चाङ्क्यन्ते येऽत्र मानवाः ।
शङ्खेन चक्रकेणापि तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥१४॥
साऽपि सेव्या नरैर्नित्यं धर्ममोक्षाभिलाषिभिः ।
संसेव्यो वैष्णवै नित्य यादवादिश्च निश्चलः ॥१५॥
यत्र वै भगवान् कृष्णो विजहार स्वमायया ।
चित्रकूटः स संसेव्य यत्र त्रैलोक्य पावनः ॥१६॥
सीतया सहितो रामः सबन्धुर्वासमाकरोत् ।
कामदं कामदं यत्र परिक्रामन् नरः सदा ॥१७॥
विमुक्तः सर्वदुःखेभ्यः शीघ्रं याति परां गतिम् ।
माया चावन्तिका काञ्ची काशी चापीह मुक्तिदा ॥१८॥

जहाँ श्रीविश्रामद्वारिकादि धामोंमें धनुष और बाणोंसे जो मनुष्य वाम और दक्षिण भुजाओं को अङ्कित करवाते हैं और शंख चक्रों से भी वे भी परमगति प्राप्त करते हैं ॥१४॥

वह भी धर्ममोक्षाभिलाषियों से सेवनीय है । वैष्णवों से निश्चल यादवादि यादवोंका पर्वत गोवर्धन भी संसेवनीय है॥१५॥

जिसपर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने अपनी मायासे विचरण किया ॥१६॥

चित्रकूट श्रीवैष्णवों का संसेवनीय है, जिसपर त्रैलोक्यपावन श्रीरामचन्द्रजी ने श्रीसीताजी के साथ और लक्ष्मण भाई के साथ वास किया ॥१७॥

एवमादिषु तीर्थेषु वस्तव्यं वैष्णवैः सदा ।
प्रयागश्च महापुण्यस्तीर्थराजश्च साक्षयः ।।१९।।
यत्र कुत्रापि गङ्गायाः सरय्वाश्च सुखावहे ।
तटे चापि निवस्तव्यं कालिन्द्या अपि शोभने ।।२०।।

ऋषय ऊचुः-

महर्षे ? वेदयोने ? ते निपीय वचनामृतम् ।
आपन्ना स्तृप्तिमत्यन्तां वयं तत्त्वबुभुत्सवः ।।२१।।
इदानीं श्रोतुमिच्छाम आश्रमेषु चतुर्ष्वपि ।
वैष्णवानां विरक्तानां क इति ब्रूहि तत्त्वतः ।।२२।।

कामद—अभिलषितदायक और कामद काम—अभिलाषा उसका अवखण्डन करनेवाला कामदगिरि का परिक्रमण करता हुआ मनुष्य सर्वदा निवास करता है वह पापोसे मुक्त होकर शीघ्र परम गति पाता है ।।१८।।

माया अवन्तिका काञ्ची और काशी भी मोक्षदायिका है अतः वैष्णवों को निवास योग्य है, इस प्रकार के तीर्थों में वैष्णवों को सदा निवास करना चाहिये ।।१९।।

और अक्षयवटसहित बडा पवित्र तीर्थराज प्रयाग भी वैष्णवोंके निवास योग्य है । गङ्गा सरयू और यमुना के सुखद सुन्दर जिस किसी भी तीर पर वैष्णवों को निवास करना चाहिए ।२०।

ऋषियों ने कहा कि—हे वेदयोनि महर्षिजी ! आपके वचनामृत पीकर तत्त्व जिज्ञासु हमलोग अत्यन्त तृप्ति को प्राप्त हुए ।।२१।।

बालमीकिरुवाच-

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
अत्र चत्वार एवैते नित्यमाश्रमिणो मताः ॥२३॥
ब्रह्मचारी द्विधा प्रोक्त उपकुर्वाणकोऽपरः ।
नैष्ठिकश्च तथा ज्ञेयः सर्वमङ्गलकारकः ॥२४॥
उपकुर्वाणका ज्ञेयो व्रतान्ते स्नातको भवन् ।
नैष्ठिकश्च सदा शुद्ध पुण्यचेता जितेन्द्रियः ॥२५॥
भगवन्तं सदा ध्यायन् पुरुषार्थपरायणः ।
गुरु शुश्रूषमाणो हि नित्यं गुरुकुले वसेत् ॥२६॥

तो भी इस समयमें चार आश्रमों में से विरक्त वैष्णवोंका कौन सा आश्रम शास्त्र संगत है ? सो बनने की इच्छा हम करते है अतः इसे आप कृपाकर कहिये ॥२२॥

वाल्मीकिजी ने कहा कि--ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और यति ये चार आश्रम माने गये हैं ॥२३॥

इसमें ब्रह्मचारी दो प्रकार के होत हैं, एक-उपकुर्वाण, दूसरा नैष्ठिक, यह उभय मङ्गल कारक है ॥२४॥

उनमें व्रत के अन्त में स्नातक हो उसे उपकुर्वाण ब्रह्मचारी समझना चाहिये नैष्ठिक ब्रह्मचारी तो हँमेशा शुद्ध पुण्यचित्त जितेन्द्रिय ॥२५॥

विरक्तो धृतकौपीनो नैष्ठिकः स निगद्यते ।
वेदं वेदौ च वेदान् वा द्विजोऽधीत्य गुरोः कुलात् ॥२७॥

दारान् गृह्णाति यो वै स सद्गृहस्थ इति स्मृतः ।
स्वधर्मे वर्तमानास्तु शूद्रा अपि तथा स्मृताः ॥२८॥

तृतीये वयसि प्राप्ते सञ्जाते पुत्र पुत्रके ।
दारैः सहैकलो वाऽपि द्विजो गच्छन् वनं शुभम् ॥२९॥

वानप्रस्थः स विज्ञेयो ब्रह्मज्ञान परायणः ।
चतुर्थे चाश्रमे तिष्ठन् यतिर्विद्वद्भिरीरितः ॥३०॥

भगवान् को सदा स्मरण में लाता हुआ पुरुषार्थों में तत्पर गुरुकी सेवा करता हुआ हंमेशा गुरूके आश्रम में निवास करे ॥२६॥

विरक्त कौपीन धारण करने वाला जो है, वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा जाता है । जो द्विज एक वेद वा दो वेद वा सभीवेद पढकर स्त्रीका परिग्रह करता है वह गृहस्थ कहा गया है ॥२७॥

अपने धर्म में तत्पर शूद्र भी वैसे कहे गये हैं ॥२८॥

तीसरा वय प्राप्त हो जाने पर पौत्र उत्पन्न होने पर स्त्री जाने पर वा अकेला भी वन में जाने वाला ब्राह्मण ब्रह्मज्ञान तत्पर होता है वह वानप्रस्थ है ॥२९॥

चौथे आश्रम में रहता हुआ द्विज यति कहा गया है ॥३०॥

चतुर्धा यतयः प्रोक्ताः कुटीचक-बहूदकौ ।
हंसः परमहंसश्च धर्मव्रत परायणः ॥३१॥
यतीनां बाह्यचिह्नानि गृहीत्वा यस्तु सन् द्विज ।
स्वगृहेष्वेव वर्तेत विरक्तः स कुटीचकः ॥३२॥
गृहं त्यक्त्वा विरक्ता ये भिक्ष्या धारयन्नसून् ।
यतिलिङ्ग समायुक्तः सद्वितीय उदाहृतः ॥३३॥
तृतीयः शास्त्रसम्पन्नो वेदविद् वेदकर्मकृत् ।
शरीरे निस्पृहो योगी प्राणयामे रतः सदा ॥३४॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः परवैराग्यवान् सुधीः ।
प्रव्रजन् धार्मिकश्रेष्ठस्तुरोयः कथ्यते बुधैः- ॥३५॥

चार प्रकार के यति कहे गये हैं, कुटीचक १ बहूदक २ हंस ३ परमहंस यह धर्मव्रत में तत्पर रहनेवाला होता है ॥३१॥

यतियों के बाहर चिह्न लेकर जो विद्वान् द्विज विरक्त होकर घर में ही रहता है, वह कुटीचक है ॥३२॥

जो विरक्त हो घर छोडकर भिक्षासे प्राण धारण करनेवाला यति के चिह्नों से मुक्त होता है, वह बहूदक यति कहा गया है ॥३३॥

हंस यति वह है, जो शास्त्रसम्पन्न बेदज्ञाता वेदविहित कर्म करनेवाला शरीर में स्पृहारहित योगी हमेशा प्राणायाम में तत्पर होता ॥३४॥

काषायं ब्रह्मसूत्रं च भिक्षुदण्डं धारयन् यतिः ।
पुनानः स्वापदेशेन लोकांश्च विचरेद् भुवि ॥३६॥
ये गृहस्था गृहस्थास्ते वैष्णवा धर्मचारिणः ।
विरक्तानां च विषये श्रूयतां श्रुतिचोदना ॥३७॥
विरक्ता रामभक्ता ये ते द्विधा समुदीरिताः ।
केचित् संन्यासिनः केचिन्नैष्ठिक ब्रह्मचारिणः ॥३८॥
ये द्विजास्तु कृतोद्वहा भगवत्पादमाप्नुयुः ।
विप्लुतब्रह्मचर्यास्ते बुधैः संन्यासिनः स्मृताः ॥३९॥
बाल्यादारभ्य संस्कारो येषमस्ति च वैष्णवः ।
द्विजास्तेऽदृष्टसंसारा नैष्ठिकब्रह्मचारिणः ॥४०॥

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य परम विरक्त विद्वान् सन्यास ग्रहण करनेवाला धार्मिकों में जो श्रेष्ठ होता है वह पण्डित परमहंस यति कहा जाता है ॥३५॥

वह यतिकषाय ब्रह्मसूत्र त्रिदण्डों का धारण करता हुआ अपने उपदेशों से लोगों को पवित्र करता हुआ पृथिवी में सर्वदा विचरण किया करे ॥३६॥

जो गृहस्थ हैं वे भी वैष्णव धर्मचारी हैं । विरक्तों के विषय में वेद की प्रेरण सुनिये ॥३७॥

जो विरक्त श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हैं, वे दो प्रकार के कहे गये है, कोई संन्यासी और कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी होता है ॥३८॥

निर्ममा निरहङ्काराः पञ्चसंस्कारसंयुजः ।
ये शूद्रा भगवद्भक्तास्ते च भागवताः स्मृताः ।४१॥

इति श्रुत्वा महात्मान ऋषयो धर्मवेदिनः ।
ऊचिरे वचनं चेदं बद्धाञ्जलि पुटास्तदा ॥४२॥

ऋषय ऊचुः—

कृतकृत्या वयं भूताः श्रुत्वा ते परमाद्भुतम् ।
वचनं मुनिराट् तस्माद् दयासिन्धो विदांवर ॥४३॥

अन्ये ये च सदाचारा वैष्णवानां श्रुतौ स्थिताः ।
तान्नो ब्रूहि महाभागः करुणैकमहालयः ॥४४॥

जो द्विज विवाह कर चुके है, और कालक्रम से विरक्ति आने पर आचार्यजी से विधिवत् दीक्षा लेकर भगवत्प्रपन्न हुये है ब्रह्मचर्य नष्ट होनेपर भी वे पण्डितोंसे संन्यासी कहे गये हैं ॥३९॥

बाल्यकाल से लेकर जिनका वैष्णव संस्कार है, वे द्विज अदृष्टसंसार नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहे गये हैं ॥४०॥

जो शुद्र ममतारहित अहङ्काररहित श्रीवैष्णवीय पञ्च संस्कार सम्पन्न हैं, वे भगवानके भक्त होकर भागवत यानि भगवत्सम्बन्धी कहे गये हैं ॥४१॥

यह सुनकर महात्मा धर्मज्ञ ऋषियों ने यह वक्ष्यमाण वचन उस समय में कहा कि---

वाल्मीकिरुवाच–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्माता गुरुः पिता ।
गुरुर्बन्धुर्गुरुर्मित्र गुरुरेव सुखप्रदः ॥४५॥
प्रातरुत्थाय शिष्यः स्वगुरोः सम्मुखमागतः ।
साष्टाङ्गं प्रणमेन्नित्यं परया श्रद्धयाऽन्वितः ॥४६॥
रुष्टेषु सर्वदेवेषु रक्षतीह रमापतिः ।
क्रुद्धे रमापतावद्य गुरु रक्षां करोति ह ॥४७॥
कोऽपि रक्षाकरो नास्ति गुरौ संरुष्टतां गते ।
ततः सर्वप्रयत्नेन प्रसाद्यो गुरुरञ्जसा ॥४८॥

हे मुनिराज ! दयासागर ज्ञानिश्रेष्ठ बाल्मीकि जी ! आपका परम अद्भुत वचन सुनकर हम सब कृतकृत्य हो गये ॥४३॥

तथापि हे महाभाग ! हे करुणासिन्धु ! वैष्णवों लिये वेदों में अन्य जो सदाचारादि वर्णित हैं उन्हें कृपया हमें कहें ॥३४॥

वाल्मीकिजी ने कहा–कि–गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु माता हैं, गुरु पिता हैं, गुरु बन्धु यानि भाई हैं, गुरु मित्र है, गुरु ही सुखदायक हैं ॥४५॥

प्रातःकाल में उठकर शिष्य गुरु के पास जाकर बडी श्रद्धा से युक्त हो प्रतिदिन गुरु को साष्टाङ्ग प्रणाम करे ॥४६॥

सब देवों के रुष्ट हो जाने पर लक्ष्मीपति रक्षा करते हैं, लक्ष्मीपति के क्रुद्ध हो जानेपर गुरु रक्षा करते हैं ॥४७॥

पञ्चसंस्कार संयुक्तो दासान्तं नाम चावहन् ।
विष्णुभक्तिसमायुक्तो विरक्तो वैष्णवः स्मृतः ॥४९॥

यो न द्वेष्टि न च द्रोग्धि नाऽनाचारं चरत्यपि ।
रामभक्ति समापन्नो विरक्तो वैष्णवः स्मृतः ॥५०॥

यस्तुजाति स्वभावेन पूर्वजन्मार्जितस्य वा ।
दुष्कर्मणः फलेनैव प्राप्तया दुर्धिया नरः ॥५१॥
अपरन्निष्फलं द्वेष्टि स वै चाण्डाल वैष्णवः ।
विष्णु चिन्हधरान् यस्तु वृथा निन्दति मूर्खराट् ॥५२॥
वैष्णवानां समाजात्तु निष्कास्यः स च दुर्मतिः ।

गुरुके रुष्टता प्राप्त होनेपर, कोई रक्षा करनेवाला नहीं होता है। इस हेतुसे सब प्रयत्नसे गुरु प्रसन्न करनेके योग्य हैं ॥४८॥

पाँच संस्कारों से युक्त भगवानके नामके साथ दासान्त नाम वाला विष्णुभक्ति से युक्त विरक्त वैष्णव कहा गया है ॥४९॥

जो जातित्व भाव से पूर्वजन्म में किये हुए पापके फल यानि परिणाम से प्राप्त दुर्बुद्धि से दूसरों से निष्प्रयोजन द्वेष करता है, वह चाण्डाल वैष्णव है ॥५१॥

जो मूर्खाधिराज विष्णु चिह्न धारियों की व्यर्थ में निन्दा करता है, वह दुर्बुद्धि वैष्णवोंके समाजसे बाहर करने योग्य है ॥५२॥

[टाइटल पृष्ठ २ का शेषांश]

बोधायनाय वरधर्मसुशिक्षकाय
बोधायनाय मुनिवेषधृते नमस्ते ।
बोधायनाय रघुनायकभक्तिदाय
बोधायनाय वरभक्तिनिधे नमस्ते ॥६॥
बोधायनाय बुधवृन्दसुपूजिताय
बोधायनाय वरबुद्धिनिधे नमस्ते ।
बोधायनाय मुनिधर्मसुशिक्षकाय
बोधायनाय मुनिवन्द्य नमो नमस्ते ॥७॥
बोधायनाय मुनिवृन्द महेश्वराय
बोधायनाय जगतो गुरवे नमस्ते ।
बोधायनाय भववारिधितारकाय
बोधायनाय करुणाम्बुधये नमस्ते ॥८॥
बोधायनाय जनदुःखविनाशकाय
बोधायनाय जनसौख्यकृते नमस्ते ।
बोधायनाय जनपूज्यपदाम्बुजाय
बोधायनाय जनमुक्तिकृते नमस्ते ॥९॥
बोधायनाय वरधर्मसुरक्षकाय
बोधायनाय शुचिधर्मनिधे नमस्ते ।
बोधायनाय दुरितौघविनाशकाय
बोधायनाय सुगुणाम्बुनिधे नमस्ते ॥१०॥
बोधायनाय वरदण्डधरेश्वराय
बोधायनाय मुनिधर्मनिधे नमस्ते ।

Regd. No. GAMC 451

बोधायनाय रघुनाथपदाश्रिताय
बोधायनाय परतत्वविदे नमस्ते ॥११॥
बोधायनाय वरकान्तिमते नमस्ते
बोधायनाय वरशान्तिमते नमस्ते ।
बोधायनाय वरवृत्तवते नमस्ते
बोधायनाय वरवृत्तिकृते नमस्ते ॥१२॥
दुर्वादध्वान्तमार्त्तण्डराघवानन्दनिर्मिता ।
एषा हि द्वादशी भूयाद् बोधायनस्य तुष्टये ॥१३॥

श्रीबोधायन जयन्ती पौषकृष्ण द्वादशी को अवश्य मनायें ।

ज्ञातव्य

श्रीरामानन्दपीठ श्रीकोसलेन्द्रमठ अहमदाबाद में पुरुषोत्तम मास के उपलक्ष्य में दि.१३।२।८३ से १४।३।८३ तक श्रीविभीषण-शरणागति श्रीरामचरितमानस सुन्दर काण्ड के प्रवचन का आयोजन किया गया हैं प्रवचन कर्ता स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य जी हैं समय सायं ५ से ६।३० दि० १२।३।८३ शनिवार को होमात्मक लघुरुद्र याग सम्पन्न होगा। गीता स्वाध्याय आदि विविध कार्यों का भी आयोजन है।

मुद्रकः-श्रीरामानन्द प्रिंटिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद-२२

त्रिदण्डि संस्थान श्रीशेषमठ-धर्मप्रचार विभागसे धर्मप्रचारार्थ प्रकाशित

प्रेषक-श्री कौसलेन्द्र मठ सरखेज रोड
पो० पालड़ी, अहमदाबाद-३८० ००७
[illegible] प्रा. नं.
[illegible] प्रा.

१७७ रजिस्ट्रार
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार (यु. पी.)

वाराणसीस्थ आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यपीठाचार्य

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य- राम प्रपन्नाचार्य

योगीन्द्र प्रवर्तित विश्राम द्वारकास्थ श्री शीलमठ संचालित,

ज. गु. श्री रामानन्दाचार्य-पीठ

सचित्र धार्मिक मासिक

संरक्षक- शेठ श्री अमरशी कुरजी मजिठिया
सम्पादक- स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य
सहसम्पादक- पं. शरच्चन्द्र शास्त्री

जगल्लीलाबीजं निरवधिककल्याणगुणकम्
महेशाद्यैर्वन्द्यं कलुषितगुणास्पृष्टवपुषम्
शरण्यं लोकानां श्रुतिनुतपदं भक्तसुखदम्
श्रयेऽहं श्रीरामं द्विभुजकमनीयं प्रतिदिनम् ॥

(जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्याः)

कार्यालयः श्री कोसलेन्द्र मठ, सरखेज रोड, पालडी,
अहमदाबाद-३८०००७

वर्ष ५ विक्रमाब्द २०३९ अंक १

श्रीरामानन्दाब्द ६८३ १ मार्च १९८३

श्री वैष्णव एकादशी व्रत निर्णय

चैत्र शुक्ल. ११	कामदा.	२३ अप्रैल. ८३ शनिवार
वैशाख कृष्ण ११	वरुथिनी	८ मई ८३ रविवार
वैशाख शु. ११	मोहिनी	२२ मई ८३ रविवार
ज्येष्ठ कृष्ण ११	अपरा	७ जून ८३ मंगलवार
ज्येष्ठ शुक्ल ११	निर्जला	२१ जून ८३ मंगलवार
आसाढ़ कृष्ण ११	योगिनी	७ जुलाई ८३ गुरुवार
आसाढ़ शुक्ल ११	देवशयनी	२० जुलाई ८३ बुधवार
श्रावण कृष्ण. ११	कामिका	५ ओगस्ट ८३ शुक्रवार
श्राणण शुक्ल. ११	पुत्रदा	१९ ओगस्ट ८३ शुक्रवार
भाद्रपद कृष्ण. ११	अजा	३ सितम्बर-८३ शनिवार
भाद्रपद शुक्ल. ११	परिवर्तिनी	१७ सितम्बर-८३ शनिवार
आश्विन कृष्ण. ११	इन्दिरा	३ अक्टूबर-८३ सोमवार
आश्विन शु. ११	पाशांकुशा	१७ अक्टूबर.८३ सोमवार
कार्तिक कृष्ण. ११	रमा	१ नवम्बर-८३ मंगलवार
कार्तिक शुक्ल. ११	प्रबोधिनी	१६ नवम्बर-८३ बुधवार
मार्गशीर्ष कृष्ण. ११	उत्पत्ति	३० नवम्बर-८३ बुधवार
मार्गशीर्ष शुक्ल. ११	मोक्षदा	१६ डीसम्बर-८३ शुक्रवार
पौष कृष्ण ११	सफला	३० डीसम्बर-८३ शुक्रवार
पौष शुक्ल- ११	जया	१५ जनवरी-८४ रविवार
माघ कृष्ण-११	षट्‌ तिला	२८ जनवरी-८४ शनिवार
माघ शुक्ल-११	जया	१३ फरवरी-८४ सोमवार
फालगून कृष्ण-११	विजया	२७-फरवरी ८४ सोमवार
फालगून शुक्ल ११	आमलकी	१४ मार्च-८४ बुधवार
चैत्र कृष्णा-११	पापमोचिनी	२८ मार्च-८४ बुधवार

काशीस्थ

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य पीठ के

अनन्तश्रीविभूषित आचार्यश्री का शुभाशीर्वाद
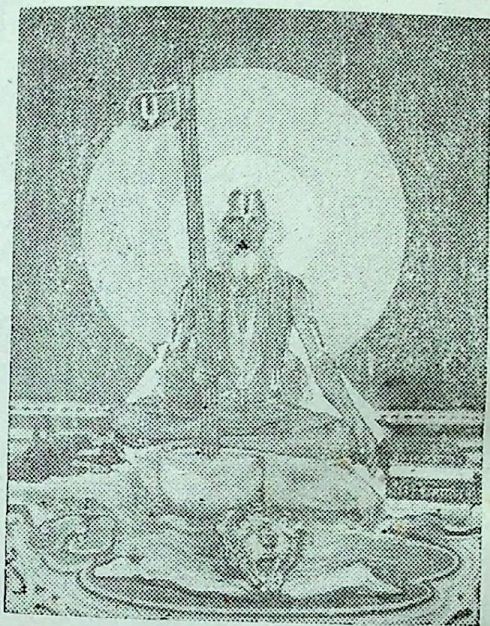
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र

आचार्यपीठ पत्रिका अपने महनीय चार वर्ष पूर्ण कर निर्वाधतया पाँचवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है यह महत्वपूर्ण बात है। पत्र-पत्रिकाएँ जन सम्पर्क का प्रमुख साधन हैं। उसमें भी आज इन का विशेष महत्व है। भारतीय मनीषियों द्वारा प्रादुर्भावित मानव कल्याणकारी तत्त्व ज्ञान राशी का प्रशारण लक्ष्य को लेकर उद्भूत इस पत्र ने पूर्णतया अपने लक्ष्य को लक्ष्य में रखा तथा शत प्रतिशत सफलता प्राप्त की।

आचार्यचक्र चूड़ामणि आनन्द भाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी प्रणीत श्रीवैष्णव मताब्ज भास्कर प्रभा-किरण सहित। प्रबोधरत्नमाला विमला सहित। श्रीरामचापस्तव बालबोधिनी संस्कृत-हिन्दी सहित श्रीराम बाणस्तव बालबोधिनी संस्कृत हिन्दी सहित श्रीवाल्मीकि संहिता प्रकाश सहित आदि तात्विक ज्ञान राशि को सर्वसाधारण जनता तक पँहूँचानेकाश्रेय इसी पत्रिका का है। इसके अतिरिक्त पण्डित सम्राट् जी कृत अर्चिरादि प्रकाशादि अनेक साम्प्रदायिक प्रबन्धों का आलोक तो रहाही साथ में अन्य लेखकों के तात्विक लेखों के प्रकाशन में भी पीछे नहीं रहा। अतः इसने अपने गरीमा को पूर्णतया बनाये रखा भविष्य में भी स्वलक्ष्य साधनमें अबाधगति जाग्रत रहे यही मेरी सर्वेश्वर श्रीसीताराम जी से मंगल कामना है।

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र का

जीवन-चक्र

१-त्रिप्रवरान्वित वशिष्ठ गोत्रीय कान्यकुब्ज ब्राह्मणपरिवारमें श्रीरामनवमी वि. सम्वत् १९४९ के प्रातः वाराणसी में आविर्भाव।

२-वि. सम्वत् १९७८ के महाकुम्भपर्व उज्जैन में जगद्गुरु-श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्य जी वेदान्त केशरीजी के शरणापन्न होकर विविधशास्त्राध्ययन तथा योगसाधना में पारङ्गतता।

३-दि० २०।११।१९५२ ई० पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्द पीठ विश्रामद्वारिका श्रीशेषमठ-पोरबन्दर (सौराष्ट्र) में सरकार द्वारा आचार्य के रूप में अभिषेक।

४-सुदामापुरी-पोरबन्र में श्रीजानकीमठ (विश्रामद्वारका श्रीशेषमठ की शाखा) का निर्माण कर दि० ५।४।१९६० ई० को श्रीअवधविहारीजी का प्रतिष्ठा श्रीरामनवमी के पावन पर्व के दिन।

५–भारत का प्रमुख नगर अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे तपोपूत श्रीमरीचितपोभूमि में श्रीरामनन्दपीठ–श्रीकोसलेन्द्रमठ की स्थापना कर दि २५।३।१९६१ ई० को श्रीरामनवमी के पुण्य पर्व के दिन श्रीसाकेतविहारी जी की प्रतिष्ठा।

६–दि० २८।३।१९६३ ई० को श्री रघुवर रामानन्द वेदान्त महाविद्यालय की स्थापना।

७–दि. ४।४।१९७१ ई० श्रीरामवमी के दिन श्रीयोगेश्वरमहादेव, निकुम्भिलामर्दन श्रीहनुमान जी तथा श्री सिद्धेश्वर हनुमानजी, श्रीअम्बाजी श्री पार्वतीजी, श्री गणपतिजी तथा प्रस्थान त्रयानन्द भाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी की प्रतिष्ठा।

८–प्रायः सातसौ वर्षो से लुप्त श्री रामानन्द सम्प्रदाय के त्रिदण्ड-ग्रहण प्रथा को श्रीरामनवमी दि० १२।४।१९७३ ई० को सविधित्रि-दण्ड ग्रहणकर विलुप्त परम्परा को पुनरुज्जीवित कर क्रान्ति की दिशा प्रदान करना। इस श्रीसम्प्रदाय में जगद्गुरु श्रीअनन्तानन्दाचार्य जी (वि. सं. १३६३–१५४०) तथा जगद्गुरु श्रीभावानन्दाचार्य जी (वि सं १३७६–१५३९) के बाद त्रिदण्डग्रहण प्रथा लुप्त हो गई थी।

९–दि० ३।४।१९७४ को नेपाल आदि देश की विजय यात्रा इस प्रसंग में दि० १७।४।७४ को मोतिहारी में नेपाल सरकार के प्रतिनिधि अञ्चलाधीश श्री के. एस. प्रधान द्वारा राष्ट्र की ओर से जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यत्वेन परम्परागत नियम से स्वागत।

१०–दि०.२०।४।७४ को श्री वाल्मीकि अध्ययन संस्थान श्री त्रिभुवन विश्वविद्यालय में वहां के समस्त पण्डितों द्वारा सम्मान स्वागत।

११–दि० २५।४।१९७४ को वर्तमान सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व विद्यालय वाराणसी के कुलपति पण्डित प्रवर श्री बदरीनाथ शुक्ल जी के अध्यक्षकत्व में काशीस्थ पण्डित वर्ग तथा नागरिकों द्वारा जगद्गुरु

श्री रामानन्दाचार्यत्वेन स्वागत । उसी दिन श्री रामानन्द पीठ संस्कृत महाविद्यालय कर्णघण्टा, वाराणसी के अध्यापक तथा छात्रों द्वारा भव्य स्वागत ।

१२–दि० १२।१।१९७७ई० को शंकुधारा–वाराणसी–३ में आचार्यपीठ (आनन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य पीठ) की स्थापना उसी दिन वाराणसीविशिष्ठविद्वत्परिषद्द्वारा साभिनन्दनपत्र जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यत्वेन विशेष स्वागत जिसमें पण्डितराज श्री राजेश्वरशास्त्री पण्डितराज श्री कालीप्रदास मिश्र पण्डित श्री केदारनाथ ओझा पण्डितरात श्रीकाली प्रसाद मिश्र पण्डित श्रीदेवस्वरूपमिश्र सं. सं. वि. वि. के सम्मान्य कुलपति पण्डित श्री करुणापति त्रिपाठी जी पण्डित श्री राम पाण्डेय प्रभृति अनेकउल्लेखनीय विभूतियाँ उपस्थित थीं।

उसीदिन श्री रामानन्द युवक संघ के सम्मान्य मन्त्री महानुभाव महन्त श्री रामविलासदास जी वेदान्ती श्री महावीरदास जी वेदान्ती प्रभृति ने आचार्यपीठ स्थल में अभिनवाभिषिक्त जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्य जी योगीन्द्र का स्वागत किया ।

१३–श्रीरामानन्द सम्प्रदाय–दर्शन का एकमात्र प्रतिनिधित्व करने वाला ज. गु. श्रीरामानन्दाचार्यपीठ मासिक पत्रिका का प्रवर्त्तन दि० १।३। १९७९ से

१४–वर्तमान में आचार्यजी आचार्यपीठ निर्माण में संलग्न हैं। पीठ निर्माण कार्य जोरों से चल रहा है । आचार्यपीठ का प्रधान अंग श्रीरामानन्द विद्यालय का कार्य पूर्ण प्रायः है । आचार्य पीठ विभाग में भी तीसेक रूम वन गये है । मन्दिर जगमोहन कार्य पूर्ण प्रायः है । पीठ की सब जगह को चार दीवाली कर दी गई है ।

यः श्रीरामपदारविन्दयुगलं ध्याता महाशास्त्रविद्
योगीन्द्रश्च पयः फलाशनपरस्त्यागी परिव्राजकः ।
छात्राणां परिपालको गुणनिधिः पीठस्यसंस्थापकः
स श्रीदर्शनकेशरी विजयते रामप्रपन्नः सुधिः ॥१॥

श्रीसीताराम भाँवरी मण्डप

प्रतिष्ठा-महोत्सव

श्री मिथिला जनकपुरधामस्थ आचार्यपीठ श्री रामानन्दआ-श्रम में श्री मैथिली जूकी असीम कृपापूर्ण प्रेरणा से श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के मूर्धन्य विद्वान् साहित्यकार आचार्य पीठ श्रीरामानन्द आश्रम संस्थापकाध्यक्ष परमपूज्य पण्डित प्रवर स्वामी श्रीअवध किशोरदासजी "श्री वैष्णव" (श्रीप्रेमनिधिजी महाराज) द्वारा 'श्री सीताराम भांवरी मण्डप' का शिलान्यास वि० सं० २०३९ अक्षय तृतीया सोमवार दिनाक २६-४-८२ ई० को मंगल मूहुर्त में हुवा। अबाध गति से मण्डप निर्माणकार्य होनेलगा श्री जूकी कृपा से भांवरी-मण्डप ७-८-महीने में बनकर तैयार होगया मण्डप की अवर्णनीय शोभा वर बस मन को लुभाता है। श्री दुलहा-दुलहिन सरकार की विवाह-मण्डप की शोभा-अतुलनीय है आचार्य चरण पूज्यापद श्री गोस्वामी जी महाराज ने मानस के बालकाण्ड में कितने भावपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है "जेहि मण्डप दुलहिन वैदेही। सो बरनै असि मति कवि के हो" दूलहराम रूप गुण सागर सोवितान तिहुलोक उजागर" हरितमणिन्ह के पत्र फल, पद्मराग के फूल, रचना देखि विचित्र अति मनहुं विरञ्चिकर भूल। इत्यादि विवाह मण्डप के विषयमें सुन्दर वर्णन हमें श्रीरामचरित मानस में पढनेको मिलता है। यहां इसी भावना को लेकर श्रीरामचरित में वणित श्रीसीतारामजी के विवाहोत्सव पर भांवरी फिरने समयकी

मनोहर झाँकी का प्रत्यक्ष दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हो ऐसे परम सुन्दर दिव्य मणि मन्दिर की श्री दुलहा भगवान् के मन्दिर के प्राङ्गण में नवीन रचना हुई है ! इसकी प्राण प्रतिस्ठा महोत्सव भी वि० सं० २०३९ मार्ग शुक्ल श्री सीताराम विवाह पंचमी सोमवार दिनांक २०-१२-१९८२ ई० नेपाली पौष पाँचगते को बड़े धूमधाम के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ । श्री सीताराम युगलस्वरूप की प्रतिस्ठा महोत्सव कार्यारम्भ ता० १८-१२-८२ शनिवार से हुआ प्रतिष्ठा महोत्सव के आचार्य स्थानाध्यक्ष पूज्य-पाद आचार्य चरण श्री प्रेमनिधिजी महाराज थे । प्रतिष्ठा में यज्ञ मण्डप पर भागलेने वाले स्थानीय विद्वान् निम्नांकित है पं. श्री उर्मिलाकान्तशरणजी ज्योतिषीजी पं० श्री शालग्राम शरणजी पं० श्रीरामसागरदासजी पं० श्रीललितकिशोरीदासजी शास्त्री पं० श्री जानकीरामाचार्यजी आमंत्रित विद्वान् गण ये हैं श्री रामानन्द महाविद्यालय शंकुधारा वाराणसी के भूतपूर्व अध्यापक एवं व्यवस्थापक पं० श्री अभिरामाचार्यजी (वर्तमान में ग्राम अन्टोर में आप अपने निवासस्थान पर ही अध्यापन कार्य रत है) बनारस से पधारे हुए पं० श्री कृपाशंकरजी त्रिपाठी रामायणी आप श्री रामचरित मानस के मूर्धन्य प्रवक्ता हैं पं० श्री अनिरुद्ध झा समनपुर-इत्यादि लगभग ब्रह्म चर्चाश्रम विहार के वैदिक छात्र प्रतिष्ठा कार्यक्रम वैदिक विधानानुशार सुन्दर ढंगसे संक्षेपत, सादर सम्पन्न हुए । दिनांक १९-१२-८२ को (कमला-पूजन मटकोर' की विधि मिथिलानी ललनायों द्वारा बाजेगाजे के साथ

साथ सन्ध्या ६ बजे से ८ बजेतक मिथिला की विधि से मनाया-
गया पुनश्च दि० २०-१२-८२ सोमवार को नवीन मन्दिर में
श्री मांवरी मण्डप विहारिणि विहारी की स्थापना ९ बजे प्रातः
मंगल मुहूर्त में हुई १० बजे शृंगार आरती का प्रथम दर्शन कर
सभी दर्शक आनन्द विभोर हो उठे "जनक समान अपान विसारे
भयेमगन सब देखनिहारे" की भावना में सभी तल्लीन हो गये !
पुनः सायंकाल श्री मांवरी मण्डप में विवाह महोत्सव का कार्य
क्रम ७ बजे से १२ बजे रात्रितक मिथिला भाव विभोर मधुररस
वर्षक सुपरिचित संकीर्तन कलाकार व्यास श्री राम भगवान शरण
जी (भोगी भगवान) व्यासकत्व में शुद्ध मैथिली भाषा में
विवाह महोत्सव अपार उत्साह उमंग के साथ मनाया गया
वात्सल्य भाव निष्ठ सन्त पं० श्री उर्मिलाकान्तशरणजी ज्योतिषा
चार्य 'द्वय' श्री विदेहमहाराज की प्रतिनिधित्व करते हुए अनुक्षण
भावावेष में मग्न थे कन्यादान के समय आपकी रुदन सुनकर
"धीरज हुकर धीरज भागा': अक्षरसः सत्य देखागया वर पक्ष
से पटना बांका घाट श्री हनुमान मन्दिर के अध्यक्ष महन्त
श्री हरिहरदासजी महाराज श्री चक्रवर्ती दशरथजी के रूप में
विराजमान थे शाखोच्चार वर पक्षसे काशी निवासी पं० श्री कृपा
शंकरजी व्यास रामायणी जी ने किया कन्या पक्ष से वंशावली
वर्णन स्थानीय विद्वान् पं० श्री जानकीरामाचार्यजी श्रीरामा-
नन्दाश्रम अग्नि कुण्ड निवासी ने श्री शतानन्दजी महारज के प्रति

निधित्व किया भांवरी देते समय की झाकी की मधुर माधुरी; देखतेही वनता था कुवर कुँवरि कल भांवरी देही। नयम लाभ सब सादर लेहीं! मनहुँ मदन रतिधरि बहुरूपा देखहि राम विवाह अनूपा। सीयराम सुन्दर परि छाही जग जगाहि मणि मण्डव माही। जिस प्रकार श्री मिथिला जनकपुर निवासियों ने दुलहा दुलहिन की मधुर छवि अवलोकनकर के कृत कृत्य हो रहे थे उसी प्रकार रति पति कामदेव भी अनेक रूप धारण कर श्री सीतारामजी युगल प्रभु की विवाह लीला का रसास्वादन कर वरवेष में प्रियतम प्रभु को निहार कर धन्य-धन्य हो रहे थे आज आचार्य पीठ श्री रामानन्दाश्रम (मिथिला-कनक-भवन) की इस प्राङ्गण में ऐसे ही दिव्य मधुर छवि को निहार कर लाखों नरनारी निहाल हो रहें हैं। यह सब देन आचार्य पीठ श्री रामानन्दाश्रम के परम पूज्य श्री महाराजजी की है जिनका पवित्र संकल्प साकार होकर आज संसार में अनुपम कर्तिध्वजा फहरा रहा है। दुसरे दिन श्रीरामकलेवा महोत्सव मनाया गया। आगन्तुक सन्त महान्त विद्वानो को भेंट विदाई द्वारा सत्कृत किया गया एवं प्रकारेण यह मंगल विवाह महोत्सव सान्नद समपन्न हुआ

प्रेषकः अनन्तरामशरण
"श्री वैस्णव"
श्री रामानन्दाश्रम जनकपुर धाम (नेपाल)

लक्षण दोष परीक्षा

ले० वैदेहीकान्तशरण तुरकी

अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव—ये तीन लक्षण के दोष कहे गये हैं। अत एव इनपर विचार किया जाता है।

न्यायबोधिनी, पदकृत्य, प्रतिविम्ब आदि टीका तथा मानरत्नावली में इनका निरूपण इस प्रकार है—

(१) अव्याप्तिः—"लक्ष्य के एक देश में लक्षण के न होने से लक्षण में अव्याप्ति दोष होता है। जैसे कहा जाये कि नीलरूप गाय का लक्षण है, तो लक्ष्य रूप गायों के एक देश श्वेत गाय में न रहने से नीलरूप लक्षण अव्याप्त (अव्याप्ति दोषवाला) कहा जाता है।"

परन्तु नीलरूप लक्षण तो लक्ष्य गाय के अतिरिक्त अलक्ष्य महिषादि में भी रहता है। अतः यह केवल अव्याप्त लक्षण ही कैसे है? यह तो अव्याप्त लक्षण के साथ ही अतिव्याप्त लक्षण भी है। अत एव यह लक्षण अन्वय-व्यतिरेकी' के समान उभयात्मक अर्थात् अव्याप्ति-अतिव्याप्त' रूप है न कि केवल अव्याप्त लक्षण। केवल अव्याप्त लक्षण तो वही होगा जो केवल लक्ष्य के ही एक देश में रहे और अलक्ष्य में नहीं रहे। जैसे—अग्नि का धूमत्व लक्षण। यह लक्षण केवल लक्ष्य के ही एक देश में ही रहता है एवं अलक्ष्य में कहीं भी नहीं अतः यह अतिव्याप्त नहीं हैं एवं

लक्ष्य अग्नि के एक देश में नहीं रहने के कारण अव्याप्त लक्षण है।

(२) अतिव्याप्तः–"लक्षण यदि समस्त लक्ष्यों में रहकर अलक्ष्य में भी रहे तो उसमें अतिव्याप्ति नामक दोष होता है। यदि कहें कि गायका लक्षण श्रृंग है तो अतिव्याप्ति दोष होता है। क्योंकि श्रृंग यद्यपि लालपीली, काली, श्वेत, कबरी आदि सभी गायों में है। इसलिये अव्याप्ति दोष नहीं है, परन्तु श्रृंग गाय के अतिरिक्त बकरी, मृग और भैंस इत्यादि में भी रहता है। इसलिये अतिव्याप्त (अति व्याप्ति दोषवाला) कहा जाता है।"

परन्तु विचार करने पर पता चलता है कि बिना विचारे ही लोगों ने अतिव्याप्ति के दृष्टान्त में "श्रृङ्गित्व" का प्रयोग किया है। यद्यपि लाल, पीली, नीली, कबरी आदि गायों को श्रृंग होता है तथापि सभी गायों को श्रृङ्ग नहीं होता। कुछ गाय ऐसी भी होती हैं, जिनको जन्म से ही सींग नहीं होता है। ऐसी बिनासींगवाली गायों को मुण्डीगाय अथवा मुड़ला गाय कहा जाता है। शास्त्रों में इसका नाम 'तूबर' है–'तूबरो निर्विषाणो गौः–१२७ अ. ट्व. में "अजात श्रृङ्गो गौः कोल्यश्म श्रुना च गौ–अ.को. ३।३।१६५।।" "तूपराः–शु-य.२४।१५।" आदि। यह श्रृङ्गित्व लक्षण भी कृष्णत्व लक्षण के समान ही अतिव्याप्त के साथ ही अव्याप्त भी है। अतः केवल अतिव्याप्त का दृष्टान्त गाय का लक्षण द्विशफत्व होगा। क्योंकि यह

सभी गायों में होने के कारण अव्याप्त लक्षण नहीं है एवं महिषादि अलक्ष्य में भी रहने के कारण अतिव्याप्त है।

(३) असम्भव:–"किसी भी लक्ष्य में यदि लक्षण न रहे तो असम्भव दोष होता है। जैसे यदि कहा जाये कि गाय का लक्षण एक खुर है तो उसमें असम्भव दोष होता है। क्योंकि एक खुर घोड़ा, खच्चर तथा गधे में होता है। किसी गाय में एक खुर नहीं होता है गाय मात्र दो खुर वाली होती है।"

परन्तु यह तो वस्तुतः विरूद्ध व्याप्त या व्यतिरेक व्याप्त का दृष्टान्त है न कि असम्भव का। असम्भव तो अलीक वा मिथ्या पदार्थ का नाम है। जैसे हाउ (हौआ) गगनारविन्दआदि अत एव असम्भव का यही अलीक पदार्थ ही दृष्टान्त हो सकता है गाय का एक खुर लक्षण तो व्यतिरेक प्राप्त या विरूद्ध व्याप्त लक्षण है।

पूर्व प्रतिवादित दोष त्रय पर विचार करने के बाद अब लक्षण के सम्बन्ध में सर्वाङ्गीन विचार किया जाता है।

लक्षण निर्धारण के तीन परिघटन है–(१) लक्षण,(२) लक्ष्य और (३) अलक्ष्य। इन तीनों के विभिन्न योगों से निम्नलिखित प्रकार के लक्षण उत्पपन्न होते हैं–

वह लक्षण जो लक्ष्यों में नहीं रहे और अलक्ष्यमात्र में ही रहे तथा लक्ष्य के सर्व देश में रहें। इसे शुद्ध व्याप्त लक्षण या व्याप्तलक्षण अथवा लक्षण कहा जायेगा। जैसे गाय का लक्षण सास्नात्व (घाघड़ या झालड़)।

वह लक्षण जो अलक्ष्य में नहीं रहे और लक्ष्य मात्र में ही रहे। किन्तु लक्ष्य के सर्व देश में नहीं रहे केवल कुछ देश में ही रहे। इसे केवल अव्याप्त या संकीर्ण व्याप्त लक्षण कहा जायगा। जैसे अग्नि का लक्षण धूमत्व।

(३) वह लक्षण जो सभी लक्ष्य एवं सभी अलक्ष्य में हो सर्व व्याप्त लक्षण कहा जायेगा। जैसे गाय का लक्षण 'पदार्थत्व'

(४) वह लक्षण जो लक्ष्य के सभी देश में हो एवं कुछ अलक्ष्य में भी हो अति व्याप्त लक्षण कहा जायेगा। जैसे गाय का लक्षण द्विशफत्व।

(५) वह लक्षण जो लक्ष्य के भी कुछ देशो में हो एवं अलक्ष्य के भी कुछ देशो में हो उभय व्याप्त या 'अव्याप्त-अतिव्याप्त' लक्षण कहा जायेगा। जैसे गाय का लक्षण कृष्णत्व।

(६) वह लक्षण जो लक्ष्य के कुछ ही देश में रहे एवं अलक्ष्य में रहे उसे अव्याप्त लक्षण कहा जायेगा। जैसे अरूपी द्रव्य का लक्षण स्पर्शत्व। यह लक्ष्य अरूपी द्रव्य आकाश, वायु, दिक् काल आदि के केवल एक देश वायु में ही रहता है तथा सभी अलक्ष्य रूपवान् द्रव्य पृथिवी, अप् तेज में रहता है।

(७) वह लक्षण जो लक्ष्य में नहीं रहे और अलक्ष्य के एक देश में ही रहे आंशिक विरुद्ध या आंशिक व्यतिरेक व्याप्त लक्षण कहा जायेगा, जैसे गाय का लक्षण सुण्डत्व

(८) वह लक्षण जो लक्ष्य में नहीं रहे और अलक्ष्य के सभी देशों में रहे पूर्ण विरुद्ध या पूर्ण व्यतिरेक लक्षण कहा जायेगा। जैसे गाय का लक्षण अगोत्व एवं वध का लक्षण अवधत्व।

(९) वह लक्षण जो न तो लक्ष्य में हो और न अलक्ष्य में असम्भव लक्षण कहा जायेगा। जैसे तालाब के कमल का लक्षण गगनारविन्दत्व, अथवा ईश्वर आत्मा का लक्षण हाउ (हौआ) अलीकत्व।

ऊपर के उपपन्न नव विध लक्षणों का विश्लेषण करने से इन्हें चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-(१) केवल लक्ष्य में रहने वाला लक्षण (यह नं० १ और २ का लक्षण है)। (२) लक्ष्य और अलक्ष्य दोनों में रहने वाला लक्षण (यह नं० ३, ४ ५, ६, वाला लक्षण हैं) (३) केवल अलक्ष्य में रहने वाला लक्षण (यह नं० ७, ८, वाला लक्षण है) और (४) लक्ष्य अथवा अलक्ष्य किसी में भी नहीं रहने वाला लक्षण (यह नं० ९ का लक्षण है)।

इन्हें चित्र द्वारा निरूपित किया जा रहा हैं। इससे इसकी तार्किक उपपत्ति स्पष्ट होगी।

(क) लक्ष्य में रहने वाला लक्षण

१. लक्ष्य लक्षण—अलक्ष्य गायका सास्नात्व व्याप्त या शुद्ध व्याप्त लक्षण

२. लक्ष्य लक्षण—अलक्ष्य आग्निका धूमत्व संकीर्ण व्याप्त लक्षण

३. लक्षण लक्ष्य अलक्ष्य-गायका पदार्थत्व सर्वव्याप्त लक्षण

४. लक्षण लक्ष्य अलक्ष्य गायका द्विशफत्व अतिव्याप्त लक्षण

५. लक्ष्य लक्षण अलक्ष्य गायका कृष्णत्व अव्याप्त-अतिव्याप्त लक्षण

६. लक्षण लक्ष्य अलक्ष्य अरूपी द्रव्य का स्पर्शत्व अथवा अस्पर्शत्व अव्याप्त लक्षण

(ख) लक्ष्यमें नहीं रहनेवाला लक्षण

७. लक्ष्य-अलक्ष्य लक्षण गायका मुण्डत्व आंशिक विरूद्ध या आंशिक व्यतिरेक लक्षण

८. लक्ष्य-अलक्ष्य लक्षण गायका अगोत्व अवघका वधत्व पूर्ण विरूद्ध या पूर्ण व्यतिरेकलक्षण

९. लक्ष्य लक्षण-अलक्ष्य

(१) कमल का गगनारविन्दत्व

(२) मरुबालुकाका (मृग) जलत्व

३) रफटिकका रक्तत्व असम्भव लक्षण

इसमें (२) सक्रीर्ण व्याप्त और (६) अव्याप्त में व्याप्यत्वासिद्ध हेत्वाभास, (३) सर्वव्याप्त में अनुपसंहारी सव्यभिचार हेत्वाभास (४) अतिव्याप्त और (५) अव्याप्त अतिव्याप्त में अनैकान्तिक हेत्वाभास (७) आं० विरूद्ध और (८) पूर्ण विरुद्ध में विरुद्ध हेत्वाभास और (९) असम्भव में आश्रयासिद्ध स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास की प्रकृति है।

कर्तव्योपदेश

स्वाध्यायः समधीयतामुपकृतिः कार्याऽनृतं नोच्यतां
हिंसा नैव विधीयतामसुमतां शीतादिकं सह्यताम् ।
सत्संगः क्रियतां तथा सुकृतिभिः काम्या कृतिस्त्यज्यमां
पापेभ्यश्च विरम्यतामसुखहृद् रामः समाश्रीयताम् ॥

(जगद्गुरु श्रीटीलाचार्यजी)

स्वाध्याय नित करहु सुजन मिथ्या से बचिये ।
मधुर सत्य हित कहहु जीव-हिंसा नहिं करिये ॥
करिये परउपकार पापसे बचते रहिये ।
शीत उष्ण इत्यादि द्वन्द्वको जगमें सहिये ॥
काम्यकर्मका त्यागकरि सन्तनकी संगति करहु ।
दुःखहरन औ सुखकरन सीतापति-आश्रित बनहु ॥

(श्रीवैष्णवशिक्षामृत)

मन को आश्वासन

जनम से ही जीने की आदत पड़ी है,
इसी से तो अबतक जिये जा रहा हूँ ।
नहीं जानता, क्या है करना, न करना,
जो अच्छा समझता, किए जा रहा हूँ ॥ जनम सेही ०

थकी देह, क्या जानें, कब गिर पड़े, यह,
है गुदड़ी पुरानी सिये जा रहा हूँ ।
नहीं सोचता हानि या लाभ कुछ भी,
समझ कर सुधा विष पिये जा रहा हुं ॥ जनमसे ०

न आता कभी ध्यान प्रभुका हृदयमें,
मगर नाम तब भी लिये जा रहा हूं
दयामय द्रवेंगे कभी दीन पर भी-
यही दिलको ढाढ़स दिये जा रहा हूं ॥ जनमसे ०

प्रेषक-पंडित उर्मिलाकान्तशरण (ज्योतिषी)
आचार्यपीठ-श्री रामानन्द-आश्रम
श्री जनकपुरधाम
(नेपाल)

"प्रवृत्ति"

(ले० पं० उर्मिला कान्त शरण श्रीवैष्णव-"ज्योतिषाचार्य"

(१) प्रवृत्तियाँ सामयिक होती हैं साथ ही अस्थिर भी। उनके उतार-चढ़ाव परिस्थिति वश आते रहते हैं। कई बार बाहरी घटनाएँ सामने को समझने अथवा असन्तुलित मनःस्थिति मनुष्य को ऐसे क्रूर कर्म करने के लिए घसीट ले जाती हैं जैसा करना उसकी मूल प्रकृति में सम्मिलित नहीं था। नशे की बदहवासी में मनुष्य न जाने क्या-क्या कहता और क्या-क्या करता है, पर नशा उतर जाने के बाद वह स्थिति नहीं रहती। ठीक इसी प्रकार आवेशों की स्थिति में मनुष्य न जाने क्या-क्या कहता और क्या-क्या करता है पर वह उन्माद उतरते ही उस असन्तुलित स्थिति में किये गये कुकर्मों के प्रति पश्चाताप भी कम नहीं होता।

(२) जवानी की उम्र इतनी कच्ची होती है कि उसमें पाँव बहुत जल्दी फिसल जाते हैं, अपने भविष्य के बारे में आदमी सोच नहीं पाता। मस्तिष्क अनुभवहीन होता है। दुनियाँ के ऊँचे-नीचे रास्तों में अनजाने का पर्दा पड़ा रहता है।

--प्रेमचन्द।

विष्णुभक्तान् समुद्दिश्य दुर्वाच्यं वक्ति यो नरः ॥५३॥
मुखं नैव मुखं तस्य पात्रं निष्ठीवनस्य तत् ।
भगवत्सन्निधावेव राममन्त्रस्य दीक्षया ॥५४॥
दीक्षणीयः सदा शिष्यो विरागी निश्चलोऽनघः ।
शङ्खचक्रधरोवाऽथ धनुर्बाणाङ्कनं दधत् ॥५५॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम् ।
धन्वने (२९।३९यजु०)तिजपन् मन्त्रंशार्ङ्गपाणिं च संस्मरन्
बाहोर्वामस्य मूलेतु धनुषा तापयेद् गुरुः ।
तथा 'सुवर्णमि (यजु२९।४८) त्यादि मृजीत इति चादरात्

जो विष्णु भक्तों को लक्ष्यकर दुर्वचनीय वचन कहता है उसका मुख मुख नहीं है किन्तु वह थूक का पात्र है पीकदान है ॥५३॥

भगवान् के निकट में ही श्रीरामचन्द्रजी के मन्त्र की दीक्षा से विरक्त स्थिर बुद्धि निष्पाप शिष्य को दीक्षित करना चाहिये ।५४।

शंख चक्रधारी अथवा धनुष और बाणों का चिह्नधारी सब-पापों से विनिर्मुक्त होकर परमगति प्राप्त करता है ॥५५॥

धन्वना गा धन्वनाऽऽजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम "धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम" (यजुः २९।३९) इस मन्त्र को जपता हुआ शार्ङ्ग पाणि यानी शृङ्गकृत चाप हस्त हरि को स्मरण करता हुआ शिष्य के वाम हाथ के मूल में गुरु धनुष से तप्त चिह्न करे ॥५६॥

जपन् दक्षिणमूले तु बाणाभ्यामङ्कयेत् पुनः ।
अतःपरं प्रवक्ष्यामि सन्ध्याविधिमनुत्तमम् ॥५८॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय रामनाम च संस्मरेत् ।
प्रातःकालीनमखिलं कृत्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥५९॥
मलमूत्रविसर्गाय बहिर्देशं समाश्रयेत् ।
नद्यास्तटे न कर्तव्यं मलमूत्रविसर्जनम् ॥६०॥
दन्तान् धावेन्नवा तत्र नोद्गिरेत् पित्तकं कफम् ।
प्रवाहे वा तटाके वा विशुद्धे निर्मले जले ॥६१॥

और 'सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता । यत्रा नरः संच विच द्रवन्ति तत्रास्मभ्य मिषवः शर्म यंसन्' (यजु० २९।४८), 'ऋजीते परिवृङ्घि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः। सोमो अधिब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु' (यजु० २९।४९), इन दोनों मन्त्रों का जप करते हुए गुरु फिर शिष्य के दाहिने हाथ के मूल में बाणों से शिष्य को अङ्कित करे ॥५७॥

इसके बाद अत्युत्तम सन्ध्यावन्दन विधि कहता हूं । उसे सुनें ब्राह्म मुहूर्त में उठकर रामनाम का स्मरण करें, निरालस्य होकर प्रातः कालिक सब कृत्य करे; मल और मूत्र के त्याग करने के लिए बाहर के प्रदेश में जाय ॥५९॥

नदी के किनारे में मल मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिये, और दन्तधावन भी वहां नहीं करे । और पित्त कफ वहां नदी या नदी के किनारे में नहीं फेके—थूके ॥६०॥

देहदोषनिवृत्त्यर्थं सविधिं स्नानमाचरेत् ।
सूर्यस्य दर्शनात्पूर्वं सन्ध्यां कुर्वीत सद्विजः ॥६२॥
अन्यथा कुरुते यस्तु ब्रह्महा स भवेद् ध्रुवम् ।
बहिः सन्ध्यां प्रकुर्वीत सकुशाः सकलो द्विजः ॥६३॥
अथ यत्र शुचिर्देशो यत्र स्यान्मनसः सुखम् ।
तत्रापि सन्यां कुर्वाणो नरः पुण्यपरो भवेत् ॥६४॥
सूर्यस्याभिमुखं तिष्ठन् क्षिपेत्त्रीनुदकाञ्जलीन् ।
तच्चक्षुरिति मन्त्रस्य पाठं कुर्यात्ततः परम् ॥६५॥

नदी के प्रवाह में अथवा पोखरे में उसके अभाव में विशुद्ध निर्मल जल में शरीर के दोष हटाने के लिए विधि पूर्वक स्नान करे ।६१॥

उत्तम ब्राह्मण सूर्यदर्शन से पहले सन्ध्यावन्दन करे। अन्यथा करे तो वह निश्चय ही ब्रह्मघाती होता है ॥६२॥

सब ब्राह्मण कुशासन में बैठकर बाहर में सन्ध्यावन्दन करे। बाहर में सौविध्य नहीं हो तो जहां पवित्र देश हो जहां मन को सुख हो वहां भी सन्ध्यावन्दन करनेवाला नर पुण्य का भागी होता है ॥६३॥

सूर्य के अभिमुख स्थित हो गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित तीन जलाञ्जलि सूर्य के उद्देश से फेंके। उसके बाद 'तच्चक्षुः' इत्यादि मन्त्र का पाठ करे अर्थात् इस मन्त्र से सूर्योपस्थान करे । यह मन्त्र वाजसनेयी ब्राह्मण का है ॥६५॥

सायङ्काले च सूर्येऽस्तं याति नद्यास्तटे स्थितः ।
सायं सन्ध्यामुपासीत सततं वैदिको द्विजः ॥६६॥
श्रीरामः शरणं मेति मन्त्रं सार्द्धशतं जपन् ।
सन्ध्यायाऽनन्तरं विप्रो मुच्यते सर्वकिल्विषात् ॥६७॥
वैष्णवैः सततं धार्या श्रीतुलसी द्वियष्टिका ।
तां त्यजन् पुरुषोमूढो भ्रष्टसंस्कार एव हि ॥६८॥
यस्य कण्ठे न संलग्ना वैष्णवस्य च दुर्मतेः ।
तुलसी राजते, सोऽथ नाममात्रेण वैष्णवः ॥६९॥
तस्य स्पृष्टमवन्नादि न ग्राह्यं वैष्णवैः क्वचित् ।
दूरं चाण्डालवत् त्याज्यो द्विजकर्म बहिष्कृतः ॥७०॥

सायंकाल में सूर्य के अस्ताचल जाते हुए देखकर नदी के तीर पर स्थित होकर वैदिक द्विज हमेशा सन्ध्योपासन करे ॥६६।

सन्ध्योपासन के वाद 'श्रीरामः शरणं मम' इस मन्त्र का १५० डेढ सौ वार जप करने वाला विप्र सब पाप से मुक्त हो जाता है ॥६७॥

वैष्णयों को दो छर वाली तुलसी काष्ठ की माला धारणीय है उसे छोड देने वाला त्यागने वाला मूर्ख भ्रष्टसंस्कार हो जाता है वह पुनः संस्कार करने पर ही वैष्णवत्व प्राप्त करेगा ॥६८॥

जिस दुर्बुद्धि वैष्णव के गले में तुलसी माला नहीं लगी हो वह नाममात्र से वैष्णव है ॥६९॥

अथ भोजनविधि :

भोजनस्य विधिं वक्ष्ये श्रृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।
शुद्धे च भोजनागारे स्थाने पीठासने शुभे ॥७१॥
उपविश्य सुखं धीमान् कुर्याद् भोजनमुत्तमम् ।
पादद्वयेन संस्पृश्य ह्येके नैव च वा भुवम् ॥७२॥
भुञ्जानः सर्वकल्याणं सन्ततं सोऽनुपश्यति ।
वक्त्रस्यानुगुणान् पिण्डान् भक्षयेच्च शनैःशनैः ॥७३॥
शीघ्रत्वमधि कुर्वाणो राक्षसत्वं निगच्छति ।
शयानो न हि भुञ्जीत नोत्थितोऽपि कदाचन ॥७४॥

उसके छुआ हुआ जल और अन्न आदि कदापि ग्रहण योग्य नहीं है । वह चाण्डाल सदृश दूर त्याज्य और द्विजकर्म से बहिष्कृत है ॥७०॥

भोजन विधि

हे मुनिश्रेष्ठों ! अब मैं भोजन का विधि कहूंगा उसे आप लोग सुनिये । शुद्ध भोजनालय या स्थान में अच्छे पीठासन पर सुख से बैठ कर बुद्धिमान् जन उत्तम भगवत्प्रसाद स्वच्छ पवित्र भोजन करे ॥७१॥

दोनों पावों से अथवा एक ही पाव से पृथिवी का स्पर्श कर भोजन करने वाला जो है वह हमेशा सब कल्याण का अनुभव करता है ॥७२॥

खाते समय में मुख के अनुसार कवल ग्रास धीरे-धीरे खाय खाने में शीघ्रता करने वाला राक्षसत्व प्राप्त करता है ॥७४॥

चलन्नपि न भुञ्जीत न वदन्न हसन् रुदन् ।
भुञ्जानो मौनमालम्बेद् ब्रूयाच्चेन्नाधिकं क्वचित् ॥७५॥
अत्यन्त भाषणादन्नदेवः क्रोधं समेष्यति ।
सदा भोजनकालेतु नरो हृष्टो भवेद् खलु ॥७६॥
विषीदंश्चिन्तयन् वाऽपि भोक्ता नान्नफलं लभेत् ।
यादृशी भावना यस्याशनकाले भवेदिह ॥७७॥
तादृशी तस्यवै बुद्धिर्जायते नात्र संशयः ।
ब्रह्मवर्चसकामस्तु नित्यं पूर्वमुखो भवन् ॥७८॥

सोता हुआ और खड़े होकर कभी भोजन नहीं करे । तथा चलते हुए बोलते हुए हंसते हुये भोजन न करे भोजन करते मौन धारण करे बोलना भी हो तो अधिक न बोले भोजन समय में अत्यन्त बोलने से अन्नाधिष्ठाता देव कोप प्राप्त करेगा अतः मौन रहे ॥७५॥

भोजन काल में मनुष्य को अन्न देखकर प्रसन्न अवश्य होना चाहिये क्योंकि विषाद या चिन्ता करने वाला कभी अन्न का फल नहीं पायेगा ॥७६॥

भोजन काल में जिस की जैसी भावना रहती है उसकी वैसी बुद्धि होती हैं. इसमें संशय नहीं ॥७७॥

ब्रह्मतेज का अभिलाषी हमेशा पूर्वदिशा की ओर मुहकर भोजन करे । तथा चुप होकर स्थिर हो भोजन करे ॥७८॥

वीर्य औ बुद्धि का अभिलाषी हमेशा पश्चिमदिशा की ओर

सर्वदा मौनमास्थाय ? भुञ्जीतेह मुनिश्चलः ।
वीर्यकामश्च धीकामः सततं पश्चिमाननः ॥७९॥
यशस्कामस्तु भुञ्जीत२ नित्यं धीमानुदङ् मुखः ।
ग्रासं ग्रसेच्च३ सम्पूर्णं साङ्गुष्ठांगुलिभिर्मुदा ॥८०॥
चपूचपेति न कुर्वीत न चान्यत्रावलोकयेत् ।
पर्युषितं न भोक्तव्यं विद्या वृद्धयभिलाषिभिः ॥८१॥
यातयामं गतरसं भोजनं नैव भक्षयेत् ।
घृतपक्वं पयः पक्वं शाकं दधितिलानिच ॥८२॥
मौद्गानि शुष्कवस्तूनि पर्युषितानि भक्षयेत् ।
अभक्ष्य भक्षणाज्ज्ञानात् सद्यः पतति वै द्विजः ॥८३॥

मुह कर भोजन करे । यश का अभिलाषी धीमान् हमेशा उत्तरदिशा की ओर मुखकर भोजन करे ॥७९॥

पांचों अंगुलियों से हर्ष से सम्पूर्ण ग्रास खावे, मुह से चप चप' यह शब्द नहीं करे दूसरे तरफ नहीं देखे ॥८०॥

विद्या वृद्धि का अभिलाषी जनों को वासी अन्न नहीं खाना चाहिये । और पहर बीत जाने पर नीरस भोजन नही खावे ।८१

परन्तु घृत में पकाया हुआ दूध में पका हुआ शाग दही तिल मूग का सुखा वस्तु वासी भी खावे ॥८२॥

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य द्विज ये सव अभक्ष्य भक्षण से

१. १भुञ्जीयादिह नि०मू.को०।२-भुञ्जीया..उद.मूको.।
३. ग्रसीत मू.को. लानि मू.को० ।

भक्ष्याभक्ष्यविचारेण ततो वर्तेत नित्यशः ।
संस्पृष्टं यद् भवेदन्नं लशुनेन पलाण्डुना ॥८४॥
तद् द्विजैर्नैवभोक्तव्यं सदाचारपरायणैः ।
लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुकवकानि च ॥८५॥
कृमिभिर्मक्षिकाभिश्च केशरोमनखैश्च वा ।
संस्पृष्टं नैव भोक्तव्यमन्नं क्वापि द्विजोत्तमैः ॥८६॥
गवाघ्रातं, च दृष्टं वा शुना वा सूकरेण वा ।
अवलीढं न भोक्तव्यं काक-कुकुट-मूषकैः ॥८७॥
छत्राकं च मधूकं च नारिकेलासवं तथा ।
सुरास्पृष्टं सुरापैश्च स्पृष्टमग्राह्य मेव तु ॥८८॥

तत्काल ज्ञान से गिर जाते है । इससे वे भक्ष्य और अभक्ष्यों के विचार हमेशा रखे ॥८३॥

लशुन और प्याज से स्पृष्ट जो अन्न वह सदाचार में तत्पर द्विजों का भक्षण योग्य नहीं ॥८४॥

लशुन प्याज गाजर कीडे मक्षिकाए केश लोम और कटे नखों से संस्पृष्ट अन्न द्विजश्रेष्ठों को नहीं खाना चाहिये ।८५।

गौसे सूंघा हुआ और कुत्ते सूकर से देखा हुआ वा काक कुक्कुट मूषकों से चाटा हुआ नहीं खाना चाहिये ॥८६॥

छत्राक मधूक नारियल का आसव तथा महापापी जनों से और मद्य से स्पृष्ट अन्न कभी ग्रहण योग्य नहीं है । अतः उसका सेवन कदापि न करें ॥८७॥

यदन्नमवलोक्यैव हृदि खेदो विजायते ।
तदन्नं नैव भोक्तव्यं धर्मरक्षा परायणैः ॥८९॥
आपणीयं न भुञ्जीत लवणं तैलसर्पिषी ।
गुडं च शर्करां हित्वा कदाचन हि वैष्णवैः ॥९०॥
रविवारे दिवा चाथ सप्तम्यां च दिवा निशि ।
धात्रीफलं न भोक्तव्यमायुष्कामैः कदाचन ॥९१॥
उत्पलं शणशाकं च वाटमौदुम्बरं फलम् ।
श्रेयस्कामो न ? भुञ्जीत ह्याश्वत्थं च कदाचन ॥९२॥

जिस अन्न को देखकर मन में खेद हो जाता है वह अन्न धर्मरक्षा में तत्परों को नहीं खाना चाहिये ॥८८॥

वाजार के वस्तु नही खावे केवल नमक तेल घी गुड शक्कर को छोडकर बाजार का दुसरा वस्तु वैशणवों को नहीं खाना चाहिये ॥८९॥

आयु के अभिलाषियों को रविवार के दिन में सूर्य के रहने पर और सप्तमी को रात दिन धात्री फल कभी नहीं खाना चाहिये ॥९०॥

कमल सन का शाग रास्ते पर का गुल्लर फल और पीपल का फल कल्याणार्थी कभा नहीं खावे ॥९१॥

मांस नहा खाना चाहिये, धूम्रपान नहीं करे, वैष्णव जन एकादशी तिथि में सब अन्न दूर से ही छोड दे ॥९२॥

१-१ भुञ्जीयादाश्व० भू. को० ।

मधु मांसं न भोक्तव्यं धूम्र पानं न कारयेत् ।
एकादश्यां च सर्वान्नं दूरतो वैष्णवस्त्यजेत् ॥९३॥
एतान्युक्तान्यभक्ष्याणि समासेन महर्षयः ।
इदानीं वच्मि युष्मभ्यं भावनाविषये ? कथाम् ॥९४॥
यादृशी भावना यस्य तादृशं लभते फलम् ।
सत्यमेतद्धि मन्तव्यं शङ्कालेशो न विद्यते ॥९५॥
यदि दुःखी नरोनम्रो भूत्वा भगवतः पुरः ।
शरणं याचते दीनोऽवश्यमुद्धरतीह सः ॥९६॥
एकस्य ब्रह्मपुत्रस्य सत्यामेव कथामहम् ।
श्रावयामि च तां यूयं शृणुध्वं ह्येकमानसाः ॥९७॥

हे महर्षियों ! अभक्ष्य पदार्थ संक्षेप में मैंने कहा अब आप लोगों को भावना के विषय में कहानी कहता हूं उसे सुनें ॥९३॥

जेसी भावना होती है, मनुष्य वैसा फल पता हैं । यह सत्य ही मानना चाहिये इस में शङ्का का लेश नहीं है ॥९४॥

मनुष्य यदि दुखी होकर भगवान् के सामने में शरणागति की याचना करता है तो भगवान् इस स्थिति में उसे अवस्य उस दीनता से उद्धृत किया करते है ॥९५॥

एक दीन शरणागत–ब्राह्मण–बालक की सत्य कथा मैं सुनाता हूं, वह आपलोग एक चित्त होकर सुनिये ॥९६॥

ब्रह्मपुत्रकथा

महापवित्र गोदापुर स्थान में कोई निर्धन महादीन शोक और चिन्ता से व्याकुल ब्राह्मण का लड़का था ॥९७॥

१– नास्ति मू.को.

गोदापुरे महापुण्ये स्थाने कश्चिद् द्विजाग्रजः ।
अभवन्निर्धनो दीनः शोकचिन्तातुरो महान् ॥९८॥
प्रवेत्ता सर्वशास्त्राणां धर्मतत्त्वविशारदः ।
गुणवान्रूपवान् सम्यङ् मृदुभाषी दयापरः ॥९९॥
एकदा स भ्रमन् विप्रो जीविकाहेतवे क्वचित् ।
शुश्राव कस्यचिद्राज्ञो दातुर्नाम यशस्विनः ॥१००॥
अन्विष्यन् स च तं भूपं ब्रह्मणोग्रे चचाल वै ।
दशक्रोशान् समाक्रम्य प्राप्तवांश्च निशामुखे ॥१०१॥
तस्मिन्नेव च विख्याते नगरे लोकपुरिते ।
यत्र दानी महोदारो वसन्नासीत् स भूपतिः ॥१०२॥

वह सब शास्त्रों का ज्ञाता धर्मतत्त्व के जानने में निपुण गुणी सुन्दरतर मृदुभाषी दयालु था ॥९८॥

वह विप्र एक समय में जीविका के लिये कहीं भ्रमण करता हुआ किसी यशस्वी दानी राजा का नाम सुना ॥९९॥

उस राजा का अन्वेषण करता हुआ वह ब्राह्मण आगे चला दश कोश चलकर सायं काल में ॥१००॥

उसी प्रख्यात लोगों से भरे हुए नगर में पहुचा जहां महोदार दानी वह राजा निवास करता था ॥१०१॥

रात में थका हुआ वह ब्राह्मण शोक युक्त क्षुधापीडित था तो भी किसी देवालय में सुखपूर्वक सो गया ॥१०२॥

२·२आसीन्नि मू.को

रात्रौ श्रान्तः सवै विप्रःकस्मिंश्चिदेवमन्दिरे ।
सुखं सुष्वाप शोकाढ्यःक्षुत्पीडापीडितोऽपि सः ।१०३।
प्रातरुत्थाय विप्रः स सान्ध्यं कर्म समाप्य च ।
सम्यग्रामार्चनं कृत्वा जग्राह चरणोदकम् ॥१०४॥
राजासने समासीने तस्मिन् दातरि राजनि ।
उपेयाय स तं विप्रो यद्यप्यासीद् बुभुक्षितः ॥१०५॥
आशीर्वचोभिः संवर्ध्य राजानं तमुवाच सः ।
विष्णुभक्तो महाराज विष्णवाराधनतत्परः ॥१०६॥
गोदापुरस्य विप्रोऽहं सर्वशास्त्र विशारदः ।
उत्तमे च कुले जातो भाग्यादैन्यमुपागतः ॥१०७॥

प्रातः काल में वह ब्राह्मण उठकर सन्ध्यावन्दन कर्म समाप्त कर श्रीरामजी की पूजा अच्छी तरह कर श्रीरामजी का चरणामृत लिया ॥१०३॥

यद्यपि वह ब्राह्मण भूखा था तो भी उस दानी रजा के राजासन में बैठने पर उसके पास गया ॥१०४॥

जाकर राजा को आशीर्वाद से अभिनन्दित कर उसे कहा कि हे महाराज ! मैं विष्णु भक्त विष्णु के अराधन में तत्पर ।१०५।

गोदापुर का सब शास्त्रों में निपुण ब्राह्मण हूँ अच्छे कुल में उत्पन्न हूं अभी प्रारब्ध से दरिद्रता प्राप्त हूँ ॥१०६॥

केवल दुःख भोगने के लिये जन्म लेकर भ्रमण कर रहा हूँ, हे राजन् ! आप का यश सुनकर आप की दर्शन की इच्छा से उत्कण्ठित हों ॥१०७॥

केवलं दुःखभोगाय जन्मादाय भ्रमाम्यहम् ।
श्रुत्वा तव यशो राजन् ! विह्वलस्ते दिदृक्षया ॥१०८॥
भ्रमन्नेवान्तिके राजंस्तत्रायातोऽस्मि भाग्यतः ।
पश्यामि–किं भवत्यत्र सुखं वा दुःख मेव वा ॥१०९॥
यो दत्तो नापरेभ्यश्च त्वया शीलवता नृप ! ।
तं नकारमपि प्राप्य न हृष्यामि कथं, वद ॥११०॥
दीनानामाननं द्रष्टुं जगदीशोऽपि नेच्छति ।
तद् यदि त्वमपि प्रार्थ्य प्रार्थनां न श्रृणोषि मे ।१११॥
कोऽपराधस्तवात्र स्याच्छ्रेष्ठस्य पथि गच्छतः ।
न विचार्यमिदं राजन् ! यद् वृथाऽऽगमनश्रमः ॥११२॥

घुमता हुआ हे राजन् ! आप के निकट आया हुआ हूँ । देख रहा हूँ कि यहाँ सुख होता है कि या दुख ही ॥१०८॥

हे राजन् ! शीलवान् आप ने जो दुसरों को नहीं दिया हो वह नकार भी पाकर क्या मैं प्रसन्न नहीं हो रहा हूँ , आप कहिये ॥१०९॥

गरीबों का मुख जगदीश भी देखने की इच्छा नहीं करते हैं, इसी कारण से आप भी प्रार्थित होकर भी मेरी प्रार्थना नहीं सुनते हैं ॥११०॥

श्रेष्ठजन के मार्ग पर चलनेवाले आप का कौन अपराध (दोष) है अतः हे राजन् ! आप को यह नहीं विचारना चाहिये कि मेरा यहाँ आगमन श्रम व्यर्थ हो गया ॥१११॥

त्वादृशानां परं पुण्यं दर्शनं प्रददाति ह [मे] ।

धनं द्विधेत्येकमुदर्यमुच्यते
भवादृशां दर्शनमेव चापरम् ।
अभून्न लब्धं यदि चादिमं ततः
कथं भवेदूनमिदं वदान्तिमम् ॥११३॥

येन ते पुण्यपुञ्जेन देहः पुण्यमयस्तव ।
पुण्यात्मना कृतो धात्रा कस्तद्वर्णयितुं क्षमः ॥११४॥

त्वद्धनं त्वद्धनज्ञानं त्वत्तेजस्त्वत्तपो नृप ! ।
अशेषं शेषराजोऽपि वक्तुं शक्नोति न क्वचित् ॥११५॥

क्योंकि आप के ऐसे पुरुषों का दर्शन परम पुण्य दायी हुआ करता है ॥११२॥

धन दो प्रकार का होता है, एक उदर यानी पेट का हित करनेवाला कहा जाता है, दूसरा आपके ऐसे पुरुषों का दर्शन ही धन है। पहला धन यदि प्राप्त नहीं हुआ तो अन्तिम धन यानी आप का दर्शन रूप धन यह अल्प कैसे होगा ॥११३॥

जिस पुण्यसमूह से आपका शरीर पुण्यमय पुण्यात्मा विधाता ने रचा है उसका वर्णन करने के लिये कौन समर्थ हो सकता है ॥११४॥

आपका धन आपका निवीड ज्ञान आपका तेज आपका तप का वर्णन समस्त रूप से दो हजार जीभवाला शेषनागराज भी कभी नहीं कर सकता है ॥११५॥

यत्र तत्र तु वारीणि ददात्येव हि वारिदः ।
चेच्चातकमुखे विन्दु नागाद्दोषो घनस्यकः ॥११६॥
पिपासितो जलाधारं धूमं दृष्ट्वा बुभुक्षितः ।
दृष्ट्वा राजानमायान्ति प्रजा दैन्यनिवारकम् ॥११७॥
इत्येवाऽऽगतवानस्मि राजंस्ते सन्निधावहम् ।
यथोचितं प्रतीयेत क्रियतां शीघ्रमेव तत् ॥११८॥
वासराणि व्यतीतानि पञ्चमेऽनश्नतः किल ।
ततो न स्थातुमीशोऽहं पीडितो हि बुभुक्षया ॥११९॥

बादल अवश्य जहां तहां पानी देता है, वह जल यदि चातक पक्षी के मुह में नहीं गया तो मेघ का क्या दोष है? ॥११६॥

पिपासित जलधार को देखकर बुभक्षित धुआं देखकर तथा दुःखी प्रजा दैन्य निवारक राजा को देख उन उन उद्देश्य सिद्धि के लिए वहां वहां जाते हैं। ॥११७॥

इसी कारण से हे राजन्! मैं आपके पास आया हुआ हूं। जो आपको उचित माल्लम हो सो जल्दी ही-कीजिये ॥११८॥

विना खाये मुझे पांच दिन वीत गये अतः निश्चय रूप से मैं खड़ा होने में असमर्थ हूँ भूख से पीडीत होने से ॥११९॥

ब्राह्मण का वचन सुन कर राजा कुछ नहीं बोला। उसके बाद वह ब्राह्मण शीघ्र लौटकर श्रीरामजी के मन्दिर में आ गया ॥१२०॥

ब्राह्मणस्य वचःश्रुत्वा किञ्चिन्नोवाच भूपतिः ।
ततः प्रत्याजगामाऽऽशु स विप्रो राममन्दिरम् ॥१२०॥
तत्र गत्वा महादीनो विषण्ण वदनो द्विजः ।
अञ्जलिं मस्तके न्यस्य रुदन्नेव पपात सः ।
उवाच वचनं चेदं ह्यवरुद्धगलोऽपि सः ॥१२१॥

रे देव ! पापाधम चिन्त्यतेऽद्य
लाभः स्वकीयो वद मे वधे कः ? ।
लाभोऽपि चेदस्तु वधे द्विजस्य
पापं महन्मूढ ! न पश्यसि त्वम् ॥१२२॥
किं तेऽपराद्धं भ्रमतोऽपि तथ्यं
वदंति साक्ष्यं दददात्मनस्त्वम् ।
येन प्रकोपोऽस्ति मयि त्वदीयो
ज्वलन्महाकालविवृद्धवह्निः ॥१२३॥

वहां जाकर बड़ा गरीब मलीन मुंह वाला वह ब्राह्मण शिर पर अञ्जलि रखकर रोता हुआ गिर पड़ा। अवरुद्ध गला वाला भी वह यह वचन कहने लगा कि—॥१२१॥

रे प्रारब्ध ! पापाधम ! तूं मेरे वध में कौन सा लाभ विचार रहा है ? यदि लाभ भी हैं तो रे मूढ ब्राह्मण के वध में बड़ा पाप है यह तुम नहीं देखते हो ॥१२२॥

मैंने भ्रम से भी तेरा कौन सा अपराध किया, यह तुम आत्मा को गवाही देते हुए सत्य कहो जिस से महाकाल में अर्थात् प्रलय समय में धधकती हुई बढ़ी आग सा तेरा प्रकोप मुझ पर है ॥१२३॥

हा राम ! रामोऽसि यदि त्वमद्य
प्राणान् गृहीत्वा मम पञ्च नीचान् ।
एकं तु मृत्युं कृपया प्रयच्छ
त्वदीयमौदार्यमिति प्रसिद्धम् ॥१२४॥
हे जानकि ! त्वं जननी मदीया
सदाऽम्ब ! धत्से हृदि वत्सलत्वम् ।
अतस्तवाग्रेऽपि तथैव याचे
प्रदेहि मे मृत्युमिहैव मातः ! ॥१२५
एवं च विह्वलं दृष्ट्वा स्वभक्तं भक्तवत्सलः ।
बालरूपं समादाय प्रादुर्भूतो महाप्रभुः ॥१२६॥

हा रामजी ! यदि आप राम हैं तो आज मेरे पांच प्राण अर्थात् प्राण अपान व्यान उदान और समान इन नीचों को लेकर एक मृत्यु मुझे कृपाकर के दीजिये क्योंकि आपकी प्रख्यात उदारता जग प्रसिद्ध है ॥१२४॥

हे जानकी जी मातः ! आप मेरी माता हैं आप अपने हृदय में हमेशा वत्सल भाव रखती हैं, इस हेतु से हे मातः आपके सामने में भी उसी प्रकार का मांग करता हूं कि यहीं पर मुझे मृत्यु दीजिये ॥१२५॥

भक्त वत्सल श्रीरामजी अपने भक्त को इस प्रकार दुःखी देखकर बालरूप लेकर प्रकट हुए। ॥१२६॥

माता च जानकी तत्र दिव्यरूपधराऽनघा ।
नितरां करुणामूर्तिराविर्भूता महेश्वरी ॥१२७॥
उत्थाप्याशु च तं दीनं पतितं भुवि विह्वलम् ।
उरसा योजयामास भगवान् भक्तभावनः ॥१२८॥
माता च जानकी तत्र पतितं तमनाथवत् ।
तोषयामास सदया शिरस्याघ्राय तं पुनः ॥१२९॥
उवाच भगवांस्तत्र वत्स ! ब्रूहि किमिच्छसि ।
किमर्थं शोचसेनित्यं भक्तो भूत्वा मम प्रियः ॥१३०॥
सततं त्वामहं वत्स ! संस्मरामि क्षणे क्षणे ।
क्षणमेकमपि प्रेष्ठ ! त्वां विनाऽहं न जानकी ॥१३१॥

पृथिवी पर पड़े हुए उस दीन दुःखी विप्र को उठा कर भक्तभावन भगवान् श्रीमान् रामजी छाती से लगाए ॥१२७॥

दयामयी माता श्रीजानकीजी ने भी वहां अनाथवत् पड़े हुए उस विप्र को शिर में सूंघ कर सन्तुष्ट किया ॥१२८॥

वहां भगवान् श्रीरामजी ने कहा-कि=हे वत्स ! कहो तुम क्या चाहते हो तुं मेरा प्रिय भक्त होकर सर्वदा किस लिये क्या सोचते हो ? १२९॥

हे अतिप्रिय ? वत्स ? तुझे मैं हमेशा प्रतिक्षण याद किया करता हू, तुम्हारे विना मै और जानकीजी एकक्षण भी नहीं रहते हैं। केवल तेरी परीक्षा के लिये मैंने ऐसा किया है प्रिय ! कहो हे यिय? कहो हे वत्स ! कहो कि-तुम क्या ? चाहते हो ! ॥

केवलं ते परीक्षाया इदंव्यापारवानहम् ।
ब्रूहि प्रिय ! प्रिय ! ब्रूहि वत्स ! ब्रूहि किमिच्छसि ।१३२।
वक्तव्यं किं न वक्तव्यं किन्तु कर्तव्यमित्यलम् ।
तदानीं तस्य विप्रस्य नाऽऽसीज्ज्ञानं किमप्यथ ।१३३।
ययोरजः कणं प्राप्तुं तपन्ति परमं तपः ।
ऋषयो मुनयश्चैव देवा देवपतिश्च, तौ ॥१३४॥
प्रेमाश्रुभिः प्रभोः पादौ क्षालयन् ब्राह्मणः स च ।
आनन्दाम्बुनिधौ मग्नः पादयोर्हि लुलोठ सः ।१३५।
दीनबन्धुर्जगन्नाथो भगवान् भक्तभावनः ।
बलादुत्थाप्य तं दासमुरसाऽऽश्लिष्य स प्रभुः ॥१३६॥

कहने योग्य क्या नहीं कहना चाहिये ? क्या तुझे पर्याप्त कर्तव्य है ? उस काल में उस ब्राह्मण को कोई ज्ञान नहीं था ॥

जिन श्रीसीतारामजी के चरणकमल के रजःकण पाने के लिये ऋषियों और मुनियों तथा ब्रह्मादिदेव परम तप किया करते हैं ॥ ॥१३३॥

प्रभु के उन चरणों को प्रेम के आंसुओं से प्रक्षालित करता हुआ वह ब्राह्मण आनन्द समुद्र में डुबा हुआ चरणों पर लोटने लगा ॥१३४॥

दीनबन्धु जगन्नाथ भक्तभावन भगवान् श्रीरामजी उस ब्राह्मण को बल से उठा कर छाती से आलिङ्गत कर ॥१३५॥

मधुराक्षर मधुर वचन कहने लगे कि-हे वत्स ! तूं सब शोक छोड़ दे, फिर तुम अपने घर जाओ ॥१३६॥

उवाच वचनं चेदं मधुरं मधुराक्षरम् ।
शोकं जहाहि सकलं वत्स: गच्छ गृहं पुनः ॥१३७॥
सकलैव च सम्पत्तिवर्तते ते गृहेऽधुना ।
गत्वा तत्र सुखेनैव तिष्ठ त्वं यावदिच्छसि ॥१३८॥
ततः परं परतरं मदीयं लोकमाप्स्यसि ।
गत्वाऽधुना गृहं तात ! वचो मे परिपालय ॥१३९॥
सोऽपि द्विजवरः शीघ्रमुत्थायाकुलमानसः ।
साष्टाङ्गं प्रणिपत्याथ स्वाञ्जलिं न्यस्य मस्तके ॥१४०॥
प्रार्थयामास धर्मात्मा धर्ममूर्तिं जगत्पतिम् ।
हे हे नाथ ! कृपासिन्धो ! भव दुःख निवारक ! ।१४१।

तेरे घर में सभी सभी सम्पत्तियां हैं। वहाँ जाकर सुखसे रहो जितने दिन रहने चाहते हो ॥१३७॥

उस के वाद तुम मेरे परमोत्कृष्ट साकेत लोक को प्राप्त करोगे। हे तात ? इस समय में तुम घर जाओ, मेरा वचन परिपालित करो। ॥१३८॥

वह ब्राह्मण भी जल्दी उठकर व्याकुलचित्त भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम कर शिर पर अपना अञ्जलि रखकर ॥१३९॥

धर्मात्मा विप्र धर्ममूर्ति जगन्नाथ श्रीरामजी की प्रार्थना करने लगा। कि—हे हे नाथ ! कृपा सागर ? भक्तों के दुःख निवारक ? ॥१४०॥

हे प्रभो ! मैं शोक रूप वह्नि से जलाया जाता हुआ क्या करना चाहिये ज्ञान न होने से इस विचार में मूड हूं हे प्रभो आप ही

किं कर्तव्यविमूढोऽहं दह्यमानः शुगग्निना ।
शोकसागरनिर्मग्न उद्धृतोऽस्मि त्वया प्रभो ! ।१४२।

परमन्यदिदं याचे तत् पूरय कृपानिधे ! ।
प्रत्यहं वर्धतां नाथ भक्तिर्मे तव पादयोः ॥१४३॥

तव भक्तिं विना नाथ ! जगन्नाथ ! दयानिधे !
क्षणमेकं न तिष्ठामि यथा, कुरु तथा प्रभो ! ॥१४४॥

कृपामूर्ते ! महादेवि ! जगन्मातर्महेश्वरि ! ।
तवाग्रेऽप्येतदेवाहं प्रार्थये भक्तवत्सले ॥१४५॥

शोक सागर में डुबे मुझे उपर करने वाले हैं अर्थात् उद्धार करने वाले है ॥१४१॥

हे कृपा सागर आप से मैं यह मांगता हूं कि-आप के चरणों में मेरी भक्ति दिनानुदिन बडे ॥१४२॥

हे जगन्नाथ ? दयासागर ? जिस प्रकार से आप की भक्ति विना मैं क्षणमात्र भी न रहूं उस प्रकार हे प्रभो ? आप कृपा कीजिये ॥१४३॥

हे कृपामूर्ति महादेवि महेश्वरि ? भक्तवत्सले श्रीजानकीजी ? आपके सामने में भी यही मांगता हूं ॥१४४॥

देवाधिदेव उन दोनों श्रीसीतारामजी का आशीर्वाद पाकर वह विप्र प्रेमाश्रुपूर्णनेत्र हो वारवार प्रणाम करने लगा ॥१४५॥

अशीर्वचनमादाय तयोर्देवातिदेवयोः ।
प्रेमाश्रुपूर्णनयनः प्रणनाम पुनः पुनः ॥१४६॥
सर्वथाऽऽश्वास्य तं दासं प्रत्यहं स्वस्य दर्शनम् ।
प्रतिज्ञाय महाराजः सश्रीसीतस्तिरोदधे ॥१४७॥
एवं च भावनागम्यो भगवानृषयः ! सदा ।
भक्तरक्षा विधानाय सचेष्टः किल वर्तते ॥१४८॥
अनन्यश्रद्धया रामं भजन्तं मानुषं सदा ।
भजते रामचन्द्रोऽपि कृपासिन्धुः कृपामयः ।१४९।
तस्माद्विशुद्धभावेन स्मर्तव्यः स परः पुमान् ।
तथा च ध्यायतां पुंसां सकला ऋद्धिसिद्धयः ।१५०।

उस ब्राह्मण को सब प्रकार से आश्वासित कर श्रीसीता सहित अपना दर्शन प्रतिदिन उसे देने का प्रतिज्ञा कर अन्तर्हित हो गये ॥१४६॥

हे ऋषियों ! इस प्रकार के भगवान् भावनागम्य यानी भावना से प्राप्य हैं, वे भक्तों का रक्षा करने के लिये सर्वदा सचेष्ट रहते हैं ॥१४७॥

अनन्य श्रद्धा से श्रीरामजी को हमेशा भजने वाले मनुष्य की सेवा कृपा सागर कृपामय श्रीरामभद्रजी भी किया करते है ॥१४९॥

इस हेतु से भी विशुद्ध भाव से परमपुरुष श्रीरामजी सर्वदा स्मरणीय हैं । और विशुद्धभाव से चिन्तन कर ने वाले पुरुषों को सब ऋद्धि सिद्धियाँ हो जाया करती हैं ॥१५०॥

जन्ममृत्यू न बाधेते स्मरतः पुरुषं परम् ।
तस्मात्प्रत्यहमुत्थाय तत्परो वैष्णवो भवेत् ।१५१।
श्रवणं मननं चापि निदिध्यासनमेव च ।
दर्शनं स्पर्शनं चैव क्रमेणासञ्जनं तथा ।१५२।
धर्मार्थमोक्षलिप्सूनां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
पुरुषार्थप्रदा एते सोपानाः षट् प्रकीर्तिताः ।१५३।
एकान्ते च नदीतीरे ह्यथवा शून्यमन्दिरे ।
रामं राजीवपत्राक्षमेकाकी सर्वदा स्मरेत् ।१५४।

परम पुरुष श्रीरामजी का स्मरण भजन करने वाले जनों को जन्म और मरण बाधित नहीं करते हैं। अतः वैष्णव प्रातः काल में उठकर श्रीरामचिन्तन में तत्पर हो जायें जिन्हे मुक्ति की इच्छा हो ॥१५१॥

श्रवण मनन निदिध्यासन दर्शन स्पर्शन और आसक्ति ये क्रम से धर्म अर्थ और मोक्ष के अभिलाषियों को और यतियों के तथा ब्रह्मचारियों के ए पुरुषार्थप्रद छ सोपान कहे गये है। १५२॥

एकान्त में नदियों के तट पर अथवा शून्य घर में नर कमल-लोचन श्रीरामजी को हमेशा स्मरण ध्यान किया करे ॥१५३॥

मोक्ष के अभिलाषी और भोग के अभिलाषी जन जो हैं, वे उन्हीको अनन्य बुद्धि हो भजते है। उन्ही परात्पर पुरुष श्रीरामजी की उपासना कर ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं ॥१५५॥

विमुक्तिकामा अपि मुक्तिकामा
स्तमेव तेऽनन्यधियो भजन्ति ।
उपास्य तं चैव परं पुमांसं
परात्परं ब्रह्म पदं व्रजन्ति ॥१५५॥

इति श्रीपाञ्चरात्रे श्रीवाल्मीकि संहितायां
प्रकीर्णविषयनिरूपणं नाम
षष्ठोऽध्यायः॥६॥

इति श्रीपाञ्चरात्रे श्रीवाल्मीकिसंहितायां प्रकीर्णविषयनिरूपणात्मकस्य षष्ठाध्यायस्य श्रीमद्वारका स्थपश्चिमाम्नायश्रीरामानन्दपीठाधीश जगदगुरुश्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नचार्ययोगीन्द्र कृपापात्र, स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्यकृताप्रकाशाख्या हिन्दी व्याख्या ॥६॥

धावतः स्खलनं क्वापि जायते हि प्रमादिनः ।
विहसन्ति खलास्तत्र समादधति साधवः ॥१॥

श्रीशेषमठ दि० २६।५-१९८२ ई० ६८२ श्रीरामानन्दाब्द

श्रीरामः शरणं ममः

जगद्गुरु श्रीरामनन्दाचार्यपीठों में नित्य अनुष्ठीयमाना
पश्चिमान्नाय श्रीरामनन्दपीठाधीश्वर स्वामी रामेश्वरा
नन्दाचार्य कृता प्रकाश हिन्दी टीका संहिता

सायंकालिकस्तुति

जय देव ! जय देव ! जय राम स्वामीन् !
तारय भवजलमग्नं शुभकरुणाशालिन् !
कलये त्वां सुखरूपं श्रितमानुषरूपम्,
व्याप्तं चिदचिद्रूपं कोसलपुरभूपम् ॥१॥

अन्वयः—देव ! स्वामिन् ! देव ! जय जय जय, शुभकरुणाशालिन् ! भवजलभग्नम तारय । सुखरूपम् श्रितमानुषरूपम्, व्याप्तंचिदचिद्रूपं कोसलपुरभूपम् त्वाम् कलये ॥१॥

प्रकाश :—हे देव ! आत्मा में रमण करनेवाले श्रीरामरूप प्रभो आप सबसे उत्कृष्ट रूप से विराजे हैं अतः आपकी जय हो जय हो जय हो हे कल्याण स्वरूप करुणावाले ! प्रभो भवरूप पानी में डुबे हुए अस्मदादिजन को तारिये भवसागर से ऊपर कीजिए आनन्दस्वरूप मनुष्यरूप का धारण करनेवाले तथा चित् और अचित स्वरूप जगत् को व्याप्तकर रहनेवाले कोशलपुर के अधिपति आपका मैं अवलम्बन अर्थात् भजन करता हूं ॥१॥

हतमुनिजायाशापं दैत्यान्वयतापम्,
वन्देऽभक्तदुरापं खण्डितशिवचापम् ॥२॥
जनकतनूजाकान्तं ज्ञापकवेदान्तम्,
नौमितमेव नितान्तं भक्त्या हृदिभान्तम् ॥३॥

अन्वयः—हतमुनिजायाशापम् अभक्तदुरापम् खण्डितशिव

चापम् । जनकतनूजाकान्तम् ज्ञापकवेदान्तम भक्त्या हृदि भान्तम् वन्दे तम एव नितान्तम् नौमि ॥२॥३॥

प्रकाश–गौतममुनि के अहल्यानाम की स्त्री का प्रस्तर होने का शाप को हरनेवाले राक्षसकुल को सतानेबाले भक्तिरहित जनों से दुर्लभ श्रीशिवजी के धनुष का खण्डन करनेवाले श्री जानकीजी के स्वामी ज्ञानजनक वेदान्त उपनिषन्प्रमाण :वाले यानी वेदान्तवेद्य भक्ति से हृदय में प्रकाशमान होनेवाले आपका वन्दन करता हूँ, और उन्हीं आपकी सर्वदा स्तुति करता हूँ ॥२॥३॥

नीलपयोदशरीरं परिहितमुनिचीरम्,
त्रिभुवनजयिनं वीरं नमामि रणधीरम् ॥४॥
रघुकुलकैरवचन्द्रं शुद्धं गततन्द्रम्,
दशमुखहस्तिमृगेन्द्रम् प्रणमितदेवेन्द्रम् ॥५॥

अन्वयः–नीलपयोदशरीरम् परिहितमुनिचीरम् त्रिभुवनजयिनम् वीरम् रणधीरम् रघुकुलकैरवचन्द्रम् शुद्धम् गततन्द्रम् दशमुखहस्तिमृगेन्द्रम् नमामि ॥४॥५॥

प्रकाशः–श्यामवर्ण मेघ के समान श्यामवर्णदेहवाले मुनियों का वल्कल वस्त्र पहनने वाले तीन जगतों को जीतनेवाले वीर युद्ध में अपराजित धीर रघुवंशरूप कुमुद को विकसित करने में चन्द्र के तुल्य अति निर्मल आलस्यरहित देवराज से प्रणमित यानी देवराज इन्द्र को अपने चरणकमलों में प्रणाम करवाने वाले रावणरूप हाथी के वध में सिहसमान श्रीरामजीका मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ ॥४॥५॥

सर्वामङ्गलहरणं भवसागरतरणम्,
प्रणतस्यैकं शरणं स्मरामि ते चरणम् ॥६॥

मदनमनोहरवेषं कुञ्चितमृदुकेशम्,
नित्यविभूति महेशं लीलारसिकेशम् ॥७॥

अन्वयः—सर्वामङ्गलहरणम् भवसागरतरणम् प्रणतस्य एकम् शरणम् ते चरणम् प्रपद्ये तथा मदनमनोहरवेषम् कुंचितमृदुकेषम् नित्यविभूतिमहेशम् लीलारसिकेशम् श्रीरामम् स्मरामि ॥६॥७॥

प्रकाश—सब संकटों के विनाश का साधन यानी सर्व अमंगल को हरण करनेवाले संसार रूप समुद्र से तरने का पार जाने का साधन प्रणत जनका प्रधान रक्षक एक मात्र शरण्य श्रीरामजी की शरणागति स्वीकार करता हूं अर्थात् उनके चरणों को मैं स्मरण किया करता हूँ। कामदेव के समान सुन्दर वेष वाले कुटिल (टेढे) कोमल वालवाले नित्य हमेशा रहने वाली विभूति (ऐश्वर्य) वाले सर्वेश्वर सबके बडे प्रभु लीला के रसिकों (आस्वादकों) में श्रेष्ठ श्रीरामजी को स्मरण किया करता हूँ ॥६॥७॥

सरयूपुलिनविहारं निखिलश्रुतिसारम् ।
'रघुवर' हृदयाऽऽधारं वन्दे गुणपारम् ॥८॥

अन्वय :—सरयूपुलिनविहारम् निखिलश्रुतिसारम 'रघुवर' हृदयाधारम् गुणापारम् वन्दे।

प्रकाशः—सरयू नदी के किनारे पर भ्रमण करनेवाले सब-वेदों के सार (दृढांश) भूत जगद्गुरु श्रीरघुवराचार्यजीके हृदय के आधार (आश्रय) (अवलम्ब) प्राकृत गुणों का अतिक्रमण करनेवाले दिव्य गुणयुक्त श्रीरामजी का मैं सर्वदा वन्धन करता हूँ ॥८॥

जय राम ! दिव्यगुणाकर ! प्रणमामि ते चरणाम्बुजम्,
कमलासनाद्यमरेशवन्दितमन्वहं नतभूभुजम् ।

अनुभावयामि भवन्तमेकमनन्तमेव हतद्विषम्,
अवधीरिताखिलवीरशक्तिमनीकधीरमकल्मषम् ॥१॥

अन्वयः–दिव्यगुणाऽऽकर ! राम ! जय कमलासनाद्यमरेश-वन्दितम् नतभूभुजम् ते चरणाम्बुजम् प्रणमामि । हतद्विषम् अवधीरिताखिलवीरशक्तिम् अनीकधीरम् अकल्मषम् अनन्तम् एकम् भवन्तम् एव अनुभावयामि ॥१॥

प्रकाश–हे दिव्यगुणों का आकर ! (खान) उत्पत्तिस्थान) श्रीराम जी आपकी जय हो ब्रह्मा आदि देव श्रेष्ठों से वन्दित सब भूपालों से नमस्कृत आपके चरणकमल को मैं प्रतिदिन प्रणाम करता हूँ । सब शत्रुओं को मारनेवाले सब वीरों के शक्तियों का अनादर करनेवाले रणभूमि में धीर स्थिर रहनेवाले पापरहित (निर्मल) अनन्त (अन्तरहित) रूप से रहनेवाले एकतात्र आपको ही अनुभव विषय करता हूँ अर्थात् सर्वदा आपका स्मरण किया करता हूं ॥१॥

भवजन्मपालनभङ्गलीलमभङ्गशीलमहर्दिवम्,
रघुनायकं धृतसायकं कलयेऽकलं करुणार्णवम् ।
जनकाङ्गजावदनारविन्दमिलिन्दमम्बुदरुग्धरम्,
कमनीयमूर्तिमनङ्गमोहनमाश्रये तडिदम्बरम् ॥२॥

अन्वयः–भवजन्मपालनभङ्गलीलम् अभंगशीलम् धृतसायकम् अकलम् करुणार्णवम् रघुनायकम् अहर्दिवम् कलये । जनकाङ्गजावदनारविन्दमिलिन्दम् अम्बुदरुग्धरम् कमनीयमूर्तिम् अनंगमोहनम् तडिदम्बरम् आश्रये ॥२॥

प्रकाश :–संसार के प्रादुर्भाव सृष्टि पालन लयों से लीला

(क्रीडा) करनेवाले नाशरहित शीलवाले धनुष का धारण करनेवाले निष्कल कलंकरहित करुणा के समुद्र रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीरामजी को प्रतिदिन मनमें धारण किया करता हूं और श्री जानकीजी के मुखरूप कमल में भ्रमररूप मेघ के समान श्यामवर्णकान्ति का धारण करनेवाले सुन्दर मूर्तिवाले कामदेव को मुग्ध करनेवाले बिजली के समान पीतवर्णवस्त्रवाले श्रीरामजी का अवलम्बन करता हूं अर्थात् श्रीरामजी का शरण होता हूं ॥२॥

जयदेवि ! मैथिलि ! तेऽङ्घ्रिपङ्कजमाश्रये नतकामदम्,
भवतापनाशनमात्मदर्शनमन्वहं जनमुक्तिदम् ।
करुणाद्यनन्तगुणान्विते ! सुमनोनुते ! करुणादृशम्,
प्रविधाय दीनजनं भवाम्बुधिमग्नमुद्धर मादृशम् ॥३॥

अन्वय :—करुणाद्यनन्तगुणान्विते ! सुमनोनुते ! मैथिलि-देवि ! जय नतकामदम् भवतापनाशनम् आत्मदर्शनम् जनमुक्ति-दम् ते अङ्घ्रिपङ्कजम् आश्रये करुणादृशम् प्रविधाय भवाम्बुधिम-ग्नम् मादृशम् दीनजनम् उद्धर ॥३॥

प्रकाश :—करुणा आदि अनन्त अन्तरहित गुणों से युक्त देवों से स्तुत हे श्री जानकी देवि ! आप सबसे उत्कृष्ट होकर विराजें, अपने भक्तजनों के अभीष्टदायक भवतापों का नाशक आत्मा के साक्षात्कार का साधन अपने भक्तजनों को मोक्षदायक आपके श्री चरणकमलों का मैं अवलम्बन करता हूं अर्थात् आपकी शरणागति स्वीकार करता हूं आप अपनी प्रकृष्ट कृपा दृष्टि कर संसार सागर में डुबे हुए मेरे समान दीनजन को संसार से उद्धृत कीजिये ॥३॥

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं,
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल-भवाब्धिपोतं
वन्देमहापुरुष ते चरणारविन्दम् (भा. ११-५,३३) ॥१॥

अन्वय :—हे महापुरुष ! सदाध्येयम् परिभवघ्नम् अभीष्ट-दोहम् तीर्थास्पदम् शिवविरिञ्चिनुतम् शरण्यम् भृत्यार्तिहम् प्रणत-पाल-भवाब्धिपोतम ते चरणारविन्दम् वन्दे ॥१॥

प्रकाश :—हे श्रेष्ठपुरुष सर्वेश्वर श्रीराम ! हमेशा ध्यान-योग्य परिभव (अनादर) नाशक या संसारजालनाशक अभिलषित पूर्ण करनेवाले तीर्थों का स्थान श्री शिवजी और ब्रह्माजी से स्तुत शरण्य रक्षकों में अच्छे शरणागत दासो की पीड़ा दूरकरने वाले प्रणत जनों की रक्षा करनेवाले संसार रूप समुद्र में नौका रूप आपके चरणरूप कमल का वन्दन करता हूँ ॥१॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सितराज्यलक्ष्मी
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥२॥

अन्वय:-- धर्मिष्ठ ? आर्यवचसा सुदुस्त्यजसुरेप्सित राज्य-लक्ष्मीम् त्यक्त्वा यत् अरण्यम् अगात् (तत्र) दयितया ईप्सितम् मायामृगम् अन्वधावत् महापुरुष ? ते चरणारविन्दम् वन्दे ॥२॥

प्रकाश:— अत्यन्त धार्मिक धर्मस्वरूप हे श्रीराम जी ? आर्य श्रेष्ठ पिता के वचन से अत्यन्त दुस्त्यज देवों से अभिलषित राज्य लक्ष्मी को छोड़कर जिस वन में गये, वहां प्रिया श्रीसीताजी से

अभिलषित कपटहरिण के पीछे दौडे; ऐसे हे महापुरुष ? सर्वेश्वर श्रीराम जी ? आपके चरण कमल का मैं सर्वदा वन्दन करता हूं।

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनाऽपि,
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट
पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥३॥

अन्वयः— ऋषयः यस्य अमलम् अघघ्नम् दिगिभेन्द्रपट्टम् यशः नृपसदस्सु अधुना अपि गायन्ति तम् नाकपाल वसुपाल किरीटजुष्टपादाम्बुजम् रघुपतिम् शरणम् प्रपद्ये ॥३॥

प्रकाशः— ऋषिलोग जिनका निर्मल पापनाशक दिशा गजों के भालपट्टों तक अंकित होकर समस्त विश्व को सुभ्र कर देनेवाला यश युधिष्ठिरादि राज सभाओं में अभी भी गारहे हैं, उन प्रधान देव इन्द्र और कुबेरादि पृथिवि के राजाओं के मुकुटों से सेवित चरण कमलवाले सर्व रक्षक रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम जी का प्रपन्न होता हूं अर्थात् उनकी शरणागति स्वीकार करता हूं ॥३॥

वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं,
कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तं
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं
सन्मानसालिपरिपीतपरागपुञ्जम् ॥४॥

अन्वय :—कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तम् मुनिहंससेव्यम् सन्मानसालिपरिपीतपरागपुञ्जम् विदेहतनयापदपुण्डरीकम् त्रितापम् हन्तुम् वन्दे ॥४॥

प्रकाश :—किशोरत्व रूप सुन्दरगन्ध से योगियों का मन हरनेवाले मुनिहंसों से श्रेष्ठ मुनियों से सेवनीय सज्जनो के हृदय

रूप भौंरो से अच्छी तरह से पीये हुए पराग पुष्परस समूहवाले श्रीजानकीजी के चरणरूप कमल का दैहिक दैविक भौतिक भेद से तीन प्रकार के तापों का नाश करने के लिये मैं सर्वदा वन्दन करता हूँ ॥४॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥५॥

प्रकाशः—मन के जव वेग के समान वेगवाले वायु के समान वेगवाले इन्द्रियो को जीतनेवाले बुद्धिशालियों में अत्यन्त श्रेष्ठ वायु के पुत्र वन्दरों के सेना झुण्डों में प्रधान सर्वेश्वर श्री रामजी के दूत का मस्तक से नमस्कार करता हूं ॥५॥

त्वत्पादाम्बुरुहप्रीतिं (स) त्वज्जनानांच सङ्गतिम् ।
देहिराम ! कृपासिन्धो ! मह्यं जन्मनि जन्मनि ॥६॥

अन्वय :—कृपासिन्धो ! राम ! मह्यम् जन्मनि जन्मनि त्वत्पादाम्बुरुहप्रीतिम् स (त्व) ज्जनानाम् सङ्गतिम् च देहि ॥६॥

प्रकाश :—हे दयासागर ! श्रीरामजी ! मुझे हर एक जन्म में आपके चरण कमल में प्रीति और सज्जनो की वा आपके भक्तजनों की सङ्गति दीजिये आपसे और कुछ नहीं चाहिये ॥६॥

सीताकान्तसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम् ॥७॥

अन्वय :—सीताकान्तसमारम्भां रामानन्दाचार्य मध्यमाम् अस्मदाचार्यपर्यन्तां गुरुपरम्पराम वन्दे ॥७॥

श्रीरामजी से शुरू कर मध्य में जगद्‌गुरु श्री रामानन्दाचार्य के साथ हमारे आचार्य तक सर्व आचार्य समूहो का सर्वदा वन्दन करता हूँ ॥७॥

जगदगुरु श्री रामानन्दाचार्य पीठों के उत्सवः

१. श्रीरामनवमी चैत्रशुक्ल-९ गुरुवार दि. २१-४.८३
२. श्रीसीतानवमी वैशाखशुक्ल. ९. शुक्रवार दि. २०।५।८३
३. गुरु पूर्णिमा आसाढ शुक्ल १५ रविवार दि. २४।७।८३
४. श्रीतुलसीदास जयन्ती श्रावण शु. ७ रविवार दि. १४।८।८३
५. स्वतन्त्रता दिन सोमवार दि. १५।८।८३
६. श्रावणी (संस्कृत दिन) श्रावण शु. १५. मंगलवार दि. २३।८।८३
७. श्रीकृष्णजन्माष्टमी भाद्रपद शु. ८ बुधवार दिनांक ३१। ८। ८३
८. विजयादशमी आश्विन शुक्ल-१० रविवार दि. १६। १०। ८३
ज. गु. श्रीरघुवराचार्य जयन्ती
९. शरत्पूर्णिमा आश्विनशु. १५ शुक्रवार दि. २१।१०।८३
१०. श्रीहनुमज्जयन्ती कार्तिक कृष्ण १४ गुरुवार दि. ३।११।८३
११. दीपावली कार्तिक कृष्ण ३० शुक्रवार दि. ४।११।८३
१२. अन्नकूट कार्तिक शुक्ल-१ शनिवार दि. ५।११।८३
१३. विवाह पञ्चमी मार्गशीर्ष शुक्ल-५ शुक्रवार दि. ९।१२।८३
१४. गीताजयन्ती मार्गशीर्ष शुक्ल-११ शुक्रवार दि. १६।१२।८३
१५. मकर संक्रान्ति शनिवार दि. १४।१।८४
१६. ज.गु. श्रीरामानन्दाचार्यजयन्ती माघकृष्ण ७ मंगलवार २४।१।८४
१७ गणतन्त्रदिन गुरुवार दि. २६।१।८४
१८. श्रीविश्रामद्वारिकाधीश पटोत्सव माघशुक्ल ५
१९. ज.गु. श्रीअनुभवानन्दाचार्यजयन्ती वसन्तपञ्चमी मंगल.दि. ७।२।८४
२०. शिवरात्रि फाल्गुन कृष्ण १४ बुधवार दि. २९।२।८४
२१. होली (धूलिवन्दन) चैत्रकृष्ण प्रतिपदा शनिवार दि. १७।३।८४

Regd. No. GAMC 451

अवधेयम्-परात्पर पर ब्रह्म श्रीरामजी की असीम अनुकम्पा से इस पत्रिका का चौथा वर्ष पूर्ण होकर यह पांचवें वर्ष का प्रथम अंक आप सवों की सेवा में उपस्थित हो रहा है। साथही इसी अंक में श्री वाल्मीकि संहिता भी पूर्ण हो रही है। अग्रिम अंक से जगदगुरु श्रीरामभद्राचार्य जी प्रसादित श्रीरामकर्णरसायन पत्रिका के पूर्ववृत्तानुरूप सविवरण निकलेगा।

जगद्गुरु श्रीरामनन्दाचार्य पीठ सचित्र धार्मिक मासिक पत्रिका के सन्दर्भ में प्रकाशक एवं सम्पादक का नाम स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य
राष्ट्रीयता भारतीय
पता–श्रीकोसलेन्द्रमठ पो० पालडी–अहमदाबाद–७
प्रकाशन–स्थानः श्रीकोसलेन्द्र मठ सरखेज रोड
पो. पालड़ी अहमदाबाद ३८०००७
उपर लिखा गया विवरण मेरी जानकारी अनुसार सत्य है
स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य

मुद्रकः–श्रीरामानन्द प्रिंटिंग प्रेस, कांकरिया रोड अहमदाबाद-२२

त्रिदण्डि संस्थान श्रीशेषमठ–धर्मप्रचार विभागसे धर्मप्रचारार्थ प्रकाशित

**प्रेषक–श्री कौसलेन्द्र मठ सरखेज रोड
पो० पालड़ी, अहमदाबाद–३८० ००७**
ग्राहक क्रा. नं.
प्रति क्रा. ......

१७७ रजिस्ट्रार
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार (यू. पी.)

संरक्षक- शेठ श्री अमरशी कुरजी पजिठिया

सम्पादक- स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य

सहसम्पादक- पं. शरच्चन्द्र शास्त्री

श्रीमन्तं श्रुतिवेद्यमद्भुतगुणग्रामाग्र्यरत्नाकरं
प्रयः स्वेक्षणसंसुलज्जितमही जाताक्षिकोणेक्षितम् ।
भक्ताशेषमनोभिवाञ्छितचतुर्वर्गप्रद स्व म
रामं स्मेरमुखांबुजं शुचिमहानिलाश्मकान्तिं भजे ॥

(आनन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याः)

कार्यालयः श्री कोसलेन्द्र मठ, सरखेज रोड, पालड़ी,
अहमदाबाद-३८०००७

वर्ष ५ विक्रमाब्द २०३९ अंक २

श्रीरामानन्दाब्द ६८३ १ अप्रेल १९८३

श्री साकेत विहारी जी का २२ वां पाटोत्सव

प्रस्थान त्रयानन्द भाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी यति सम्राट् की प्रधान पीठस्थली वाराणसी में आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य पीठ के संस्थापकाचार्य श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के ४० वें आचार्य क्रान्तदर्शी अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्य जी योगीन्द्र जी ने श्रीरामानन्द पीठ विश्राम द्वारिका की प्रधान शाखा के रूप में एक स्वतन्त्र आचार्य पीठ श्री कोशलेन्द्रमठ की स्थापना गुजरात के प्रधान नगर अहमदाबाद में की थी उसी मठ में आचार्य पीठों के आराध्य देव सर्वेश्वर श्री साकेत विहारीजी की प्रतिष्ठा २५ मार्च १९६१ में विशिष्ट समारोह के साथ हुई थी उसके २२ वर्ष हो रहे हैं एतदुपलक्ष में चैत्रशुक्ल प्रतिपदा से श्रीराम नवमी तक का विशेष कार्यक्रम आयोजित हुआ है। जिसमें श्रीराम चरितमानस पारायण प्रवचन, एकाह श्रीरामयाग श्रीयोगेश्वर महादेव में रुद्राभिषेक आदि का समावेश है। प्रवचन का समय प्रातः ९-३० से १२ सायं ४ से ६–३० है।

मन्त्र सूची

ऋषिः मेघातिथिः । देवता विष्णुः । छन्द गायत्री । विनियोग, विष्णुस्तुति पूजनं अभिषेकं च ।

मन्त्र संख्या	मन्त्राणि ऋग्वेदानुसाराणि	ऋग्वेद मण्डल-१ सूक्त-२२ मन्त्र १६-२१	सामवेद उत्तरार्चिक अध्याय-१८ मन्त्र १६६९-७४	अथर्ववेद काण्ड-७ सूक्त-२६ मन्त्र-४-७	शुक्लयजुर्वेद अध्याय-मन्त्र	
१	अतोदेवाअवन्तुनो यतो विष्णु विंचक्रमे । पृथिव्या सप्तधामभिः ।	मन्त्र-१६	मन्त्र-१६७४		नास्तिक शु.य. वेदे	सामवेदे सप्तधामभिः स्थाने अधिसानवि पाठ
२	इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम् । समूहलमस्य पांसुरे ॥	मन्त्र-१७	मन्त्र-१६६९	मन्त्र-४	५-१५	अथर्ववेदे पदम् स्थाने पदा समूलहमस्यस्थाने समूदमासा पाठौ । सा
३	त्रिणि पदाविचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतोधर्माणिधा यन् ॥	मन्त्र १८	मन्त्र-१६७०	मन्त्र-५	३४-४३	देऽपि तत्स्थाने समूढमस्या पाठः तथा पांसुरे स्थाने पांसुले पाठः
४	विष्णोः कर्माणिपश्यत यतोव्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥	मन्त्र-१९	मन्त्र-१६७१	मन्त्र-६	६-४ १३-३३	अर्वथवेदआतो स्थाने 'इतो' पाठः
५	तद्विष्णोः परमं पदं सदापश्यन्ति सूरयः । दिवीवचक्षुराततम् ॥	मन्त्र-२०	मन्त्र-१६७२	मन्त्र-७	६-५	प ठभेदो नास्ति
६	तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ।	मन्त्र २१	मन्त्र-१६७३	×	३४-४४	पाठभेदो नास्ति साम वेदे विपन्यवो स्थाने विपन्युवो पाठः

॥ ओ३म् शान्तिः ॥

अथ भूमिका

(ले० वैदेहीकान्तशरण–तुरकी)

कौत्स मुनि का मत है कि वेदमन्त्र विना अर्थ वाले हैं–"अनर्थका मन्त्राः"। उन वेद मन्त्रों का सामर्थ्य मन्त्रों के उच्चारण में ही है, अर्थ में नहीं। परन्तु निरुक्तकार यास्काचार्य ने इस मत का खण्डन किया है। वस्तुतः वेदमन्त्रों का सामर्थ्य उच्चारण और अर्थ दोनों में है। स्वयं वेद अपने मुख से कहते हैं––"यस्तन्नवेद किमृचा करिष्यति–ऋ० १।१०।१८।" वेद को पढ़कर उसका अर्थ नहीं जाननेवाला विना डाल पात का वृक्ष एवं भार ढोनेवाला है। अर्थज्ञ ही कल्याण और मोक्ष को प्राप्ति करता है––

"स्थाणुरयं भारहार किलाभूत
अधित्यवेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञस्य इत्सकलं भद्रमश्नुते
नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा "निरुक्त"
नार्थज्ञान विहीनं शब्दोच्चारणं फलति।
भस्मनि वह्निविहीने न प्रक्षिप्तं हविर्ज्वलति॥"
"अर्थमजानाना नानाविध शब्दमात्र पाठवताम्।
उपमेयस्वकीयान् मलयज भारस्य बोढैव॥
"पुरुषार्थानिच्छद्भिः पुरुषैरर्थाः परिज्ञेयाः।
अर्थानादरभाजां नैवार्थः प्रत्युतानर्थः।व. र. २।५४।५६॥

"यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्परः ।
न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञस्तस्य तद्धारणं वृथा ॥
भारं स वहते तस्य ग्रन्थस्यार्थं न वेत्ति यः ।
यस्तु ग्रन्थार्थ तत्त्वज्ञानास्य ग्रन्थागमो वृथा ॥महा. शा. ३०५।

"यथाखरश्चन्दनभारवाही
भारस्यवेत्ता न तु चन्दनस्य
एवं हि शास्त्राणि बहून्यधीत्य
चार्थेषु मूढा खरवद्वहन्ति ॥सुश्रुतसूत्रस्थान ४ ३॥'

अतएव वेदमन्त्रों का प्रयोग और उपयोग वेदमन्त्रों के अर्थज्ञानाधीन होने से उनका अर्थज्ञान परमावश्यक है ।

वेदमन्त्रों की विशेषता है । महर्षि जैमिनी मीमांसा सूत्र में महर्षि बादरायण (व्यास) के मत का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि वेद के प्रत्येक पद को उनके अर्थ के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध है । धर्म के यथार्थ ज्ञान साधन के ईश्वर द्वारा उपदिष्ट होने से तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अप्राप्त अव्यभिचारी औ अविरोधी होने से व्यास के मत में वह वाक्य अनपेक्षित होने से स्वतः प्रमाण है—

"औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे तत्प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात्— मी० सू० १।१।५ ॥"

न्याय वैशेषिक दर्शन भी वेद वाक्यों की विशेषता को

मानते हैं--

"वाक्यं द्विविधम्-वैदिकं लौकिकं च। वैदिकमिश्वरोक्तत्वात्सर्वमेव प्रमाणम्। लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम्। अन्यदप्रमाणम् ॥ त. सं॥

वेदों की एक विशेषता यह भी है कि वह परोक्षवादी है--

"परोक्षवादाः ऋषयः परोक्षं च मम प्रियम्।

परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ॥भग० कौ०॥

परोक्ष प्रिया इव हि देवा।

परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥ एतरेयोपनिषद्॥

"परोक्ष प्रिया हि देवाः। प्रत्यक्षद्विषः।

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।

एनं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥

"शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः।

परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान् मायामये वासनया शयानः॥

श्रीमद् भाग. २।२।२। ॥"

वेदों कों वेदमन्त्र कहा जाता है। मन्त्र का अर्थ है गुप्त-वार्ता "मत्रि गुप्त परिभाषणे (चुरा०) मन्त्रयते गुप्त परिभाषयते इति मन्त्रः। अमरकोष भी ऐसा ही कहता हैं-"वेदभेदे गुप्तभेदे मन्त्रः--अ. को. ३।३।१६॥

मीमांसा ने कहा है-"अज्ञात ज्ञापको हि वेदः।"

मनु ने कहा है-भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति।"

वेद गागर में सागर है "अरथ अमित अति आखर थोरे" का कथन वेदों के सम्बन्ध में पूर्णतः घटित है। अतएव वेदार्थ ज्ञान अत्यावश्यक होने के साथ ही गम्भीर भी है।

अब प्रस्तुत षड्मन्त्रात्मक विष्णु सूत्र के अर्थ का निरूपण करने के लिये सर्वप्रथम इन मन्त्रों के देवता, ऋषि, छन्द और विनियोग का ज्ञान करना अति आवश्ययक है। क्योंकि इनके परिप्रेक्ष्य में ही अर्थ ज्ञान होता है--

"अविदित्वा ऋषि छन्दो देवत्वं योगमेव च।
योऽध्यापयेज् जपेद् वापि पापीयान् जायते तु सः।
वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति।"

इस विष्णु सूक्त के विष्णु देवता, मेघातिथिः ऋषि, गायत्री छन्द, विष्णु स्तुति, विष्णुपूजन, विष्णुअभिषेक में विनियोग है।

देवता का अर्थ है मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय वस्तु "या तेनोच्यते सा देवता।" "यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामर्थप-त्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति ॥निरुक्त ७। १॥" 'यां स्यूयते सा देवता।" "त्यज्यमानद्रव्ये उद्देश्य वशेषो देवता देवता कल्प श्रौत सूत्र।" सास्य देवता-पा० ४।२ २४ "मन्त्र स्तुत्या देवता" अभीष्टसिद्धि हेतु दिव्यशक्ति सम्प-न्नत्वे सति मन्त्र स्तुत्यत्वम्" देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता निरुक्त ७।१५।"

अतएव इस सूक्त में विष्णु भगवान् को प्रसन्न कर अभीष्ट लाभ की इच्छा से स्तोता ऋषि ने मन्त्र का प्रयोग किया है ऐसा इस मन्त्र के देवता से सिद्ध होता है। अतः मन्त्र का यही तात्पर्यार्थ अभिप्राय विषयत्व या इष्ट साधन (व) विष्णु की प्रसन्नता है।

"येन स्तूयते स ऋषि।" इस मन्त्र के ऋषि मेधातिथि है। जिसने अन्तकरण में एकाग्र होकर मन्त्रार्थ का दर्शन किया वे मन्त्र या यन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषि कहे गये हैं—शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत् प्रविभागसंयमात्सर्वंसृतरुतज्ञानम्। ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः।" तर्क को भी ऋषि अर्थात मन्त्रार्थ द्रष्टा कहा गया है—"तर्का वे ऋषि रुक्त।" इस सूक्त के मन्त्रार्थ द्रष्टा "मेघातिथि" कहे गये हैं। मेधा से ही मन्त्रार्थ दर्शन होता है। इसलिए वेदों में मेधा प्राप्ति की प्रार्थना की गयी है—

"यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधाविनं कुरु ॥ स्वाहा ॥
मेधा मे वरुणो ददातु मेधामाग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधा धाता दधातु मे ॥ स्वाहा ॥
॥शु. य. ३२।१३।१४॥

धारणा शक्ति वाली बुद्धि का नाम मेधा है—"धीर्धारणावतीं मेधा—अ. को. १।५।२॥" अतिथि के लिये भी श्रोत्रिय और वेदपारग होना कहा गया है "अध्वनिनोऽतिथिर्ज्ञेयः श्रोत्रियो वेदपारगः ॥याज्ञ० १।१११॥" अतएव इस सुक्त के "मेधा-

तिथि" ऋषि पद से उपरोक्त अभीष्ट (विष्णु की प्रसन्न्ता की सिद्धि में साधन रूप का संकेत है। अर्थात् वेदज्ञान और धारणाम्भिका बुद्धि (ज्ञान) विष्णु की प्रसन्नता के साधन है।

इसका छन्द गायत्री हैं गायत्री को वेद (ज्ञान) की माता (जननी) कहा गया है। जो गाने पर रक्षा करती है वह गायत्री है। इसके सम्बन्ध में कहा गया है--

"स्तुता मया वरदां वेदमाता प्रचोदयन्तां पावनानि द्विजानाम्। आयुः प्राणः प्रजा पशुकीर्ति द्रवणं ब्रह्मवर्चसम् मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥अथर्व० १९।९।११॥"

श्री जानकीजी का भी नाम गायत्री है—"गायत्री वेदमाता च सर्वसंकट हारणी—जा० सहस्रनाम्।" अतएव इस छन्द निर्देश "गायत्री" से इष्ट साधन (विष्णु की प्रसन्नता) के फलस्वरूप का ज्ञापन होता है।

उक्त मन्त्रों का विनियोग "विष्णुस्तुति, विष्णुपूजन एवं, विष्णु अभिषेक में है। इससे इस सूक्त के प्रयोग का ज्ञापन होता हैं।

इस सूक्त का विषय तो विष्णु ज्ञात हो गया। परन्तु विष्णु पद से क्या ज्ञातव्य है? विष्णु शब्द 'वि' उपसर्ग जिसका अर्थ 'विशेष रूप से एवं ('ष्णु) धातु जिसका अर्थ 'प्रसवने' होता है के योग से बना है। इसलिए विष्णु पद का यहाँ मुख्यार्थ विश्व को उत्पन्न करनेवाला सिद्धि होकर यह सूक्त विश्वसृष्टि को उत्पादन

का निरूपक है–ऐसा सिद्ध होता है। विश्व रचना के प्रमाण में श्री उदयनाचार्यजी ने लिखा है––

"कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः ।
वाक्यात् संख्या विशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः ॥
॥न्या. कु. ५।१ ।'

ये सभी युक्तियाँ उक्त विष्णु सूक्त में प्रतिपादित होती हैं। वहाँ 'विचक्रमे' से कार्यात् 'पांसुरे' से आयोजनात्, 'धारयन्' से 'धृत्यादेः, 'पदम्, से पदात्-प्रत्यतः श्रुतेः, मन्त्रवाक्य से वाक्यात्–संख्या विशेषात का संकेत और प्रतिपादन है। इसका निरूपण आगे किया जायगा।

उक्त सूक्त के वाक्यों के सम्बन्ध में ज्ञातव्य है कि वैदिक वाक्य अदृष्टार्थक कहे गए हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं १. विधि वाक्य २. अर्थवाद और ३. अनुवाद। १. आज्ञासूचक वाक्य को विधि वाक्य कहते हैं-"विधिर्विदायकः- न्या. सू. २।१ ६४। यह विषयात्मक एवं निवेधात्मक दो प्रकार का होता है। जैसे इस सूक्त का 'विष्णोः कर्माणि पश्यत" यह विधात्मक तथा 'कलञ्जं न भक्षयेत्' यह निषेधात्मक है। २. वर्णनात्मक वाक्य को अर्थवाद कहते हैं यह स्तुति–निन्दा–प्रकृति–पुराकल्प भेद से चार प्रकार का होता है। स्तुति वाक्य विहित कर्म का इष्ट फल बतलाकर उसकी प्रशंसा करता है। जैसे–इस सूक्त का–"तद्विष्णोः परमं पदम् ० मन्त्र ५." एवं "तद्विप्रासो विप-

न्यवो ० मन्त्र ६ ।" निन्दा वाक्य निषिद्ध कर्म का अनिष्टफल बतलाकर उसका निन्दा करता है । जैसे 'श्येनेनाभिचरेत' का श्येनयाग से नरक की प्राप्ति बतलाकर उससे निवृत्ति कराता है । प्रकृति वाक्य मनुष्य कृत कर्मों में विरोध बतलाकर उसका समन्वय पुरा कत्य वाक्य द्वारा अर्थात् पुराने काला में ऋषि लोग समन्वय पुराकल्प वाक्य द्वारा अर्थात् पुराने समय में ऋषि लोग ऐसा करते हैं के द्वारा करता है । ३. अनुवचन अर्थात एक ही वाक्य को अनेक स्थानों पर दुहराने को अनुवाद कहते हैं-- "विधि विहितस्यानुवचनम् अनुवाद :-- न्या. सू. २।१।६६॥' इस सूक्त में 'विष्णुर्विचक्रमे' वाक्य मन्त्र १, २, ३ में तीन स्थानों पर आये हैं ।' त्रेधापदम्' कुछ परिवर्तन त्रिणिपदम के रूप में, मन्त्र २, ३ में दो स्थानों में आये हैं । इसी प्रकार 'विष्णोः परमं पदं' मन्त्र ५ और ६ में दो बार आए हैं । आपत्तिकार इसे पुन पुनरुक्त दोष बतलाकर अप्रमाणिक सिद्ध करते हैं--"तद प्रमाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः--'न्या. सू. २।१।५८॥' गौतम इसे पुनरुक्त नहीं प्रत्युत अनुवाद कहकर इसका निराकरण करते हैं-अनुवादोपपत्तेश्च-न्या. सू. २।१।६१॥' शीघ्रतरगमनोपदेशवदभ्यासान्नो विशेषः-न्या. सू. २।१।५८॥' इसी प्रकार प्रेम के भावावेश में भी एक वाक्य का बार बार प्रयोग होता है-"पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ । प्रेम विवश पुनि पुनि कह राऊ ॥' विष्णु सहस्रनाम भाष्य में शंकराचार्यजी ने लिखा है-

'विष्ण्वादि शब्दानां पुनरुक्तानामपि वृत्तिभेदेनार्थभेदान्न पौन-रुक्त्यम। श्रीपतिर्माधव इत्यादिना वृत्येकत्वेऽपि शब्दभेदान्न पौन-रुक्त्यम्। अर्थैकत्वेऽपि न पौनरुक्तदोषाय, नामासहस्रस्य किमेकं दैवतमिति पृष्ठेरेकदैवतविषयत्वात्।" अतएव विष्णु सूक्तोक्त 'विष्णु' विचक्रमे, त्रेधा, पदम् पदों को मन्त्र भेद से वृत्ति भेद होने के कारण पुनरुक्त और अभ्यास नहीं प्रत्युत अर्थभेद का ज्ञापन है।

सूक्तोक्त 'विष्णु' पद का 'सर्वव्यापक' 'विश्वोत्पादक, आदि का अर्थ स्वाभाविक है सामयिक नहीं। क्योंकि सभी अर्थ विष्णु के आधीन है। किसी मनुष्यादि का विष्णु, चक्रधर, चतुर्भुज आदि का अर्थ सार्थक होते हुए भी सामयिक है, स्वाभाविक नहीं अतः निरर्थक तुल्य ही है। परन्तु विष्णु के साथ उसके अर्थ का स्वाभाविक सम्बन्ध होने से वस्तुतः सार्थक है और उसका नाम अर्थवान् है। वादरायण ने भी सूत्र में कहा है— "तदधीनत्वादर्थवत (ब्र. सू. १।४।३।) सर्वेषां पदार्थानां ब्रह्माधीन-त्वादर्थवत् तस्य नाम।" अतः विष्णु का नाम अभिधेय शून्य वचन या निरर्थक वचन नहीं है। प्रमाण दीपिका में कहा गया है—

देहस्य वाचकाः शब्दापर्यवस्यन्ति देहिनि।
सर्वशब्दस्य वाच्यस्तद् रामः सर्व शरीरकः। ३।१९॥'

अतएव विष्णु सूक्त के सभी पद विष्णु (श्रीराम) में पूर्णतः

घटित होने से स्वभाव सम्बन्ध पूर्ण एवं अर्थवान् है । अब
सूक्तोक्त वाक्यों का—

सवितर्कं ज्ञानमयमित्येतैः प्रश्नैः प्रतिवचनैश्च यथार्थं पद-
मनुविचिन्त्य प्रकरणज्ञो हि प्रबलो विषयी स्यात् सर्वस्मिन् वाक्यो
वाक्य इति ।।गोपथ ब्राह्मण।।'

एवं-"पदच्छेदः पदार्थश्च विग्रहो वाक्य योजना ।
आक्षेपश्च समाधानं व्याख्यानं षड्विधं मतम् ।।"
के अनुसार व्याख्या करनी चाहिए ।

वेदों के अनादि और अपौरुषेय माननेवाले मीमांसकों के
मत से वेद की यह प्रेरणा, कथन, उपदेश या आज्ञा है । 'वैदि-
कमीश्वरोक्तत्वात' कहने वाले नैयायिकों के मत से यह ईश्वर का
उपदेश प्रेरणा वा आज्ञा है । वेदों को ऋषि प्रणीत माननेवालों
के मत से यह ऋषियों का अनुभूत वा प्रत्यक्ष कृतज्ञान रूप
उपदेश है ।

मीमांसा दर्शन "आम्नायस्य क्रियार्थत्वात्-मी. सू. १।२।
१' सूत्र से वेदमन्त्रों का प्रतिपादन क्रिया एवं क्रिया से सम्बद्ध
अर्थ से ही है । यहाँ ये मन्त्र स्पष्ट रूप से स्तुति पूजन आदि
क्रिया का प्रतिपादन करते हैं । इन मन्त्रों के विनियोग विष्णु-
स्तुति, विष्णुपूजन और विष्णु अभिषेक में है विनियोगोक्त क्रियाओं
के अतिरिक्त मन्त्रार्थोक्त विष्णु की महिमा वर्णन रूप स्तुति, विष्णु
के कार्यों का दर्शनरूप क्रिया, विष्णु के व्रतों में निबन्धन आदि

कार्यों में प्रवृत्ति एतावता तद्विपरित कार्यों से निवृत्ति का उप
होने से इन मन्त्रों का क्रियार्थ स्पष्ट है। वेद का नाम शास्त्र
शासनात् शास्त्र' प्रवृत्ति निवृत्यन्तर जननात् शास्त्रम्' कहा
है। मीमांसा सूत्र ने कहा है— "शास्त्राणां त्वर्थवत्त्वेन पुरुष
विधीयते तयोरसमायित्वात्तदर्थे विध्यति क्रमः ।।मी. सू. ६
२०।। शास्त्रों द्वारा विधि और निषेध कार्यों का ज्ञान होता
ज्ञान का उत्पादक भी शास्त्र ही है—"बुद्ध शास्त्रस्यात्—मी.
१।२।३३।। अतएव इन मन्त्रों में न केवल कर्म (क्रिया) प्र
ज्ञान का भी उपदेश है। वेद शब्द का अर्थ ही होता है ज्ञान
अतः इन मन्त्रों में वैदिक ज्ञान का प्रतिपादन और प्रकाश है

न्यायमञ्जरी में वेदमन्त्रों के सम्बन्ध में विचार प्र
किया है कि वेदमन्त्रों की अर्थप्रकाशन द्वारा विध्यर्थोपयोगिता है
उच्चारणमात्र से ही? इसमें पूर्वपक्ष में कहा गया है कि मन्त्र के
उच्चारण मात्रोपकारि है (उच्चारण मात्रोपकारिणो मन्त्राः
कैसे? तो उसी प्रकार का विनियोगोपदेश होने के का
(तथाविनियोगोपदेशात्)। उरु प्रथा उरु प्रथस्वेति' इस विनि
वचन से पुरोडास दिया जाता है। यदि अर्थप्रकाशन से उ
कारी मन्त्र होते तो अर्थसामर्थ्य से ही प्रथनोपयोगी यह
होता तब क्यों प्रथम विनियोग बचन का क्या अर्थ है
जैसे साक्ष पुरुष यदि दूशरे द्वारा ले जाया जाय तो नि
ही वह आखों से नहीं देखता है—ऐसा जाना जाता

...च्चारणमात्र से उपकारी मन्त्र में उसके उच्चारण से ...ी अदृष्ट कुछ उपकारजात की कल्पना होती है। वाक्य क्रम नियम से मन्त्र का अर्थ अविवक्षित मालूम पड़ता है। मन्त्र ...यत पद क्रम से ही पढे जाते हैं। यदि अर्थ प्रतिपादन से ...कारी होते तो नियत क्रम का आश्रवण अनर्थक होगा क्योंकि ...मान्तर से भी उसके अर्थ का ज्ञान होता है। कुछ लोग मन्त्रों ...अविद्यमानार्थ प्रकाशक देखते हैं जैसे 'चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य ...दा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य"। चार शृंग तीन पाद दो शिर ... हाथ वाला कोई वस्तु नहीं है, जो इस मन्त्र के अर्थ से ज्ञात ...ता है। "पुनः ओषधे त्रायस्वैनमिति" यहाँ अचेतन से त्राण प्रार्थना है। ओषधी का ज्ञान नहीं है। 'शृणोत ग्रावाण' अचेतन सुनने में नियुक्त नहीं किया जा सकता। अदितिर्द्यौरन्तरिक्षम् अप्रभारी के समान कहते है। वही द्यौ उस देव का अन्तरिक्ष ...हो सकता है। कुछ मन्त्रों का अर्थ जाना ही नहीं जा ...ता है, तब वे कैसे अर्थप्रकाशन से उपकारी होंगे जैसे—"अम्य ...त इन्द्र ऋष्टिरिति शृण्वेव जर्फरी तुर्फरीतु इति०" इसलिये ...त्र अविवक्षितार्थ (जिनके अर्थ का प्रयोजन नहीं) हैं।

उत्तरपक्ष का आरम्भ करते हुए कहा गया है कि क्या (१) मन्त्रों ...अर्थ की प्रतीति ही नहीं होती है, (२) क्या अर्थ की प्रतीति ...ते हुये भी उसका प्रयोजन नहीं है, अथवा (३) क्या उस अर्थ ...प्रयोजन होते हुये भी किसी एक प्रतीतिवाला के ग्रहण के

विकल्प के कारण वह विवक्षित नहीं है—

"किं मन्त्रेभ्योऽर्थप्रतीतिरेवनास्ति, किंवा भवन्त्यपिनिनिमित्ताऽ उत सन्निमित्ताऽपि ग्रहैकत्वप्रतीतिवदविवक्षितेति । न तावत्प्रती व नास्ति शब्दार्थसंबन्धव्युत्पत्ति संस्कृतमतीनां, बर्हिदेवसदनं द त्येवमादि मन्त्रश्रवणे सति तदर्थ प्रतीतेः स्वयंसंवेद्यात् । नाप निनिमित्ता लोकवत्पदानामेवात्रनिमित्तत्वात्, व्युत्पत्तिरपि न च ये एव लौकिकाः शब्दास्ते एव वैदिकाः त एव तेषामर्था इति व्यवहारतस्तद्व्युत्पत्तिसम्भवात् । नापि सम्भवन्त्यपि मन्त्रेभ र्थप्रतीतिः ग्रहैकत्व प्रतीतिवदविवक्षिता भवितुमर्हति, अविवक्षि बन्धनासकस्यचिदप्यभावात् । ग्रहादिवचनान्तर नियतिसंल त्सोमावसेकनिर्हरणस्य च सन्मार्गकार्यस्य :सर्वग्रहसाधारण ग्रहमिति विभक्तेश्च कर्मकारकसमर्पणमात्रेणापि सार्थक्योप युक्तमेकत्वमविवक्षितमिति कथयितुम् ।

इह तु बर्हिदेवसदनं दामीत्येवमादिवाक्यक्रियमाण योगिद्रव्यादि प्रकाशनं तस्य विध्यपेक्षितत्वान्मन्त्रोगस्मृतं कर्म क तथा क्रियमाणमभ्युदयकारि भवति इति न यज्ञाङ्गप्रकाशनम क्षितम् अतो नोच्चारणमात्रोपकारिणो मन्त्राः

वहाँ उन्होंने सभी आक्षेपों का विस्तृत उत्तर दिया है वहीं द्रष्टव्य है । न्याय मञ्जरी कार का यह भी कथन है केवल संशय विपर्यय की उत्पत्ति ही अप्रामाण्य नहीं है । अ जनकत्व भी अप्रामाण्य है । अतः यदि वेदमन्त्रों से अर्थज्ञान

उत्पत्ति न हो तो वेद मन्त्र का अप्रामाण्य होगा ।

अर्थसंग्रह में स्पष्ट कहा गया है कि मन्त्र का प्रयोजन है कि वे प्रयोजन समवेत **अर्थ का स्मरण करावे,** न कि मन्त्र उच्चारण का अदृष्ट अर्थ है—

"प्रयोगसमवेतार्थस्मारका मन्त्राः तेषां च तादृशार्थस्मारकत्वेनैवार्थवत्वम् । नतु तदुच्चारणमदृष्टार्थम्, संभवति दृष्टफलकत्वेऽदृष्टफलकल्पनाया अन्यायत्वात्, न च दृष्टस्यार्थस्मरणस्य प्रकारान्तरेणापि सम्भवान्मन्त्राम्नानं व्यर्थमिति वाच्यम् । मन्त्रैरेव स्मर्तव्यमिति नियमविध्यश्रवणात् ।। अतएव इस सूक्त का अर्थ प्रतिपादन श्रुति सिद्धान्त सम्मत है ।

आशा है विद्वज्जन मेरी अल्पज्ञता जन्य त्रुटियों को सुधार कर इसमें से सारवस्तुओं को ग्रहण करने की कृपा करेंगे । कहा है

गच्छतः स्खलनं क्वाऽपि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधंति साधवः ।।

।। श्रीराम जय राम जय जय राम ।।

—०—

इस सूक्त के मन्त्र ३ में गोपा (गवा वाणेन पाति रक्षति इति गोपा, वाण धारकः श्रीरामचन्द्रः) एवं धर्माणि धारयन् धर्मोधनुः मे धारयन् धनुष धारी श्रीरामचन्द्रजी का स्पष्ट सङ्केत होने से यह सूक्त धनुष वाण धारी श्री रामचन्द्रजी के विषय में ही है ।

॥ श्री रामः शरणं मम ॥

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

३

श्री विष्णु सूक्तम्

(चतुर्वेदोक्तम्)

टीकाकार–श्रीवैदेहीकान्तशरण

"मन्त्र-१" देवता -विष्णु.,

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्या सप्त धामभिः॥ ऋ० १।२२।१६ सा० १६७५

शब्दार्थः—

अतोः— अतः शब्दों हेत्वर्थकः (आनन्दभाष्ये) अत इसलिए अनेन अस्मात्कारणात् । वृत्तस्य हेतु भावे रामानुजभाष्ये। हेतु साध्य वत्तया पक्षप्रतिपादक वचनं निगमनं अबाधतत्त्वाद्विश्व निगमनप्रयोजनम् अ तसिल्ल अतः आरम्भतः अक्षराणामकारोऽस्मि मन्त्रोक्तं अतो....यतो' कारणवाचक **आनुमानिक** समुच्चयादि बोधक अव्यय है ।

देवा– यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुति प्रयुङ्क्त तद्देवतः समन्त्रो भवति (निरुक्त ७।१) अभीष्ट सिद्धि हेतु दिव्य शक्ति सम्पन्नत्वेसति मन्त्र स्तुत्यत्वम् । या स्तूयते सा देवता देवो दानाद्वा दीपनाद्वाद्योतनाद्वा द्युस्थाने भवन्तीति वा यो देव

सा देवता (निरुक्त ७।१५) सास्य देवता—पा०४।२।२४ त्यज्-मान द्रव्ये उद्देश्य विशेषो देवता- कल्पश्रौत्रसूत्र। प्रथमा बहु-वचन अदागर्थ।

अवन्तु—अव रक्षणगतिकान्ति प्रीतितृप्त्यवगम प्रवेश श्रवणस्वा-म्यर्थ याचन क्रियेच्छा दीप्त्यवाप्त्यालिङ्गन हिंसादानभागवृद्धिषु पा०धातुपाठ भ्वादि। प्रथम पुरुष लोट् बहुवचन लोटोरर्थो वक्तृ. इच्छाविषयत्वमिच्छानुकूल कृतिमान् लोट् लकार आज्ञा प्रार्थना एवं मृदुउपदेश या मन्त्रणा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जाने बिन कि होहि परतीति॥ बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति। प्रीति बना नहि भगति दढाई॥ जिमि खग प्रति जल के चिकनाई।

नो—अस्मद् का द्वितीया चतुर्थी, षष्टी बहुवचन। चतुर्विधा भजन्ते मां जनासुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरथार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ गी० ७।१६॥ सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ना०, सू. २

यतो—येन यस्मात्कारणात्। क्योंकि अव्यय। जिन चरणो से

विष्णु—प्रथमा एक वचन। विष्णु व्यापकः परमेश्वरः विवेष्टि सर्वं इति विष्णुः। विशति प्रविशति सर्वम् इति विष्णुः। रामः स्वयमेव विष्णु वैष्णवानां देवता (उपास्यः)

विचक्रमे—डुकृञ् करणे लिट् निर्मितवान्, विक्रान्तवान्।

पृथिव्या— तृतीया एक वचन' पृथ प्रक्षेपे।

सप्त— सप्तसुपर्णाः कवयो निषेदु सप्तच्छन्दोस्युनु सप्त दीक्षा। सप्तहोमाः समिधोह सप्त मधूनिसप्त ऋतवोह सप्त।

सप्ताज्यानि परि भूतमायनताः **सप्तगृध्रां** इति शुश्रुमावयम्
अथर्व. ८.९।१६–१७

सप्ततेअग्ने समिध सप्तजिह्वा धाम प्रियाणि,
सप्तधात्वा यजन्ति सप्तयोनीरापृणस्वा घृतेन स्वाहा ॥
शु.य. १७।७८

सप्तऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्तरक्षन्ति सदमप्रमादम् ।
सप्तास्तपः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतोअस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ शु. य. ३४।५५

"अक्षरेण मिमते सप्तवाणी—ऋ १।१६४।२४"

"सप्तभिस्तुवत सप्त ऋषयोइस्टजन्त– शु. य. १४।२८

चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणोरूपम् । तच्च शुक्ल नीलपीत हरित-रक्तकपिशचित्रभेदोत् सप्त विधम् ।।त. स. ।।

धामभिः—धामगेहे गृहे रश्मौ स्थाने जन्मप्रभावयोः । मे० गृह देहत्विट्प्रभावा धामानि अ. को. ३।३।१२४

यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। गी० ८।२१

न तद् भाषयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। गी० १५।६

परंब्रह्म परंधाम पवित्रं परमं भवान्'

पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ।। गीता० १०।१२

वेत्तासि वेद्यञ्च परं च धाम

त्वया ततं विश्वमनन्त रूप ।।गीता ११।३८

सवेदेतत्परमंब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् ।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदति वर्तन्ति धीराः ।।मु.३।
नायमात्माबलहीनेनलभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्'
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैदोष आत्मा विंशतेब्रह्मधाम।।मु३१
तृतीया बहुवचन । डु धाञ् धारण पोषणयो । दानेऽपि इत्यैके ।

अतो देवा अवन्तु नो यता विष्णुर्विचक्रमे०"–इसलिये इस मन्त्र में जिनकी स्तुति की जा रही है वे मन्त्र स्तुत्य वैष्णवों के देवता (उपास्य) विष्णु हम लोगों का वा हम लोगों के लिये अपनी इस चरणों की भक्ति दे जिस चरणों का पृथक् भाव से पाद विक्षेप भक्ति की सप्त भूमि

ज्ञान भूमिः शुभेच्छा स्यात् प्रथमा समुदाहृता ।
विचारणा द्वितीयास्यात् तृतीया तनुमानसा ॥
सत्त्वापत्तिः चतुर्थी स्यात ततो संसक्ति मानसा ।
पदार्थभाविनो षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ॥ के द्वारा

किया था ।"

प्रश्न–इस मन्त्र में भक्ति प्राप्ति के लिये स्तुति कैसे कही गयी है। उ०- भगवत्पदारविन्द में प्रेम अनुराग का नाम ही भक्ति है-"सात्वस्मिन् परम प्रेमरूपांच ना भ.सू.२ इस मन्त्र के विधेय वाक्य के क्रिया पद 'अवन्तु का धात्वर्थ केवल रक्षण ही नहीं प्रत्युत" प्रीति अर्थात् भक्ति के लिये स्तुति है । प्र०--अवधातु का अर्थ रक्षण भी तो है । उ०--निस्सन्देह अवधातु का अर्थ

रक्षण है और रक्षण की कामना भी भक्ति का ही अंग है- "अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम् । रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्व वरणं तथा ॥ गीतानन्दभाष्यम् १८।६६ तथा राम ! दीनोऽनुकूलोऽहं विश्वस्तोऽप्रातिकुल्यवान् । त्वयिन्यस्यामि चात्मानं पाहि मां पुरुषोत्तम ॥२॥ जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्य बोधायन रचित पुरुषोत्तम प्रपत्तिषट्के । पुनः चतुर्विधा भजन्ते मां जना सुकृतिनोऽर्जुन । आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ गी० ७।१६॥ में भी आर्त भक्त के लिये रक्षा की आवश्यकता है । अतएव आर्त के लिये अव रक्षणे, जिज्ञासु के लिये अव तृप्तौ, अव श्रवणे अव इच्छायाम्, अव प्रवेशे, अर्थार्थी के लिये अव याचने एवं ज्ञानी के लिये अव गतौ (गमन-प्राप्ति-ज्ञान-मोक्ष) अर्थों में अव धातुसे ही चतुर्विध भक्ति की संगति होती है । प्र० उक्त सप्त भूमि तो ज्ञान की है, उससे भक्ति का क्या सम्बन्ध ? उ० उपरोक्त गीता वचन में ज्ञानी को भी भक्त ही कहा गया है । वस्तुतः बिना ज्ञानि बने भक्त बन ही नहीं सकता है ।

"सा च भक्तिः परमप्रेयो भगवदितरवैतृष्ण्यपूर्वकपरमपुरुषानुरागरूपो ज्ञानविशेष एव" (आनन्दभाष्य १।१।१) इसी का स्पष्टार्थ—

"जानै बिनु की होहि परतीति ।
बिनु परतीति होहि नहिं प्रीती ॥

प्रीति बिना नहि भक्ति दृढाई ।
जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥"

अतएव इस वेद मन्त्र में ज्ञानपूर्ण भक्ति के लिए स्तुति की गयी है । प्र०—इस मन्त्र में वैष्णवों का उपास्य विष्णु—यह अर्थ कहाँ से चला आया ? उ०—शाब्द बोध में यह नियम है कि एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ का संसर्ग मर्यादा से प्राप्त होता है— "शाब्दबोध" ह्येकपदार्थेऽपरपदार्थस्य संसर्गः संसर्गमर्यादायाँ लभ्यते इति नियमः ।' 'सास्यदेवता—पा० ४।२।२४।, इस देवतार्थक तद्धित सूत्र से अण् प्रत्यय से 'विष्णुः' अस्य देवता वैष्णवः (विष्णु अण् वैष्णवः) बनता है । इस प्रकार वैष्णव का संसर्ग विष्णु के देवतात्व से सिद्ध है । अतः वैष्णवानाम् यः देवता स विष्णुः स्वतः सिद्ध है । इसलिए वहाँ विष्णु पद से वैष्णवों के उपास्य देव विष्णु अर्थ स्पष्ट ग्रहित होता है । प्र० विष्णु का चरणकमल अर्थ यहाँ कहाँ से चला आया उ०—'विष्णुर्विचक्रमे' पद से उपरोक्त संसर्ग बोध द्वारा विष्णु के चरण का अर्थ स्वतः सिद्ध है । प्र०—भक्ति की सप्तभूमि कैसे यहाँ कहा गया है ? उ०- उपरोक्तअथर्व० ८।९।१६।१७, एवं शु. य. १७।७८।३४।५५ में सप्त होमाः, सप्तसमिधं, सप्तधात्वा यजन्ति आदि से भक्ति की सप्तभूमि स्पष्ट सिद्ध है ।

(२) अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे०—" विष्णु संसार की रचना करते और चलाते है एवं पृथ्वी से सर्वत्र व्या-

पक है अपने शुक्ल–नील–पीत–हरित–रक्त–कपिश–चित्र सप्त रूपों से। वे इस मन्त्र के स्तुत्य देव विष्णु इसलिए हमारी रक्षा करें हमें ज्ञान, गति, प्राप्ति, मोक्ष, प्रीति, तृप्ति आदि प्रदान करें। प्र०–यहाँ विष्णु के सप्तरूपों का वर्णन कहा है ? उ० मन्त्र में स्पष्ट शब्दों में "सप्तधामभिः" लिखा है। सप्त का अर्थ यहाँ "चक्षुर्मात्र ग्राह्यगुणो रूपम्। तच्च शुक्ल नील पीत हरित रक्त कपिश चित्र भेदात् सप्तविधम्–त. सं." में कथित सप्तविध रूप एवं धाम का अर्थ यहाँ "धाम देहे गृहे रश्मौ स्थाने जन्म प्रभावयोः–भेदिनी" में कथित देह एवं रश्मि अर्थात् भास्वर सप्त रङ्ग वाले देहों से' है। १।

॥मन्त्र २॥ देवता विष्णु ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे ॥ऋ० १।२२।१७ शु. य. ५।१५
अथर्व० ७।२६।४ साम १६६९

शब्दार्थ :––

इदं इदमस्तु सन्निकृष्टे समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥

जब किसी निकटस्थ वस्तु का बोध कराना हो तो 'इदम्' शब्द के रूपों का और बहुत ही निकटस्थ वस्तु का बोध कराना हो तो 'एतद्' शब्द के रूपों का प्रयोग होता है। दूरस्थ वस्तु के लिये असद् और परोक्ष वस्तु के लिये तद् शब्द का प्रयोग होता है। इदं प्रथमा एकवचन'

विष्णुः विचक्रमे मन्त्र संख्या १ के समान ।

त्रेधा—प्रकार अर्थ में संख्यावाची शब्दों से स्वार्थिक **'धा'** प्रत्यय–"संख्याया विद्ध्यभिका ५।३।४२। तीन प्रकार ईश्वरेच्छा ज्ञान कृतयश्च नित्य गुणाः तर्क० ।

निदधे नि उपसर्ग दधू धारणे (भ्वा०) । स्थापितवान् । निहितवान् ।

पदम् पदं व्यवसात त्राण स्थानलक्ष्माङ्घ्रिात वस्तुषु ।
।अ. का. ३।३।९३

पदं शब्दे च वाक्ये च व्यवसाय प्रदेशयोः ।
पादतच्चिह्नयोः स्थाने त्राणयोरङ्गवस्तुनो ।।मेदिनी।।

सुप्तिङन्तं पदम्–पा० १।४।१४

पदम् (न) के व्यवसिय, रक्षा, स्थान, चिह्न, पैर, शब्द, (सुबन्त और तिङन्त) वाक्य, एकवस्तु, व्यवसाय, अपदेश १० अर्थ हैं । "पद्यतेऽनेन इति पदं प्रत्यायकं, तत्त्रिविधम्–प्रत्यक्ष, अनुमान आगम रूपम् ।" पद्यते अनेन इति व्युत्पत्त्या पदं व्यवहारः ।

समूढम् निगूढम् । अन्तर्हितम् ।

अस्य इदं पु. न षष्ठी एकवचन । जगतः ।

पांसुरे रेणु द्वयोः स्त्रियां धूलिः पांशुर्ना द्वयो रजः । अ. कौ. २।८।९८।। पांशु धूलौ च शस्यार्थ चिरसञ्चिगोमये ।। मेदिनी ।।

"विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कमायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगाय ।।ऋ१।
१५४।१ अथर्व ७।२६।१–शु य ५।१८

इदं विष्णुर्विचक्रमे—सर्व व्यापक परमेश्वर (विष्णु) ने इस जगत् को बनाया। चूंकि यह जगत् निर्माण कार्य परोक्ष कालिक है। इसलिये यहाँ लिट् लकार का प्रयोग किया गया है। विचिरपृथक्भावे (१४४२) क्रमुपादविक्षेपे (४७२)

त्रेधानिदधे पदम्—तीन प्रकार के स्थानों को प्राप्त किया–पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दिव्य लोक। इसे अथर्ववेद के इसी विष्णु सूक्त में आगे कहा गया है—

"दिवो वा विष्ण उतवा पृथिव्या महो वा उरोन्तरिक्षात उभाहिहस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्या विष्णवेत्वा अथ० ७।२६।८। शु. यं. ५।१९।।

शतपथ ब्राह्मण में भी यही कहा गया है—

"प्रजापतिरकामयत बहुस्यां प्रजायेति स तपोऽतव्यत स तपस्तप्त्वेमांस्त्रील्लोकानसृजत पृथिवीमन्तरिक्षं दिवमिति ताल्लोकानभ्यतप्तेभ्य स्त्रीणि ज्योतीष्यजायन्त अग्निरेवं पृथिव्या अजायत वायुरन्तरिक्षादिव आदित्य इति तानि ज्योतिष्यभ्यतप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त अग्ने–ऋग्वेदो वायोः जुर्वेद आदित्यात् सामवेद इति शतपथ ब्राह्मणम्।। काण्ड ११ प्रपाठक ४ ब्राह्मण ११।।"

इन तीनों प्रकार के लोको में १ प्रकाश रहित लोक

पृथ्वी आदि (यहाँ अग्नि से ही प्रकाश होता है) २ प्रकाश युक्त लोक अन्तरिक्ष (यहाँ सूर्यचन्द्रादि से प्रकाश होता है। एवं इन सबसे विलक्षण प्रकाशयुक्त दिव्यलोकं (न तद् भासयते सूर्यो न शशाको न पावकः। यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम) इन त्रिविध लोकों की स्थापना की।

अथवा "त्रेधानिदधे पदम्" का अर्थ उन्होंने अचित्-चित्-ईश्वर इन तत्त्वत्रय की स्थापना की। अथवा सत्व-रज तमस्-इन गुणत्रय से जगत् की स्थापना की। अथवा इच्छा-ज्ञान-प्रयत्न-इन तीन कर्तृक धर्मों द्वारा जगत् की स्थापना की। अथवा इस जगत् व्यवस्था के लिये कर्म-ज्ञान-भक्ति तीन धर्मों की स्थापना की। अथवा सर्वव्यापक ज्ञान (सर्वज्ञत्व) सर्वव्यापक शक्ति (सर्वशक्तिमत्व) एवं सर्वदेश व्यापित्व के द्वारा जगत् की स्थापना की। अथवा, भौतिक, दैविक और आध्यात्मिक तीन प्रकार से स्थापना की।

यदि पद का अर्थ शब्द जगत् संचालन (शासन) के लिये शास्त्र (वेद) माना जाये तो 'त्रेधानिक्षधे पदम्' का अर्थ उपरोक्त शतपथ ब्राह्मणोक्त ऋक्‌यजुसाम तीन वेदों की स्थापना की। अथवा प्रत्यक्ष अनुमान आगम इन तीन प्रमाणों की स्थापना की। अथवा सुबन्त-तिन्तङ और अव्यय इन तीन प्रकार के शब्दों की स्थापना की।

"यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परमपुरुषमभिध्यासीत स तेजसि सूर्ये संपन्नः ।" "ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्कवयो वेदयन्ते । तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्यत्च्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ।। प्रश्नो० ।।

"यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।
असच्च यत्र सच्चान्तं स्कम्भं तं ब्रूहिकतमः स्विदेवसः ।।
अथ० १०।७।२०

"त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ।। ब्र. सू १।४।६।।"
"त्रयात्मकत्वातु मूयस्त्वात् ब्र. सू. ।३।१।२।।"
"युव तासां दिव्यस्य प्रशासने विशांक्षयथो अमृतस्यमज्मना
ऋ० १।११२।३।।
"विद्वाँअस्य प्रशासनम्—ऋ० ८।७२।१"
"सा च प्रशासनात् ब्र. सू. १।३।११।।"

"प्रविष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगाय कृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः"
यस्यत्री पूर्णामधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उत्रिधातु पृथिवी मुतद्यामेको दाधार भुवनानि विश्वां ।।
तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यानरो यत्र देवयमो मदन्ति
उरुक्रमस्य हि बन्धुरित्था विष्णो पदे परमे मध्वउत्सः ।।
ऋ० १।१५४।३५।

समूहलमस्य पांसुरे—यह उत्पन्न जगत् इस विष्णु के चरणरज में अन्तर्हित हो गया । अर्थात् विष्णु के अपने चरणरज (सत्व-रज-तम) से इस जगत् की त्रिविध रचना की ।

यह मन्त्र जगत् रचयिता विष्णु वि (उपसर्ग) विशेष-रूपेण, विष्णु (प्रसवने धातु) विशेष रूप से जगत् रचयिता) द्वारा त्रिविध सृष्टि (जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा) का वर्णन है । जो इसके उपरोक्त शब्दार्थों के मनन से स्पष्ट होता है ।

॥ मन्त्र—३ ॥ देवता विष्णुः ॥

त्रिणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ ऋ. १।२२।१८—शु. य. ३४।४३—सा० १६७०—अथ० ७।२६।५॥

शब्दार्था :—

त्रिणि—त्रिभिः । देखें मन्त्र २ का शब्दार्थ ।
अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति ।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः ॥
ऊर्ध्वं सत्त्वं विशालस्तमोविशालश्चमूलतः सर्गः ।
मध्येरजो विशालो ब्रह्मादिस्तम्ब पर्यन्तः सां. कां. ५३—५४
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः ॥ गी० १४।१८

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिसर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभि जानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ गी० ७।१३
पदा–देखें मन्त्र २ की व्याख्या

विचक्रमे–विष्णु–

गोपा–गवांपातीति गोपा । गवा वाणेन पाति रक्षतीति गोपा धनुर्धारी श्रीराम त्राणैकधर्म परिभूषित (श्री राघवेन्द्र) पा रक्षणे (१०५६) वै. म. भा. २ रक्ष्य रक्षेकमादेश्च श्लो० १४

गौः स्वर्गे च बलीवर्दे रश्मौ च कुलिशे पुमान् ।
स्त्री सौरभेयी दृग्वाणदिग्वाग्भू ष्वप्सुभूम्नि च ॥
गायत्र्यामपि गम्भीरे जगत्यां भुवनेजले ।
गो गणेशे च नाके च विपत्यपि पुमानयम् ॥
गः सुमेरौ समाख्यातो गायत्री गीतयो पुमान् ।
गन्धर्वे चापि गः ख्यातो गायके चाभिधेयवत् ॥ मेदिनी ॥
"विश्वकर्मा अजनिष्टः देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीय।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपांगर्भं व्यदधात्पुरुत्रा ॥
शु. य. १७–३२॥

अदाभ्यः—अद्भक्षणे (१०११) हिंस्ये। ।
अतो—देखें मन्त्र १
धर्माणि—धृञ् धारणे । धियन्ते इति धर्मा

धर्मोऽस्त्री पुण्य आचारे स्वभावोपमयोः क्रतौ ।
अहिंसोपनिषन्नाये नाद्यनुयमसोमपे ॥ मे०
धर्माः पुण्ययमन्याय स्वभावाचारसोभषाः । अ. को.
३।३।१२८।

श्रुतिस्त्रीवेद आम्नायस्त्रयी धर्मस्तु तद्विधिः । अ. को.
११।६।१

फलतोपि च यत् कर्म नानर्थे नानुबध्यते ।
केवलं प्रीतिहेतुत्वात् तद्धर्म इति गीयते ।
चोदना लक्षणोर्थो धर्मः । अर्थसंग्रह ।
यतोऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिसद्धर्म— वै. सू. १।१।२।

धारयन्—धृञ् धारणे (९००) शतृ । जब किसी कार्य में समानाधिकरणता या समकालीनता पायी जाती है तब शतृ से निस्पन्न शब्द का प्रयोग होता है । इसमें 'जबकि' का अर्थ विद्यमान रहता है और जिस भाव या विचार को प्रकट करने के लिये समुचे वाक्य की आवश्यता पड़ती है, उसको प्रकट करने के लिये इन शब्दों का प्रयोग होता हैं ।

त्रिणिपादा विचक्रमे—तीन प्रकार से विश्व की अथवा तीनों लोकों की रचना की है जिसका निरूपण उपर शब्दार्थ में किया गया है ।

विष्णुर्गोपा अदाभ्यः—नाश से वाणों द्वारा रक्षा करने-

वाले धनुर्धारी सर्वव्यापक श्रीराम ने (गवा वाणेन पाति रक्षति गोपा) । अतो धर्माणि धारयन्—इसलिये धनुषे (धर्मो धनुः मे०) को धारण किये हुये ।

इस मन्त्र में विष्णु वैष्णवों के देवता श्रीरामजी के आयुध धनुष और वाण दोनों का निरूपण हैं । इस प्रसंग में जगद्गुरु श्री रामभद्राचार्य जी के दो ग्रन्थ श्रीरामचापस्तव तथा श्री रामबाणस्तव अनुसन्धेय हैं जिनके दो एक श्लोक निम्न हैं—

भास्वच्चन्द्रकलाप्राभाशरकुलासृग्लोहितांगबुधं
ध्येयं चित्रशिखण्डजातघटितं वाल्मीकिकाव्यस्तुतम्
मन्दस्यापिगतिप्रदं प्राणमतोबाणं रणे विभ्रते
श्रीरामस्यशरासनाय शिरसिन्यस्येनमस्याञ्जलिम् ॥

भद्रं यच्छति पापमत्ति भणितिं दत्तो यशः पुष्यति
प्रागल्भ्यं विवृणोाति तस्यनुवति स्वं यो नरः सूक्तिभिः ।
यो देवान्विरुणद्धि विप्रकुरुते विप्रान्निगृह्णाति तं
चापं दाशरथेरिति श्रुतवता संसेव्यते तन्मया ।
आस्तान्मिद्रयमादिदिक्पति कुलं तिष्ठन्तु देवास्त्रयो
देवो वा रघुनन्दनौ विहरतु स्वैरं समं सीतया ।
अस्माकंतु शरण्यमस्ति परमं तत्किञ्चन प्राणिनां
कोटिस्पृष्टपयोधिसेतुसलिलैरेनः पुनानं धनुः ॥

(श्रीरा. चा. ८–१०)

निर्भग्नस्ताटकोरस्त्रुटनविगलितासृक्प्रवाहे सुबाहो
वक्षोमध्यं प्रविष्टो दलितखरवसापङ्कदिग्धोज्ज्वलाङ्गः ।
मारीचान्त्रैकहाराभरणकृतरुचिर्बालिहृत्पद्महारी
पौलस्त्यप्राणकुक्षिम्भरिरवतु जगद्रक्षको रामबाणः ॥
(श्रीरामबाणस्तवः ३)

॥ मन्त्र–४ ॥ देवता विष्णुः ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ऋ. १।२२।१९–शु. य ६।४, १३।३३–सा० १६७१–अथर्व० ७।२६।६॥

शब्दार्था :—

विष्णो :—देखें मन्त्र १ का शब्दार्थ । षष्ठी एक वचन'

कर्माणि–डुकृञ् करणे (१४७२) द्वितीया बहुवचन । अनन्त कार्यों का बोधक ।

कर्म क्रिया–अ. को. ३।२।१। कर्माक्षी व्याप्यक्रिययोः ॥ मेदिनी ॥

"कारं कारमलौकिकाद्भुतमयं मायावशात् संहरन्
हारं हारमपीन्द्रजालमिव यत् कुर्वन् जगत्क्रीडति ।

तं देवं निरवग्रहस्फुरदभिध्यानानुभावं भवे
विश्वासैकभुवं शिवं प्रतिनमन् भूवासमन्तेष्वपि" न्या कु.
२।४।

"न प्रयोजनवत्त्वात् । लोकवत्तुलीलाकैवल्यम् । वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वादुपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ॥ सर्व धर्मोपपत्तेश्च । ब्र. सू.
२।१।३२–३६॥

"करुणया प्रवृत्तिरीश्वरस्य" "प्रयोजनत्वाधिकरणम्" स्वार्थमनपेक्ष्य परदुःखप्रहाणेच्छा हि कारुण्यम्–प्र. भा.

"जन्माद्यस्य यतः । शास्त्रयोनित्वात् ॥ ब्र. सू.
१।१।२–३॥"

"सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिज्ञानमपोहनं च।
वेदश्चसर्वैरहमेव वेद्योवेदान्तकृद्वेदविदेवचाहम् ॥
गी० १५।१५"

गतिभर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानंबीजमव्ययम् ॥ गी० ९।१८॥"
लोटोरर्थो वक्तृच्छा विषयत्वम् । इच्छानुकूलकृतिमान्'

लोट्लकार आज्ञा प्रार्थना, मृदुपदेश या मन्त्रणा के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

पश्यत—दृशिर प्रेक्षणे (भ्वा०) इयशब्दस्तु विस्मये। प्रशंसायामपि तथा मेदिनी अव्यय ॥

यतो—यैः (कर्मभि.' । यतः अव्यय । क्योंकि ।

व्रतानि—नियमोव्रतमस्त्री—अ. को. २।७।३७॥" प्रथमा बहुवचन"

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते'
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येमद्व्रतं मम ॥"

पस्पशे त पशबन्धने (१७२०) पसिनासासने (१६१६) बद्धमान्, निर्मितवान्

इन्द्रस्य—इदि परमैश्वर्ये (भ्वा०) । शम–दम उपरति तितिक्षा–श्रद्धा–समाधान–षट् सम्पत्ति सम्पनस्य जीवस्य षष्टी एकवचन ।

युज्यते –योग्य

सखा–अत्यागसहनो बन्धुः सदैवानुगता सुहृत् ।
एक क्रियं भवेन्मित्रं समप्राणा सखास्मृता ॥

विष्णोः कर्मणि, पश्यत–यह विधिवाक्य है । उस विष्णु के अद्भुत कार्यों लीलाओं को देखो । केशव कहि न जाय का कहिए । देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए ।' कोउ कह सत्य झूठ कह कोउ, युगल प्रबल कोउ मानै ।" इस प्रकार के विचित्र सृष्टि रचनाओं को

देखने एवं उस पर विचार कर जगत्स्रष्टा के बुद्धि चमत्कार कला कौशल आदि को देखने का उपदेश है । यह पृथ्वी. सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र विविध प्रकार के जीव, वन पौधे, नदी, सागर, पर्वत आदि उसकी बुद्धि के चमत्कार हैं । यतो व्रतानि पस्पशे—यदि कहा जाय कि यह रचना वैचित्र्य अव्यवस्थित है तो नहीं । ये सभी नियमों से सम्बद्ध है । स्रष्टा के नियम के अनुसार नियमित गति से यन्त्रवत् संचालित हैं एवं उसके नियम से अनुसासित हैं । अतः नियमो से व्यवस्थित हैं । वह स्वयं अपने भी "सकृदेन........व्रतं मम ॥ इस नियम से बद्ध है । इन्द्रस्य युज्यः सखा—यदि कहा जाय कि यह स्त्रष्टा स्वेच्छा चारी शासक के समान क्रर शासक है तो नहीं । यह जीवो का अविच्छेद्य (अभिन्न हृदय) सखा (मित्र) है । समप्राणः सखां स्मृतः । "अन्तः प्रविष्ट शास्ता जनानाम् । यह सुहृद् हृदय में प्रविष्ट होकर जीवों को प्रेरणा देता है । "सद् बुद्धि देता है । रघुवंश विभूषन हैं ।

॥ मन्त्र—५ ॥ देवता विष्णुः ॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः
दिवीव चक्षुराततम् ऋ. १।२२।२०—शु. य. ६।५।
अथ० ७।२६।७—साम० १६७२॥

शब्दार्थाः—

तद्–सर्वनाम । नपुंसक एक वचन मन्त्र ४ में पठित विष्णो–कर्माणि पश्यतयतो व्रतानिपस्पसेपइस्पसेन्द्रस्य युज्यः सखा । लक्ष्मण विष्णु का वाचक सर्वनाम । तदिति परोक्षे विजानीयात् ।

विष्णोः–देखे मन्त्र १ का शब्दार्थ । षष्ठी एक वचन । भगवतः ।

परमं–"ओमेवं परमं मते–अ. को. ३।४।१२॥' चरमं सर्वोत्कृष्टं "

पदं–"ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूय ।

तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृतिः प्रसृता पुराणी ॥ गी० १५।४॥

न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद् गत्वा न निर्वतन्ते तद् धाम परमं मम॥ गी०१५–६
पदगतौ (दिवा०) पद्यते गति गमन–प्राप्ति–ज्ञान–मोक्ष
देखें मन्त्र २ का शब्दार्थ । पदं स्थानं '
वियद्विष्णु पदं वा पुंस्याकाशविहायसी अ. को. १।२।२
विहायसोपि नाकोऽपि द्युरपि स्यात्तदव्ययम् "

विष्णु पदं तु खे । क्षीरोदे च स्त्रियं गडगा रवि सशगान्वित मेदयो मे० खं ब्रह्म–शु. य. ४०।१७॥" आकाशलित्रगात्–ब्र.सू.) १।१।२२

परमे व्योमन्—

पद—देखें मन्त्र २ का शब्दार्थ'

सदा— सर्वदा सदा—अ. को. ३।४।२२

पश्यन्ति- प्राप्नुवन्ति । दर्शनमत्र प्राप्तिरेव । दृशिर प्रेक्षणे (भ्वा.) न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।गी० ११।८

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं का गुणान्वितम् ।

विमूढा नानु पश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषा ।।गी० १५।१०

पराञ्चिखानिव्यतृणत् स्वयं भूः

तस्मात्पराङ् पश्यतिनातन्रात्मन् ।

कश्चिद्धीर प्रत्यात्मानमैक्षत्

आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ।।क० २।१।२।।

सूरयः—विद्वान् विपश्चिदोषज्ञः सन् सुधीः कोविदो बुध

धीरो मेधावी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः

धीमान् सूरिर :कृती कृष्टिर्लब्धवर्णो विचक्षणः

दूरदर्शी दीर्घदर्शी—अ. को. २।७।५—६।।

दिवि-दिवु क्रीडा विजिगीषा व्यवहार द्युति स्तुतिमोदमद स्वप्न कान्तिगतिषु (दिवा० ११०७ (दिव्यति दिवि प्रीणनार्थः भ्वा० ५९२) ।

स्वरव्ययं स्वर्गनाक त्रिदिवत्रिदशालयाः ।

सुरलोको द्यो दिवौ स्त्रियां क्लीबे त्रिविष्टपम् ।।अ को०
द्यो दिवौ स्त्रियांमभ्रं व्योम पुष्करम्बरम् ।
नमोऽन्तरिक्षं गगनमनन्तं सुरवर्त्म खम् ।
वियद्विष्णु पदं वा तु पुंस्याकाशविहायसी ।
विहायसोऽपि नाकोऽपि द्युरपि स्यात्तदव्ययम्
तारापथोऽनन्तरिक्षं च मेघादवा च महाविलम् ।। अ. १।२।१
इव-व वा यथा तथैवेवं साम्ये--अ. को. ३।४।९।।
उपमायां सादृश्ये वा ।

चक्षुः-- चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि । अथां दर्शनेऽपि (अदा.
रूपज्ञान साधनमिन्द्रिया चक्षुः चक्षुरिन्द्रियां तैजसम्

परकायेरूप व्यञ्जकात् । दीपवत् । रूपंमत्र ग्रहे शक्तं चक्षुरिन्द्रियमुच्यते ।

लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी दृग्दृष्टी अ.२।६।९३

बाह्य चक्षुः (लौकिक चक्षुः) अन्तश्चक्षुः (ज्ञान चक्षुः, योगिक चक्षुः ऋतं भरा प्रज्ञा दिव्यचक्षुः

आततम्- अति बन्धने (भ्वा०) अन्तति । अत सात्य गमने (भ्वा०)

लभ्र । आ समन्ता भावेन ।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरय--श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् ने कहा है--

ओउम् तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।

ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञश्च विहिताः पुरा ।।
तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञ दान तपः क्रिया ।
प्रवर्त्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्म वादिनाम् ।।
तदित्यनमि सन्ध्याय फलं यज्ञ तपः क्रिया ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ।।
सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ।।
यज्ञे तपसि दाने च स्थिति सदिति चोच्यते ।
कर्मचैव तदर्थीयं सदित्येवाऽभिधीयते ।।
अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ।। गी० १७।२३-२४

इन श्लोकोक्त "ॐ तत्सद्" पद का निरूपण वा उपदेश इस "तद्विष्णोः परमं पद सदा पश्यन्ति सूरयः" मन्त्र में इस प्रकार हुआ है—"ओमेवं परमं मत—अ० को० ३।४।४२" के अनुसार मन्त्रोक्त 'परम" शब्द से "ओउम" का निरूपण है। तद्विष्णोः शब्द में 'तत्' पद स्पष्ट पठित है ही। 'सदा पश्यन्ति' शब्द में (सद्—आ—पश्यन्ति) 'सत्' पद भी स्पष्ट ही है। अतः तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः" में 'ओउम् तत्सत्" का वैदिक पद्धति से स्पष्ट से प्रतिपादन है। अतः यह उपरोक्त गीता वाक्यों का ज्ञापक है। मन्त्र २ में "ऽधानिदधे पदम्", मन्त्र ३ में 'त्रिणि पदा" कहा गया हैं

वह ओउम्, तत्, सत् इन तीनों में घटित होता है एवं गीतोक्त यज्ञ, दान, तप इन तीनों क्रियाओं में भी घटित होता है। अत एव यह अर्थ प्रकरण और पूर्वापर मात्रों से सम्बद्ध होने से अप्रामाणिक नहीं है। मन्त्र के पाठ क्रमानुसार पहले तत् तब ओउम् तब सत् की सिद्धि होती है इसलिये भी इसे अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि पाठ क्रम से अर्थ क्रम बलवान् होता है—"अर्थ क्रमेण यत्र प्रयोजन वशेन क्रम निर्णयः सोऽर्थ क्रम। सचायं पाठ क्रमा बलवान्॥ अर्थसंग्रह॥" अत एव मन्त्र "तद्विष्णोः' का अर्थ हुआ—विष्णोः (विष्णु के) परमं (ओउम्) तत् (तत्) सत् (सत्) पदं (पद–शब्द को) सूरयः (ज्ञानी लोग) आ (समन्ता भावेन) पश्यन्ति (देखते रहते हैं।)

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीवचक्षुराततम्—वैष्णवों के देवता जो विष्णु हैं उस विष्णु के परम पद (स्थान) अथवा बिष्णु के उस परम स्थान "यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धामं परम मम' को ज्ञानी लोग सर्वदा अपनी ज्ञान दृष्टि या दिव्य दृष्टि से प्रकर्ष रूप से देखते रहते हैं, जिस प्रकार से आकाश में विष्णु के सर्व व्यापक प्रकाश को देखते हैं। भावार्थ जो ज्ञानी लोग दिव्यधाम में स्थित विष्णु एवं आकाश में व्याप्त उनके प्रकाश को देखते हैं। इसी प्रकार सभी लोग प्रभु के सौंदर्य का सर्वदा दर्शन

करते हुये तृप्त हों। कठोपनिषद् में इसे कहा गया है–

"यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥
विज्ञान सारथीर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः।
सोऽध्वनः परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ कठ.
१।३।८--९॥

"तद्विष्णोः परमं पदं" नाम दिव्यधाम साकेत का आचार्यो ने बताया है—

"द्रव्यं रजस्तमः शून्यं सत्त्ववच्चाजडञ्च यत्।
परव्योम इत्येतत्तस्य नाम प्रकीर्तितम् ॥
देवानां पूरयोध्याऽथ "तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
इत्यादि श्रुति वाक्यं हि प्रमाणं तत्र विद्यते ॥ प्रमेय परिशोधिनी सिद्धान्त निरूपण श्लो० २५--२६

इस मन्त्र का तात्पर्य साकेत लोक को सर्वदा ध्यान में रखते हुये उसकी प्राप्ति के लिये सतत प्रयत्न शील रहने में है।

'पदं पद का चरण के अर्थ में इसका तात्पर्य

चरणकमलवन्दौ हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अन्धे को सब कुछ दर्शाई।
बहिरौ सुनै मूक पुनि बोलै रंक चालै शिर छत्र धराई।

सूरदास स्वामी करुणामय बार बार वन्दौ हरिराई ।

अथबा-"भजो मन रामचरण सुखदाई ।।

आ चरणन की चरण पादुका भरत रहे लौ लाई ।

सोई चरणन केवट धोई लीन्हा ।

तब पभु नाव चढाई ।

जा चरणन ते निकसी सुरसरिता" आदि स्तुत्य प्रभु के चरणकमल के ध्यान से है ।

पदं पद का रक्षा के अर्थ में आर्तजनों द्वारा ध्यान करने में तात्पर्य है ।

पदं पद का 'पद्यते ज्ञायते अनेन इति पदं प्रत्यायकं तत् त्रिविधम्-प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्दरूप के अर्थ में इसका तात्पर्य ज्ञानियों द्वारा-"श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो: मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः । मत्वा च सततं ध्येय एते दर्शन हेतवः ।। एवं "आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च । त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञो लभते योगमुत्तमम् के ।। द्वरा "श्रोतरयो मन्तयो निदिध्यासितम्--बृ०।। इस श्रुति उपदेश के अनुपालन में है ।

।। मन्त्र-६ ।। देवता विष्णुः ।।

तद्विप्रासो द्विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।

विष्णोर्यत्परमं पदम् ।। ऋ० १।२२।२१ शु. य ३४।४४-सा० १६७३

शब्दार्थ :—

तद–देखें मन्त्र ५ का शब्दार्थ ।

विप्रासो—विशेषेण भक्ति ज्ञानं सदाचारं च प्रान्ति पूरयन्ति स्वस्मिन् ये ते ।

प्रा पूरणे (भ्वा०) अस गति दिप्त्यादानेपु (भ्वा), अस भूवि (१०६२)

"वीडौसतीरभिधीरा अतृन्तान्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्तविप्राः।
विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य प्रजानन्निता नभसा विवेश ॥
समु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्तविप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥
ऋ. ६।२२।२

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्राबहुधा वदन्त्यग्नियमभातरिश्वानमाहुः ॥
ऋ. १।१६४।४६

विपन्यवो–मेधाविनो । वि विशेषेण, विपरीतेन । पन व्यवहारेस्तुतौ (भ्वा० ४४०) ।

स्तोतारः, भक्तिमन्तः । ऋषि मेधातिथिः ।

जागृवांस–प्रमत्ताः । जागृ निद्राक्षये (अदा०) निद्राशून्या जागृ–मतुय वहुवचन–जागृवन्तः । विगतनिद्रावन्तः ।

"यो जागारतमृचः कामयन्ते यो जागार ततु सामानि यन्ति ।

यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्येन्योकाः ॥

सा० १८२६

या निशा सर्वभूतानां तस्या जागर्ति संयमी ।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

गीता २।६९

मोहनिशा सब सोवनिहारा। देखहि सपन अनेक प्रकारा ॥

यहि निशि यामनि जागहिं योगी। परमारथी प्रपंच वियोगी ।

"मैं विरहिन बन के जांगु जगत सबसोवेरी "मीरा"

"यदा मनः पुरीतति (नाड्या) प्रविशति तदा सुषुप्तिः बदानिः सरन्ति तदा ज्ञानोत्पत्तिः त० सं० दी० ॥"

समिन्धते—सम् सम्यक्प्रकारेण, विधि पूर्वकेण इन्धी दीप्तौ (१४४८)

दीपयन्ति प्रकाशयन्ति भक्तिज्ञानं सदाचारं वा स्वस्मिन्'

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।

श्रद्धा भगश्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥ क० ११।१५१।१

"लट् ॥ यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ? ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा गी० ४।२३७–४।१९,२४ २९–३० ५।१६–१९ १०–११

विष्णो :—परमेश्वरस्य ।

यत्–मन्त्र ५ में पठित तष्णो परमं पदं सदा तपश्यात् सूरयः दिवीवचक्षुराल्ता वाचक सर्वनाम पद । "तत...यत" पारस्परिक अन्य सूचक सर्वनाम संभव है

पदं–परमं—देखें मन्त्र ५ का शब्दार्थ ।

"तकप्रासो बिपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णार्य परमं पदं "–

विष्णु का जो परम पद है उसको विशेष रूप से यथार्थ वर्णन करने वाले मेंधावी स्तुति करनेवाले एवं जागरुक (सावधान) योगी उपासक सम्कक्प्रकार से प्रदीप्त और प्रकाशित करते हैं यहाँ समिन्धते पद से गीता के–

"यस्यसर्वे समारम्भाः काम संकल्प वर्जिताः ।
ज्ञानान्नि दन्ध कर्माणं तमाहुः पडितं बुधाः ।।४।१९।।
ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्मानौ ब्रह्मणा हुतक ।
ब्रकव तेन गातव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना ।।४।२४।।
दैव मेवापरे यतं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्मान्नावपरे यत यज्ञेनैवोपजुठती ।।४।२५।।
श्रोत्रादीनीद्रियाण्यन्ये संयमान्निपु जुहति ।
शदादीविषयानन्य इन्द्रिमरानिपु जुह्वति ।।४।२६।।
सर्वणाद्रिय कर्माणि प्राण कर्माणि चापरे ।
आत्मसयम योगाकनौ जुह्वति कानदीपिते ।।४।२।३७।।

अपाने जुहति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥४।२९॥
अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥४।३०॥

इन श्लोकों में उन भावों का भी ग्रहण होता है । एवं "जागृवांस" पद से साधक सावधान योगी का सतत है । इसका पूरा भावार्थ उपरोक्त शब्दार्थों के मनन से स्वतः हो जायेगा । मीराजी ने "मैं विघन वन के जागूं जगत सब सोवेरी आली कह कर विप्रलम्भ प्रेम के विरह की व्याकुलता जाय शीघ्र मिलन की उत्कट अभिलाषा में प्रवृत्त रहने का जागने का संकेत दिया है ।

हरिः ओउम् तत्सत्

॥ ओउम् शान्तिः ॥

होली

भारतीय राष्ट्रीय पर्वोंमें से एक पर्व होली है । इस को आबाल वृद्ध अमीर से गरीब सब समान रूप से उल्लास के साथ मनाते है । कई व्यक्तियों की गलत धारणा है कि होली निम्न वर्ग–शूद्रों का पर्व है । वस्तुतः यह बुराई के प्रति सच्चाई इमानदारी या अन्याय के प्रति न्याय के विजय का प्रतीक है जो ऐकान्तिक श्रीरामनिष्ठ–

"रामनाम जपतां कुतो भयं
सर्वताप समनैकभेषजम् ।
पश्य तात ! मम गातसन्निधौ
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना"

का विशिष्टोद्घोष करनेवाले, भक्तराज श्री प्रह्लाद जी के चरित व उनके पिता पितृस्वसा चरितानुसन्धान से स्पष्ट है।

आचार्यपीठ–श्री कोसलेन्द्रमठमें यह पर्व विशेष प्रकार से मनाया जाता है । इस वर्ष ता० २८–३–८३ सोमवार को यह उत्सव होलिका-पूजन-दाह तथा श्री रामार्चा महापूजा के साथ अति उल्लासमय वातावरणमें सम्पन्न हुआ दर्शन तथा कथा श्रवण के लिए सैकड़ो व्यक्ति की भीड़ जमी थी । आचार्य पीठ के प्रधानांगभूत श्री रघुवर रामानन्द वेदान्त महाविद्यालय के छात्रोंने कुशलतया सब कार्य सम्पन्न किए ।

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

श्रीहनुमत्संहितान्तर्गतपञ्चमाध्यायस्थ

० अर्थपञ्चक तथा तत्त्वत्रय ०

की

भूमिका

प्रिय सज्जन गण इस अनर्गल मायिक सर्ग में अनादि अविद्या संचित पुण्य पाप रूपी कर्म प्रवाह में पड़े हुए चेतनों के देवतिर्यक स्थावरादि सब देहों से उत्तम एक मनुष्य शरीर ही हैं क्योंकि सबयोनि इसी के किए हुए कर्मों के फल भोगार्थ बनाई गई हैं। अन्य शरीरों की अपेक्षा ऐन्द्रियक सुख प्राप्ति भी इसमें ज्यादे तर हैं। अब विचारणीय यह है कि इस मनुष्य शरीर पाने का मुख्य फल कौन सा है, क्या जो इन्द्रियोंके सुखों को भोग रहे हैं यही है, अथवा अन्य कुछ है। यद्यपि लौकिक जन साधारणतः शारीरिक सुख ही को अर्थात् ऐश्वर्य धनादि पुत्र कलत्रादि लोक प्रसिद्ध सुख प्राप्ति को ही मनुज तन पाने का फल समझते हैं पर विवेकी जन वैषयिक सुख को सुख नहीं समझते है। क्योंकि इन्द्रिय जन्य सुख सब योनियों में वस्तुतः समान ही हैं। जैसे मनुष्य सर्वोत्तम भोजन से रस पाकर सुखी होता है श्वान शूकरादि भी मलिनतर भोजन से वैसा ही सुख पाते हैं। इसी तरह अन्येन्द्रिय सुख भी सबके एक सदृश हैं। इस कारण विषय सुख मनुष्य शरीर का फल नहीं है जैसे कि पूज्यपाद श्री गोस्वामी जी

के रामायण में "इह तन कर फल विषय न भाई" ॥ तस्मात् "अनित्यमसुख लोकमिमप्राप्य भजस्व माम्" और "मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते" इत्यादि भगवद्वचनों से भगवत्प्राप्ति ही इस शरीर पानेस एक मात्र फल माना गया है तन्निमित्त उपाय कर्तव्य है यथा "विचित्रा देह सम्पत्तिरीश्वराय निवेदितुम् पूर्वमेव-मया सृष्टा हस्तपादादिभिर्युता" ॥ जगदीश्वर ने अपने प्राप्त होने के वास्ते मनुष्य शरीर दिया है। श्रुतियों का सिद्धांत है कि ज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती है यथा "ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः' तमेवविदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यते अयनाय वह ज्ञान पंचधा विभक्त है अर्थात् पांच वस्तु हमें जानना चाहिये यथा "प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूप प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः। प्राप्त्युपायं फलं प्राप्ते स्तथाप्राप्ति विरोधि च। वदन्ति सकलावेदाः सेतिहास पुराणकाः"। जिसको हम प्राप्त होंगे उस परब्रह्म का स्वरूप हमें जानना चाहिए, वह कैसा है, कहा रहता है कैसे गुण स्वभाववाला है एक ज्ञान यह है दूसरा ज्ञान प्राप्त होने वाले जीवका स्वरूप जानना हम कौन हैं कैसे हैं किस के हैं यह जानना तीसरा परब्रह्मके प्राप्ति का उपाय क्या है किस उपाय से हमे परमेश्वर प्राप्त होंगे,, यह जानना चाहिए चौथा ज्ञान प्राप्ति के फल को जानना अर्थात् परमात्मा के प्राप्त होने पर हमें क्या फल मिलेगा क्योंकि जो उपाय किया जाता है किसी फल के उद्देश से सब करते हैं इस वास्ते फल के ज्ञान की परमावश्यकता है। पाचवा ज्ञान प्राप्ति

क्रमशः

श्रीसीतारामाभ्यांनमः । श्रीहनुमते नमः ।

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।

ज. गु. श्रीटीलाचार्याय नमः । ज. गु. श्रीमङ्गलाचार्याय नमः

पण्डितसम्राट् श्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठाचार्यनिर्मिते

लघूपासनाङ्गचतुष्टयसङ्ग्रहे

श्रीहनुमल्लघूपासनाङ्गचतुष्टयम्

सर्वसम्पत्प्रदः श्रीमान् हनूमान् सर्वशक्तिकः ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥

प्रकाशकः—पण्डितसम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य

त्रणदेरी श्रीराममन्दिर—शारंगपुर दर्वाजा बाहर

अहमदाबाद—२

प्रति	श्रीरामानन्दसप्तमशताब्दी	मूल्य
५००	सन् १९८३ ईसवी	७५ पैसे

श्रीरामानन्दप्रिन्टिंगप्रेस—अहमदाबाद

पण्डितसम्राट् श्रीवैष्णवाचार्यप्रणीता

श्रीअञ्जनानन्दनपञ्चश्लोकी

नमस्ते नमस्ते महाविघ्नहर्त्रे
नमस्ते नमस्ते महामोहहर्त्रे ।
नमस्ते नमस्ते महानन्ददात्रे
नमस्ते नमस्तेऽञ्जनानन्दनाय ॥१॥

नमस्ते नमस्ते महाशक्तिसिन्धो !
नमस्ते नमस्ते महाशक्तिदात्रे ।
नमस्ते नमस्ते महावेगशालिन् !
नमस्ते नमस्तेऽञ्जनानन्दनाय ॥२॥

नमस्ते नमस्ते महाज्ञानदात्रे
नमस्ते नमस्ते महाभक्तिदात्रे ।
नमस्ते नमस्ते महामुक्तिदात्रे
नमस्ते नमस्तेऽञ्जनानन्दनाय ॥३॥

नमस्ते नमस्ते महासिद्धिसिन्धो !
नमस्ते नमस्ते महासिद्धिदातः ! ।
नमस्ते नमस्ते महादीनबन्धो !
नमस्ते नमस्तेऽञ्जनानन्दनाय ॥४॥

नमस्ते नमस्ते महाब्रह्मचारिन्
नमस्ते नमस्ते महारामभक्त ! ।
नमस्ते नमस्ते श्रितोद्धारकर्त्रे
नमस्ते नमस्तेऽञ्जनानन्दनाय ॥५॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता ।
भवतात्पठनाच्चेयं पञ्चश्लोकी सुखप्रदा ॥६॥

—o—

पण्डितसम्राट् श्रीवैष्णवाचार्यविरचितं

श्रीमारुत्यष्टाक्षरस्तोत्रम्

अञ्जना यस्य माता च पिता यस्य च केसरी ।
श्रीमद्रामस्य दासः स मारुतिः शरणं मम ॥१॥
सिन्धोरुल्लंघको यश्च यश्च लङ्काविदाहकः ।
सीताशोकहरो यः स मारुतिः शरणं मम ॥२॥
सञ्जीवनीहरो यश्च गदापर्वतधारकः ।
लक्ष्मणप्राणदाता स मारुतिः शरणं मम ॥३॥
वज्रजिद् वज्रदेहश्च वज्राघातसहश्च यः ।
प्राप्तदेववरो यः स मारुतिः शरणं मम ॥४॥
वायुजो वायुवेगश्च विघये राममन्त्रदः ॥
श्रीसीतारामभक्तः स मारुतिः शरणं मम ॥५॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
भवतात् पठतां चैतत्स्तोत्रंकल्याणकारकम् ॥६॥

— ० —

ज. गु. श्राटीलाचार्यनिर्मिते प्रबोधकलानिधौ

श्रीवैष्णवलक्षणानि

इष्वासेन तथेषुणा रघुपतेर्बाहू वरं चाङ्कितौ
गात्रं द्वादशभूर्ध्वपुण्ड्रलसितं वृन्दा गले शोभिता ।
सीतारामपदाब्जदास्यपरकं यस्याभिधेयं तथा
श्रीमत्तारकदीक्षितः स पुरुषः पूज्यः सतां वैष्णवः ॥६॥

हृद्ये यद्हृदयाम्बुजे हि सदये सीतापती राजते
भूतानां हितचिन्तको गुरुरतो साध्वर्चको धर्मवान् ।
सन्निष्ठो हरिवासरादिनिरतो यो रामसङ्कीर्त्तको
रामराधनतत्परः स पुरुषः पूज्यः सतां वैष्णवः ॥७॥

— ० —

पण्डितसम्राट्श्रीवैष्णवाचार्यकृतः

श्रीहनुमतप्रातःस्तवः

प्रातर्नमामि पवनात्मजपादपद्मं
पद्मांकुशादिलसितं शुचि कोमलं च ।
रम्यं परं मुनिमनोभ्रमरैः सुसेव्यं
पापापहं च रुजहृत् सुखदं नतानाम् ॥१॥

प्रातर्भजामि पवनात्मजपाणिपद्मं
पादप्रपन्नसुखदं मृदुलोहितं च ।
आलम्बनं च भववारिधिविलुप्तानां
वज्राभया हि गदया च विभूषितं हि ॥२॥

प्रातः स्मरामि हनुमद्वदनारविन्दं
पाथोजपत्रनयनं नयनाभिरामम् ।
मन्दस्मितेन सहितं च विशालभालं
सौम्यं महाद्युतियुतं मधुरस्वनं च ॥३॥

प्रातर्वदामि हनुमानितिनामधेयं
प्राभञ्जनस्य सकलाघहरं शुभं च ।

जप्यं परं निखिलसौख्यकरं पवित्रं
मुक्तिप्रदं सकलदुःखहरं जनानाम् ॥४॥

प्रातः श्रयामि हनुमन्तमहं सुरेड्यं
प्राभञ्जनं पवनतुल्यगतिं कपीन्द्रम् ।
श्रीरामदूतमरिमर्दकमाञ्जनेयं
भक्तिप्रदं च करुणाम्बुधिमार्त्तबन्धुम् ॥५॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
स्तवोऽयं भवताद् भूत्यै सर्वेषां सर्वदा नृणाम् ॥६॥

— ० —

श्रीहनुमत्पूजापद्धतिः ।

ध्याञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥ ध्यानम् ॥

श्रीरामस्य प्रसादो हि भुंक्ते श्रीमरुतात्मजः ।
अतः कपीशपूजायां हरेरर्पितमर्पयेत् ॥

वायुपुत्र महाबाहो यावत्पूजावसानकम् ।
आवाहयामि देवेश मारुते त्वां समर्चितुम् ॥१॥ आवाहनम् ।

नवरत्नमयं दिव्यं चतुरस्रमनुत्तमम् ।
सौवर्णमासनं तुभ्यं कल्पये कपिनायक ! ॥२॥ आसनम् ।

सुवर्णकलशानीतं जलं सुष्ठु सुवासितम् ।
गृह्यतां पादयोःपाद्यमञ्जनानन्दन ! प्रभो ! ॥३॥ पाद्यम् ।

कुसुमाक्षतसंमिश्रं दिव्यार्घ्यं रत्नसंयुतम् ।
ददामि प्रेमतस्तुभ्यं गृह्यतां कपिपुङ्गव ! ॥४॥ अर्घ्यम्
हृद्यं सुगन्धसम्पन्नं शुद्धं शुद्धाम्बुसंस्कृतम् ।
वीरध्वज ! दयासिन्धो ! गृहाणाचमनीयकम् ॥५॥ आचमनम्
नमोऽस्तु वायुपुत्राय भक्तार्त्तिहारिणे सदा ।
मधुपर्कं गृहाणेमं भक्त्या सम्पादितं मया ॥६॥मधुपर्कः ।
मधुना क्षीरदध्याज्यैः शर्करयाऽथ संयुतैः ।
पञ्चामृतैः पृथक् स्नानैः सिञ्चामि त्वां कपीश्वर ! ।७। पञ्चामृतम् ।
सुवर्णकलशानीतैर्गङ्गादिसरिदुद्भवैः ।
शुद्धोदकैः कपीश ! त्वां संस्नपयामि मारुते ॥८॥ शुद्धोदकम ।
दिव्यनगसमुद्भूतं सर्वमङ्गलकारकम् ।
तैलाभ्यङ्गं करिष्यामि सिन्दूरं गृह्यतां हरे ! ॥९॥ सिन्दूरम् ।
ग्रथितां नवभी रत्नैर्मेखलां त्रिगुणीकृताम् ।
दिव्यां मुञ्जमयीं पीतां गृहाण पवनात्मज ! ॥१०॥ मेखला ।
कौशेयं कपिशार्दूल ! रक्तवर्णं सुमङ्गलम् ।
ब्रह्मचारिन ! गृहाणेदं कौपीनं सुमनोहरम् ॥११॥ कौपीनम् ।
ब्रह्मणा निर्मितं सूत्रं विष्णुग्रन्थिसमन्वितम् ।
दिव्यं यज्ञोपवीतं ते ददामि पवनात्मज ! ॥१२॥यज्ञोपवीतम्
पीताम्बरं सुवर्णाभं दिव्यतेजःसमन्वितम् ।
ददामि दिव्यवस्त्रंते गृह्यतां कपिनायक ! ॥१३॥ वस्त्रम् ।
किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलकङ्कणम् ।
गृह्यतां वानराधीश ! रजतस्वर्णभूषणम् ॥१४॥ भूषणम् ।

दिव्यकर्पूरसंयुक्तं चन्दनं सुखवर्धनम् ।

सकुङ्कुमं सुगन्धं च गृह्यतां हरिपुङ्गव ! ॥१५॥ चन्दनम्

चम्पकैःशतपत्रैश्च कुन्दपाटलजातिभिः ।

पूजये त्वां कपिश्रेष्ठ ! सपुष्पैस्तुलसीदलैः ॥१६॥ तुलसीपुष्पे

कल्पद्रुमः कलौ साक्षाद् भक्तानां कार्यसाधक ! ।

नमस्ते वायुपुत्राय ह्यङ्गपूजां गृहाण मे ॥१७॥ अङ्गपूजा

दिव्यं गुग्गुलं साज्यं दशाङ्गं ससुगन्धकम् ।

गृहाण मारुते धूपं सुप्रियं घ्राणतर्पकम् ॥१८॥ धूपम् ।

घृतपूरितमुज्ज्वालं वार्त्तिकर्पूरसंयुतम् ।

दीपं गृहाण देवेश अञ्जनानन्दवर्धन ! ॥१९॥ दीपम् ।

शाल्यन्नं मोदकं दिव्यं शाकपूपसमन्वितम् ।

पायसं दधिसाज्यं च नैवेद्यं गृह्यतां हरे ! ॥२०॥ नैवेद्यम् ।

शीतलं स्वादु शुद्धं च पुष्पादिवासितं कपे !।

पानीयं पावने दिव्यं स्वीकुरु त्वं दयानिधे ! ॥२१॥ जलम् ।

फलं नानाविधं स्वादु पक्वं शुद्धं सुशोधितम् ।

समर्पितं मया नाथ ! गृह्यतां कपिनायक ! ॥२२॥ फलानि।

वायुपुत्र ! नमस्तुभ्यं सरयूदिव्यवारिणा ।

हस्तक्षालनपूर्वं हि स्वीकुर्वाचमनीयकम् ॥२३॥ आचमनम्

ताम्बूलं भगवद्भोग्यं मुखसौगन्धकृद्वरम् ।

आञ्जनेय ! महाबाहो ! ताम्बूलं गृह्यतां कपे ! ॥२४॥ताम्बूलम्

घृतवर्त्तिसकर्पूरं चन्द्रसूर्याग्नितेजसम ।

नानाज्योतिर्मयं दिव्यं संगृहाणार्त्तिकं हरे ! ॥२५॥ आरार्त्तिकम्
यथर्त्तुसम्भवैः पुष्पैर्भक्त्याऽर्पितं च मारुते ।
पुष्पाञ्जलिमहं दद्मि संगृहाण कपीश्वर ! २६॥ पुष्पाञ्जलिः
यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु हनूमतः प्रदक्षिणात् ॥२७॥ प्रदक्षिणम्
नमस्तेऽस्तु महावीर ! नमस्ते वायुनन्दन ! ।
विलोक्य कृपया नित्यं त्राहि मां भक्तवत्सल ! ॥२८॥ नमस्कारः
वायुपुत्र ! महाबाहो ! भक्तरक्षार्थतत्पर ! ।
सर्वाभीष्टं प्रयच्छ त्वं प्रसन्नो भव मारुते ! ।२९। अभीष्टयाचना
उपलब्धोपचारैर्हि त्वदर्चनं मया कृतम् ।
तत्सर्वं पूर्णतां यातु ह्यपराधं क्षमस्व मे ॥३०॥ अपराधक्षमापनम्
सीतारामकृपापात्र ! मर्कटेन्द्र दयानिधे ! ।
रामपादाब्जभक्तिं मे देहि गच्छ कपीश्वर ! ॥३१॥ विसर्जनम्
इति लघुश्रीहनुमदुपासनाङ्गचतुष्टये प्रथममङ्गम् ॥१॥

— ० —

श्रीटीलाद्वारपीठाचार्य ज० गु० श्रीमङ्गलाचार्यमहामुनीन्द्रकृता

श्रीहनुमत्प्रपत्तिः

भक्तिज्ञानबलाम्बुधिः करणजिद् भक्तिप्रदो विघ्नहा
वीराणां सुशिरोमणिः सुरनुतः श्रीराममन्त्रप्रदः ।
वज्राङ्गश्च मनोजवः पवनजः श्रीजानकीशोकहृद्
दासः श्रीरघुनायकस्य हनुमान् पायादपायात् सदा ॥१॥

(प्रपत्तिपञ्चकम्)

श्रीटीलाद्वारपीठसंस्थापकाचार्यजगद्गुरुश्रीटीलाचार्यकृतः

कर्त्तव्योपदेशः ।

स्वाध्यायःसमधीयतामुपकृतिः कार्योऽनृतं नोच्यतां
हिंसा नैव विधीयतामसुमतां शीतादिकं सह्यताम् ।
सत्सङ्गः क्रियतां तथा सुकृतिभिःकाम्या कृतिस्त्यज्यतां
पापेभ्यश्च विरम्यतामसुखहृद् रामः समाश्रीयताम् ॥१४॥

(प्रबोधकलानिधि)

पण्डितसम्राट् श्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम्

श्रीहनुमत्कवचरत्नम् ।

सर्वदा हनुमान् पातु सायं प्रातरहर्निशम् ।
स्वप्ने जागरणे चाथ सुषुप्तावपि सर्वथा ॥१॥

रामभक्तोऽवतु प्राच्यां प्रतीच्यां पातु मारुतिः ।
अवाच्यां यक्षहन्ता चोदीच्यां सञ्जीवनीहरः ॥२॥

कपीशः पातु चैशान्यामाग्नेय्यामग्निवर्णकः ।
रक्षोघ्नःपातु नैर्ऋत्यां वायव्यां पातु वायुजः ॥३॥

तनुं महातनुः पातु यशः पातु महायशाः ।
मतिं महामतिः पातु बलं पातु महाबलः ॥४॥

पृष्ठेऽग्रे दक्षिणो वामे पातु लङ्काविदाहकः ।
ममसर्वं च मां पायादाञ्जनेयो गदाधरः ॥५॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
पठानाद धारणाद वाऽस्तु कवचं विघ्नवारकम् ॥६॥

इतिलघुश्रीहनुमदुपासनाङ्गचतुष्टये द्वितीयाङ्गम् ॥७॥

— ० —

आनन्दभाष्यकारजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्ययतिराजकृत:

श्रीहनुमज्जयन्तीव्रतनिर्णय:

स्वात्यां कुजे शैवतिथौ तु कार्त्तिके
कृष्णेऽञ्जनागर्भत एव मेषके ।
श्रीमान् कपीट् प्रादुरभूत् परन्तपो
व्रतादिना तत्र तदुत्सवं चरेत् ॥ ३१॥

(श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर:)

आनन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यमतम्

अद्वैतं हि विशिष्टयोरभिमतं चाकार्यकार्येशयो–
रद्वैतं तु मतं न जीवपरयोर्जीवा विभिन्ना मिथ: ।
सद्विश्वं च परेश्वरो रघुपतिर्भक्त्यैव मुक्तिस्तथा
रामानन्दजगद्गुरोरभिहितं चैतन्मतं वैदिकम् ॥१॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
रामानन्दमतंभूयात् सर्वकल्याणकारकम् ॥२॥

--- o ---

पण्डितसम्राट् श्रीवैष्णवाचार्यप्रणीतं

श्रीमारुतिनामशतकम् ।

मारुतिर्मारुतिश्चाञ्जनानन्दनो
मारुतिर्मारुतो रामनिष्ठोत्तम: ।
मारुतिर्मारुती रामभक्तोत्तमो
मारुतिर्मारुती रामसङ्कीर्त्तक: ॥१॥

मारुतिर्मारुतो रामसेवारतो
मारुतिर्मारुती रामसंस्तावकः ॥१॥

मारुतिर्मारुती रामचन्द्रार्पितो
मारुतिर्मारुतिः केसरीनन्दनः ॥२॥

मारुतिर्मारुति र्लङ्किनीघातको
मारुतिर्मारुति र्भूमिजाऽन्वेषकः ।

मारुतिर्मारुतिर्मुद्रिकादायको
मारुतिर्मारुति र्भूमिजास्तावकः ॥३॥

मारुतिर्मारुती रामसन्देशदो
मारुतिर्मारुतिश्चाक्षसंहारकः ।

मारुतिर्मारुतिःश्रीसमीरात्मजो
मारुतिर्मारुति र्देववृन्दस्तुतः ॥४॥

मारुतिर्मारुतिः स्वास्थ्यसंरक्षको
मारुतिर्मारुतिः शक्तिसंवर्धकः ।

मारुतिर्मारुतिर्विघ्नसंहारको
मारुतिर्मारुतिःसर्वकल्याणकृत् ॥५॥

मारुतिर्मारुतिश्चात्मबोधप्रदो
मारुतिर्मारुतिश्चाज्ञतानाशकः

मारुतिर्मारुती रामबोधप्रदो
मारुतिर्मारुती रामभक्तिप्रदः ॥६॥

मारुतिर्मारुतिः सत्समृद्धिप्रदो
मारुतिमारुतिःसर्वसिद्धिप्रदः ।

मारुतिर्मारुती राममन्त्रप्रदो
मारुतिर्मारुतिर्नित्यमुक्तिप्रदः ॥७॥
मारुतिर्मारुतिर्भूमिजाशिष्यको
मारुतिर्मारुतिर्ब्रह्मणः सद्गुरुः ।
मारुतिर्मारुतिर्ब्रह्मणा संस्तुतो
मारुतिर्मारुतिर्भक्तसंरक्षकः ॥८॥
उल्लंघितसमुद्रश्च लङ्कायाः सम्प्रदाहकः ।
सञ्जीवनीहरो रक्षेल्लक्ष्मणप्राणरक्षकः ॥९॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितः ।
स्तवोऽयं भवतात् पाठात् सर्वकल्याणकारकः ॥१०॥
इतिलघुश्रीहनुमदुपासनाङ्गचतुष्टये चतुर्थमङ्गम् ॥४॥

--- ० ---

गीतानन्दभाष्ये श्रीरामानन्दपरम्परा ।

श्रीरामं जनकात्मजामनिलजं वेधोवशिष्ठावृषी
योगीशं च पराशरं श्रुतिविदं व्यासं जिताक्षं शुकम् ।
श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यान् यतीन्
श्रीमद्राघवदेशिकं च वरदं स्वाचार्यवर्यंश्रये ।

---०---

श्रीमारुतिपञ्चकम् ।

यो वै वीरशिरोमणिर्गरुडजिद् यो रामभक्तिप्रदो
यो वै श्रीविधये च राममनुदो विश्वं विधातुं शुभम् ।

यो गौ वज्रतनुर्गदागिरिधरः श्रीलक्ष्मणप्राणदो
रामब्रह्मपरायणः स भगवान् श्रीमारुतिः पातु माम् ॥१॥
भक्तानां सुखकारकः सुमतिदः शक्रादिदेवैः स्तुतो
यश्चागाधबलाम्बुधिः सुमतिमान् वारांनिधेर्लङ्घकः ।
वैदेहीसुखदो महाकृतिकरो लङ्कापुरीदाहको
रामब्रह्मपरायणः स भगवान् श्रीमारुतिः पातु माम् ॥२॥
दुष्टानां भयदायकः कुमतिहृद् यो रामदूतः सुधी–
र्बाधाबाधकरः पिशाचभयहृद् यो रक्षसां घातकः ।
सद्धर्माब्जविकासकः स्वरकरो यो धर्मविद् भास्करो
रामब्रह्मपरायणः स भगवान् श्रीमारुतिः पातु माम् ॥३॥
श्रीमदवायुजवश्च वायुसुखदः श्रीरामदासो बुधः
श्रीसम्पादितसम्प्रदायजलधेर्यश्चन्द्रवद् वर्धकः ।
सद्धर्मव्यसनापसारणमखे यो दीक्षितोऽहर्निशं
रामब्रह्मपरायणः स भगवान् श्रीमारुतिः पातु माम् ॥४॥
सायुज्याध्वनिदर्शको भवहरः सद्भक्तितो मुक्तिकृद
यो रामस्य सुकिङ्करो हितकरश्चाभीष्टकल्पद्रुमः ।
यो निर्दोषगुणाम्बुधिः करुणया सम्पूजितः सर्वदो
रामब्रह्मपरायणः स भगवान् श्रीमारुतिः पातु माम् ॥५॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम्
पञ्चकं पठतां भूयात् सर्वकल्याणकारकम् ॥६॥

—○—

पण्डितसम्राट् श्रीगौष्णवाचार्यकृतः

श्रीपवनतनयस्तवः ।

जगद्वन्द्यैर्वन्द्यं प्रखरमतिदं नित्यसुखदं
कृपापारावारं स्वजनभयनाशैकनिपुणम् ।
सदा सत्त्रातारं निशिचरमतीनां सुहतकं
हनूमन्तं वन्दे पवनतनयं भक्तसुखदम् ॥१॥

बलिष्ठं धर्मिष्ठं सुरगणवरिष्ठं सुकृतिनं
क्रियानिष्ठश्रेष्ठं, गुणिगणवरिष्ठं गुणनिधिम् ।
भवाब्धौ मग्नानां दुरितदलनं दुःखशमनं
हनूमन्तं वन्दे पवनतनयं भक्तसुखदम् ॥२॥

गदाद्र्योर्धर्त्तारं भजनमतिकर्त्तारमनिशं
प्रणामात् तुष्यन्तं परमसुखयन्तं कपिवरम् ।
सुसम्पद्दातारं सुजनविपदामाशुहरणं
हनूमन्तं वन्दे पवनतनयं भक्तसुखदम् ॥३॥

महाधीरं वीरं भवभयहरं भक्तिसुलभं
महाबुद्धिं वेगे त्वधिकसमभावेन रहितम् ।
गुणानां सत्सिन्धुं सुरमुनिनुतं दोषरहितं
हनूमन्तं वन्दे पवनतनयं भक्तसुखदम् ॥४॥

गुणानामाख्याने प्रभवति न यस्य श्रुतिचयो
न वा ब्रह्मा शम्भुर्नच गणपतिर्नो सुरगु ।
भजन्तं रामं तं विबुधगणपूज्यं सकलदं
हनूमन्तं वन्दे पवनतनयं भक्तसुखदम् ॥५॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितः ।
स्तवोऽयं पठतां भूयाद् भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥६॥

— ० —

जगद्गुरुश्रीश्रियानन्दाचार्यसिद्धान्तविजयिकृतः

भक्तचिन्तामणिस्तवः

कुर्वे प्रणम्य सीतेशं व्यासं बोधायनं तथा ।
पूर्णानन्दं गुरुं नत्वा भक्तचिन्तामणिस्तवम् ॥१॥
स्वस्य चाव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवनात् ।
लभ्यते यश्च तं रामं भक्तचिन्तामणिं भजे ॥२॥
स्वात्मनिवेदनाच्चाथ कर्मज्ञानाङ्गिभक्तितः ।
लभ्यते यश्च तं रामं भक्तचिन्तामणिं भजे ॥३॥
आवेश्य श्रद्धया चित्तं नित्ययुक्तैरुपासनात् ।
लभ्यते यश्च तं रामं भक्तचिन्तामणिं भजे ॥४॥
श्रवणात् कीर्त्तनात् स्तोत्राद् यतनाच्च दृढव्रतैः ।
लभ्यते यश्च तं रामं भक्तचिन्तामणिं भजे ॥५॥
यजनाद् भजनाच्चाथ नमनान्मननात् तथा ।
लभ्यते यश्च तं रामं भक्तचिन्तामणिं भजे ॥६॥
भक्त्यैवानन्यया भक्तैर्ज्ञायते दृश्यते तथा ।
लभ्यते यश्च तं रामं भक्तचिन्तामणिं भजे ॥७॥
सिद्धान्तचक्रवर्त्तिश्रीश्रियानन्दार्यनिर्मितः ।
पठतां भक्तिदो भूयाद् भक्तचिन्तामणिस्तवः ॥८॥

जगद्गुरुश्रीश्रियानन्दाचार्यसिद्धान्तविजयिनिर्मितं

श्रीहनूमदष्टकम्

पोक्षो यद्भनजाद् यश्च जगज्जन्मादिकारणम् ।
ब्रह्मणस्तस्य दासं हि हनूमन्तमहं भजे ॥१॥
शास्त्रयोनिस्तथा यश्च सर्वश्रुतिसमन्वितः ।
दासं तस्याखिलेशस्य हनूमन्तमहं भजे ॥२॥
सञ्जीवनीं समानीय लक्ष्मणरक्षकश्च यः ।
श्रीमद्रामस्य दासं तं हनूमन्तमहं भजे ॥३॥
उल्लंघ्य वारिधिं येन लङ्का हि भस्मसात् कृता ।
अद्वितीयं बले तं च हनूमन्तमहं भजे ॥४॥
अन्वेषकश्च सीतायाः श्रीरामस्य च तोषकः ।
बलाब्धिं वज्रदेहं तं हनून्तमहं भभे ॥५॥
भक्तानां रक्षको यश्च राक्षसघ्नः समीरजः ।
अञ्जनानन्दनं च हनूमन्तमहं भजे ॥६॥
युद्धे विजयदाता यः कर्त्ता च मङ्गलस्य यः ।
सर्वविघ्ननिहन्तार हनूमन्तमहं भजे ॥७॥
रामभक्तिप्रदो यश्च बुद्धिदः सिद्धिदस्तथा ।
भजनीयं वरं तं च हनूमन्तमहं भजे ॥८॥
पूर्णानन्दार्यशिष्येण श्रियानन्देन निर्मितम् ।
हनूमदष्टकं भूयात् तोषकं श्रीहनूमतः ॥९॥

हवनात्मक लघु रुद्र यज्ञ

[पुरु]षोत्तम मासके उपलक्ष्य में पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दपीठा-
[धीश] स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य जी के तत्वावधान में श्रीरामानन्द
[श्री]कोसलेन्द्रमठ में दि० १२-३-८३ शनिवार के दिन हव-
[नात्म]क लघु रुद्र यज्ञ का आयोजन किया गया था। जिसमें
[आचा]र्य प्रसिद्ध मीमाँसक कर्मकाण्डी श्री हीराभाई शास्त्री तथा
[आचा]र्य श्री शरच्चन्द्र शास्त्र थे, मुख्य जयमान श्री महेन्द्रकुमार
और सेठ श्री रघुनाथ बाबचन्द तन्ना तथा श्रीरामजी भाई
श्री केशवभाई थे। दर्शनार्थियों की अपार भीड़ जमी थी
६-३० बजे पूर्णाहुति हुई, सानन्द सब कार्य सम्पन्न हुए।

वार्षिकोत्सव

आचार्यपीठ श्रीकोसलेन्द्रमठ का उद्देश्यपूरक मानव मात्र
[से]वा में संलग्न धर्मादा श्रीयोगेश्वर औषधालय की स्थापना
[म]शिवरात्री के पुण्य पर्व के दिन सन ७७ में हुई थी तब से
[अब] तक हजारों दर्दियों ने इस से लाभ उठाया है। यहाँ अनु
[भवी] वैद्य व डाक्टर निःशुल्क सेवारत हैं। अन्यत्र से निरास हो
आए दर्दी कुछ दिनोंमें अछे हो जाते हैं।

डाक्टरों का सम्मान

इस औषधालय में निःशुल्क भाव से सेवा कर रहे अति
[अनुभवी] कुशलचिकित्स का डा० श्री भरत....तथा डा० श्री....

का 'श्रीयतीन्द्र पदकम्' के द्वारा दि० १२-३-८३ को विशिष्ट सम्मान किया गया। पदकों की व्यवस्था दानवीर सेठ श्रीरघुनाथ वावचन्द तन्ना २७-२८ दत्त सोसायटी-अहमदाबाद—के तरफ से थी। अन्य पूर्व सेवानिवृत डाक्टरों का भी फूलहारों से सम्मान किया गया। औषधालय को विशेष सहायता के रूप में सेठ श्रीरघुनाथ वावचन्दतन्ना ने रु० ५०१ श्रीमनुभाई शुक्ल ने ३१ तथा श्रीअशोककुमार व्यास ने ३१ प्रदान किए। यह स्मरणीय है कि श्रीरघुवररामानन्द वेदान्त महाविद्यालय को प्रति माह नियमित रूप से ३५० तीन सौ रुपये दानवीर सेठ श्रीरघुनाथ वावचन्द तन्ना २७-२८ दत्त सोसायटी के तरफ से सहायता मिलती है।

मुद्रकः—श्रीरामानन्द प्रिंटिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद-२२

त्रिदण्डि संस्थान श्रीशेषमठ—धर्मप्रचार विभागसे धर्मप्रचारार्थ प्रकाशित

प्रेषक—श्री कोसलेन्द्र मठ सरखेज रोड
पो० पालड़ी, अहमदाबाद—३८० ००७
ग्राहक श्रा. नं.
प्रति श्रा. ......

वाराणसीस्थ आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यपीठाचार्य

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य-राम प्रपन्नाचार्य

योगीन्द्र प्रवर्तित विश्राम द्वारकास्थ श्री [illegible]मठ संचालित

ज.गु. श्री रामानन्दाचार्य-पीठ

सचित्र धार्मिक मासिक

संरक्षक- सेठ श्री अमरशी कुरजी मजिठिया

सम्पादक- स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य

सहसम्पादक- पं. शरच्चन्द्र शास्त्री

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन् ।

आनृशंस्यपरो राजन् कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥

(श्रीशुकदेवजी)

कार्यालयः श्री कोसलेन्द्र मठ, सरखेज रोड, पालड़ी,

अहमदाबाद-३८०००७

वर्ष ५ विक्रमाब्द २०४० अंक ३

१ मई १९८३

श्रीरामानन्दाब्द ६८३
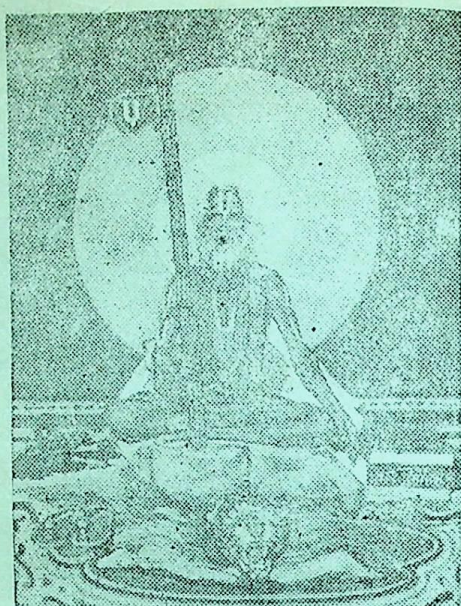
९० वीं आचार्य जयन्ती

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र

अनन्त श्रीविभूषित आचार्य श्री का अविर्भाव विक्रम सम्वत् १९४९ के चैत्र शुक्ल श्री रामनवमी के दिन हुआ था। अतः आप श्री की ९० वीं जयन्ती विशेष समारोह के साथ मनाई गई। आचार्य श्री वर्तमान में प्रधान आचार्य पीठ वाराणसी (काशी) में विराजमान हैं। अतः पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्द पीठ श्रीशेषमठ तथा श्री कोसलेन्द्र मठ आदि कई स्थानों में आप श्री की प्रति कृति की षोडसोपचारपूजन–आरती–स्तुती आदि के साथ मंगलाभिषेक सम्पन्न हुआ, पीठ स्थली काशी में अनेक लोगों ने आप श्री की सविधि पूजा प्रार्थना कर आप श्री से आशीर्वाद प्राप्त कर कृत कृत्यानुभव किये।

श्री रामानन्दसम्प्रदाय के ४० वें

आचार्य

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्य जी योगीन्द्र
आविर्भाव श्रीरामनवमी सम्वत् १९४९ ।

आविर्भावस्थान वाराणसी (काशी)

आचार्यपीठस्थल वाराणसी (काशी)

वाराणसी अनादिकाल से भारतीय संस्कृति का उद्घोषक नगर रहा है । विभिन्न मत–समप्रदाय तभी पल्लवित हो पाये जब उनकी विचारधारा एवं दर्शन को इस पूनीत नगर का समर्थन मिल गया । यो भी वाराणसी भगवान् शंकर की नगरी है और वे विश्वनाथ हैं । विश्वनाथ का अनुशासन जिसतरह विश्व के लिये अनिवार्य है, हिन्दु जगत के लिये वैसे ही यहाँ के धार्मिक अनुशासन मान्य हैं । रामनाम के प्रभाव से मुक्तिप्रदायी जिस नगरी के चरण कमलों को हरिपदनिःसृता श्री भागीरथी पखार रही हैं । देवभाषाविज्ञ धुरन्धर विद्वान् जिसके क्रोड को सदैव से शोभित करते आये है और जिसके गोद–प्रदेश में ज्ञान-कर्म एवं भक्ति के चमकते रत्न सदैव से शोभित रहे हैं और आज भी है–ऐसी प्रभावशालिनी गरिमामयी है हरपुरी काशी ।

इसी प्रवित्र नगरी में कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल की श्रीविश्वंभर प्रसाद नामक एक व्यक्ति रहती थी। पंडीतजी के आचरणों से पास पड़ोस के विभूति सभी आनंदित थे। इन द्विज देव की पत्नी श्रीगुलोबदेई जी वडी ही सुशील एवं पतिपरायण थीं। संसार में प्रायः ऐसा देखा गया है कि सत्यमार्ग के अनुगामियों को कठिनाइयों से दो-दो हाथ करने ही पड़े हैं। युग ही कुछ ऐसा है कि परोपकार तथा दयालुता की भावनाओं से भरे हुये व्यक्ति कों लोग अव्यवहारकुशल समझते हैं और अपनी चिकनी चुपडी बातों से ऐसे सरल हृदय दयालु महानुभावों को बनाकर येन केन प्रकारेण अपना उल्लू सीधा करके "उसे 'मूर्ख' बना दिया" ऐसे विचार लिये मूछों में हो हंसते हैं। पण्डित विश्वंभर प्रसाद जो ऐसी ही विभूति थे और भगवान् की इतनी कृपा थी कि सरलता के साथ साथ सहनशीलता भी उन में घर किये थे। पत्नी गुलाबदेई भी सदैव पति के अनुकूल थीं अतः गृहस्थरथ के पहिये सुदृढ़ थे। आर्थिक स्थिति का मार्ग यद्यपि चाटुकार-विघ्नों की उपस्थिति से भयावह हो उठा था फिर भी जीवन यात्रा चल रही थो।

पण्डित श्रीविश्वम्भर प्रसाद आनंदवर्धन के इसो शान्त परिवार में एक की संख्या बढ गई। रामनवमी संवत् १९४९ के के दिन माता गुलाबदेई के कुक्षि से एक शिशु का जन्म हुआ। वस्तुनः तो काशो की मुक्त आत्माएं भी कभी कभी संसार के

दर्शन के लिये कलेवर धारण करती हैं। यह शिशु किसी ऐसी ही आत्मा का प्रतीनिधित्व करता था। बालकपन में सोते समय माँ बालक के शरीर को विभिन्न योगासनों में पाती थी—तब उसे ऐसा लगता था मानों कोई योगिराज गहरी समाधि में हो। प्रारंभ ही से उदासीनत्व बालक की अभिरुचि बन गया था। माता के स्नेह से भी उसमें परिवर्तन न आ सका। परिवार श्र वैष्णव था और काशी नगरी में राम नाम का तो सर्वत्र प्रभुत्व है ही अतः नामकरण के समय जन्म को तिथि रामनवमी तथा राम-नाम के प्रति निष्ठा रखनेवाले पिता ने राशि के अनुसार बालक का नाम रामप्रसाद रक्खा। माता—पिता को क्या पता कि यह मुक्तात्मा भगवान् श्रीराम की प्रेरणा-प्रदान से ही उनके घर खेल रही थी। ८ वर्ष की वय में यज्ञोपवीत प्रदान करके बालक जैसे ही द्विजत्व का अधिकारी हुआ उसे संस्कृत शिक्षण देना प्रारम्भ हुआ घर के धार्मिक संस्कारों को छाप बालक पर पड़ हो रही थी। माताजी के साथ नित्य श्रीभागीरथी का स्नान करके विश्वनाथ दर्शन करना। भगवान् श्रीराम जी की कथा कहानी के रूप में माँ के मुख से सुन कर शुद्ध-सरल बुद्धि बालक माँ का मुख देखता रह जाता मानो उसका मन कहीं खो गया हो। उसे श्रीहनुमान् जी की सेवा भक्ति बहुत ही प्रिय लगती और धीरे—धीरे वह उसके जीवन में उतर गई।

११ वर्ष की उमर में एक दिन बालक को अचानक भग-

वन्मदिर से लौटते हुए अनजान में सरलचित्त लोग जैसे सन्तों से भयभीत हो उठते हैं वैसी ही कुछ दशा बालक रामप्रसाद की हुई। कपिकेशरीकिशोर की करुणा–केलि तो देखिये कि बालक के मार्ग में एक छोटे से बन्दर के रूप में उसके समक्ष आकर बालक के हौसले को पस्त करने के लिये अपना स्वरूप बढ़ाते चले गये। 'कीडी को मरन खेल बालकन कैसो है' के अनुसार बालक इस विशालता को प्रत्यक्ष देख बेसुध हो गया। घर पर पहुंचाये जाने पर और उपचार आदि के पश्चात् चेतनाका संचार हुआ तो बालक को भयभीत समझ माता ने अनेक विधि से समझाया। माता के यह कहने पर कि यह तो श्रीहनुमान् जी तुझे दर्शन दिये हैं। उनसे डरना क्या क्योंकि उनका तू भक्त है। श्री हनुमानजी अपने भोलेभक्तों को कभी नहीं सताते। वे तो अत्यन्त दयालु हैं। इन बातों से बालक को विश्वास हो गया कि उसे श्रीहनुमान् जी ने दर्शन दिये हैं क्योंकि उन्होंने सुरसा के समक्ष अपना शरीर देखते देखते ही बढा दिया था और माता जानकी को भी 'कनक भूधराकार शरीरा' स्वरूप के दर्शन कराये थे। जाने अनजाने भी जिसे रामभक्त श्रीहनुमान् जी के दर्शन हो जाते है वह अनायास ही श्रीरामभक्ति–प्राप्ति का अधिकारी हो जाता है।

बालक कुछ और बडा। १३ वर्ष की वय। माता के अवसान से वह अवसन्न रह गया। संसार को बालक ने एक ही

मूर्ति में साकार कर रखा था और वह वस्तु थी उसकी मां। माँ की मृत्यु ने घर से ही नहीं संसार से भी चित्त में उचाट कर दिया। बालक रामप्रसाद भगवान् बुद्ध की तरह अपने पिताजी तथा अनुज श्रीलक्ष्मणप्रसाद को सोता छोड कर ही घर से निष्क्रमण कर गया। गाँव के दो अन्य बालक मित्र जिनके नाम श्रीकन्हैयालाल एवं श्रीकुबेर थे उसके सहयात्री बने। इस प्रकार "तीन टिकिट महाविकट" के सदृश ये नन्हें सुकुमार बालक विशाल अनजान संसार को नापने निकल पडे। 'जब जेहि जस रघुपति करहिं, सो तस तेहि क्षण होहि"।

गङ्गासागर पहुंच कर वे बडे दुखी हुए। बालक समझ कर लोगों ने उन्हें अपने जाल में लेने का प्रयत्न किया परन्तु 'सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू–बड रखवार रमापति जासू' के अनुसार वे अपने को सुरक्षित बनाये रहे। धनाभाव से अत्यन्त पीडित होकर और साथ के मित्रों को घर लौट जाने को उत्सुक समझ श्रीरामप्रसाद ने उन्हें पेडे लाकर खिलाये और हावडा के स्टेशन से उन्हें आश्वासन देकर तथा लौटने को टिकिटकरवा के उनसे अन्तिम विदाई ली। सच है ये तो नन्हें बालक थे। संसार की चमक दमक बड़ों बडों को धोखा दे देते है। विरले ही श्रीरामप्रसाद जैसे दृढनिश्चयी होंगे जो रक्खे हुए कदम को पीछे नहीं हटाते।

हावड़ा में मित्रों को विदाकर बालक रामप्रसाद श्रीजगदीश-पुरी की ओर चल पड़ा। धनाभाव से पीड़ित उसे अपने वस्त्रा-भूषण भी बेचने पड़े। एक पण्डे को वह अपने सभी आभूषण दे दिया। धन जो प्राप्त हुआ उससे श्रीरामेश्वरम् में थे।

भगवान् श्री राघवेन्द्र सरकार अत्यन्त कौतुकी हैं। उन्हें इस मुक्तात्मा के साथ केलि की सूझी। रामेश्वर दक्षिण प्रदेश। बोली भाषा से अपरिचय। बालक समझकर उसकी बात पर कोई ध्यान ही न दिया। भोजन प्राप्ति भी कठिन। जिमि शिशुतन व्रण होइ गुसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं॥ भगवान् की यह निष्ठुर योजना बालक रामप्रसाद का हृदय तोड़ने लगी। उसे भी घर की याद आई। घर जाने का विचार एक क्षण के लिये ही मस्तिष्क में आया परन्तु वह तुरन्त एक विस्मृत सूत्र को स्मरण कराके चला गया। रामप्रसाद को स्मरण आया कि माँ कहा करती थी कि बेटा कभी साधु न बनना और यदि बनो तो पक्के बनना। रामेश्वरम् में मानो माँ ने उसे अपने सही मार्ग से विचलित होते हुए बचा लिया। क्वचिदपि कुमाता न भवति।

माता के उक्त वचनों के स्मरण मात्र से बालक में एक विचित्र शक्ति का उदय हुआ और इसने उसी प्रवाह में अपने पिता को पत्र लिख दिये कि आप मुझे पाने को आशा न करें। पिता के लिये एक पुत्र ही बहुत है। सो लक्ष्मण है ही। मुक्तात्मा का

कौन पिता और कौन माता ? सभी के लिए ईश्वराराधन श्रेयस्कर है अतः वही मार्ग श्रेष्ठ है।

भोजन की अव्यवस्था से अत्यन्त दुखी समझ और भक्तको भव से निश्चित विमुख देख भक्तभयहारी भगवान् द्रवित हुए। रात्रि को जहाँ निराश हो कर के बालक सो गया था वहाँ जाकर उसे चारबजे अज्ञात पुरुष द्वारा जगाना। पूछने पर अपनी कहानी तथा दर्द बतलाना। केला और औषधि देकर गमन। दो घण्टे में ही स्वास्थ्य लाभ एवं शरीर में स्फूर्त्ति-ओज का दौर-दौर। तापर कृपा करे सब कोई

रामप्रसाद ने प्रसन्नता से भगवान् श्री रामेश्वरम् धनुषकोटि आदि तीर्थों का दर्शन किया पुनः दक्षिण के समस्त तीर्थों का दर्शन। संवत १९७८ वि. के कुम्भ अवसर पर उज्जयनी। उज्जयनी में कुम्भ में विशाल साधु समुदाय के दर्शन कर कृतकृत्य महाकाल की कृपा भी रघुलाल की प्रेरणा से श्रीरामप्रसाद को वरण की। उसे अनजाने ही स्वगुरु जगद्गुरु श्रीरघुवराचार्य जी वेदान्तकेशरी जी के वहीं दर्शन हुए। संसारतारक सद्गुरु के अन्वेषक बालक को स्वगुरुदेव मिल गये। परम्परागत रीतिरीवाज के साथ पंचसंस्कार हो कर श्रीराम प्रपन्नता प्राप्त की।

श्री वेदान्ती जी के शरणापन्न होने के साथ अनायास ही सद्गुरु अन्वेषण की प्रेरणा शान्त हुई।

बालकपन में ही योगमुद्रा बनानेवाले में यदि योग की ओर अभिरुचि उत्पन्न हो तो आश्चर्य ही क्या ? देवप्रयाग में (यह स्थान उत्तराखण्ड में बद्रीनाथ जाते हुए बीच में पड़ता है और हिमालय की भूमि में यह सिद्धों का स्थान कहलाता है। श्री सम्प्रदाय के कई आचार्यों ने समय समय पर यहाँ अपने पीठ स्थापित किये थे) एक शिखर के ऊपर एक महात्मा के दर्शन। जेहिकर जेहिपर सत्य सनेहू। के अनुसार योग की क्रिया का ज्ञान और श्री महात्मा जी द्वारा पढ़ने का आदेश। आगे योग तथा अध्ययन के मार्ग में उन्नति का वरदान। उनकी आज्ञा से हिमालय से प्रत्यावर्तन।

श्रीरामप्रपन्न जी के मन में महात्मा के शब्द घर कर गये थे अतः भ्रमण करते हुए चित्रकूट में। हनुमान्धारा के निकट अनायास तपस्या करने की अभिरुचि जागना। कठोर तपस्या और मार्ग प्रशस्त होने का स्वप्नादेश। लोगों से प्रेरणा पाकर जयदेव संस्कृतमहाविद्यालय में अध्ययन का प्रारम्भ।

परिभ्रमण स्वतः ही एक महाविद्यालय है भ्रमण में कटु मृदु अनुभव जीवन-गठन में उपादेय कार्य करते हैं। विद्याध्ययन से नेत्रों के खुलते ही पुनः स्वसद्‌गुरु की दर्शनलालसा जोर पकड़ने लगी। सायं सोते समय मन अनजाने भूतकाल में संपर्क में आई महान् आत्माओं का चिन्ता करता। भले ही यह चिंतन किसी अर्थ विशेष से था परन्तु इन महिमामय आत्माओं के चिन्तन ने

हृदयकालिमा का विनाश कर दिया। मलिनमन-मुकुर इस चिन्तन का सम्बन्ध पा कर स्वच्छ होने लगा। गन्धी की गन्ध के सदृश कुछ न देने पर भी सन्तों के चिन्तनमात्र से मन किस प्रकार बदल जाता है।

एक दिन श्रीरामप्रपन्न जी ने ब्रह्ममूहर्त में स्वप्न देखा कोई श्यामल कान्ति कोदण्डपाणि कोटिकामकमनीय दीनदारिद्र्य दमनीय वारिदगम्भीर वाणी में कह रहा था वत्स उँझा जाओ और मनोभिलषित की प्राप्ति करो। वहाँ आचार्यचरण को भी तुम्हारी अपेक्षा है। तुम तो मुक्त हो ही तथापि जिस उद्देश्य से कलेवर ग्रहण किया है सरल जनसमुदाय को भक्ति का विशेषतः मेरी भक्ति का सरलतम उपाय बता कर कल्याण करो यह सब आचार्य-चरणाश्रित रह कर ही सम्भव है अतः श्रीगुरुदेव की शरण लो।

इस प्रातःकालीन स्वप्नादेश के पश्चात् अविलम्ब चित्रकूट से प्रस्थान कर दिया। उँझा को प्रसिद्धि श्रीवेदान्ती जी के निवासके कारण पर्याप्त हो गई थी। मार्ग के कष्ट की प्रतीति उन्हें नहीं हुई। वे उँझा पहुँच गये।

श्रीरामप्रपन्न जी को आया जान और ध्यान में सभी रहस्यों को जान कर श्री वेदान्ती जी प्रफुल्लित हो उठे। किसी को कष्ट से बचाने में परोपकार करने में कैसा आनन्द आता है यह सन्त महात्माओं से अधिक कौन जान सकता है? फिर श्री वेदान्ती

जी को भी तो सर्व उर प्रेरक भगवान श्रीराघवेन्द्रसरकार की प्रेरणा हुई ही थी। श्रीरामप्रपन्न जी के द्वारा त्राहि माम् कहना तो लौकिक व्यवहार था। वस्तुतः उज्जैन से ही श्रीवेदान्ती जी की करुणछाया में वे सुरक्षित बन गये थे।

शिक्षक-गुरु का सम्मिलित मान शक्तिमान् में शक्ति का प्रसार होना है। मुक्तात्मा के जीवन-कलुष विगलित हो गये। भूमि परत भा डाबर पानो, के अनुसार शारीरिक समाजिक माया के बन्धन हुए जान श्री वेदान्तो जी ने रामप्रपन्नाचार्य ! ऐसा सम्बोधन किया। तव से इसी सम्बोधनानुसार श्रीरामप्रपन्नाचार्य कहलाये। श्री वेदान्तिजी को जिस प्रकार विश्रामद्वारकास्थ श्रीरामानन्द पोठ श्रीशेष मठ (शींगड़ा) का आचार्य पद प्राप्त हुआ तथा किस प्रकार उन्हों ने सिद्धपुर में वेदान्ताश्रम बनाया और ज. गु. श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र का इन सभी कार्यों में कैसा सहयोग रहा यह सम्प्रदायप्रसिद्ध है।

जीवन की कुछ अलौकिक घटनायें

(१) सर्प से रक्षा :— जब महामहोपाध्याय ज. गु. श्रीरघुवराचार्य जी लीम्बडी में थे। लीम्बडी के ठाकुर परिवार ने ज. गु. का शिष्यत्व ग्रहण किया था और उन्हीं के आग्रह पर वह वहाँ थे। एक बार आप गुरु सेवा से निवृत्त होकर शैया पर आकर सो गये। जब आप जागे

तो शैय्या तल पर सर्प को देखा । उठ कर श्रीगुरुदेव को निवेदन किया । ठाकुर की आज्ञा से आनन-फानन में सर्प पकडने वाला बुलाया गया । जब सर्प को पकडने की तैयारी की जा रही थी । सर्प पर दृष्टि पडी तो जीता-जागता सर्प जो सभी को चिन्तित किये था शान्त हो गया जान पडा और लोगों ने देखा कि कुछ ही क्षण पहिले फुफकारता हुआ सर्प मृत होकर बिस्तरे पर पडा है । आपके दृष्टिक्षेप द्वारा ही वह कठिन योनि से मुक्ति पा गया ।

(२) मगर से रक्षा—किसी समय नर्मदा किनारे राजपीपला दरबार के अतथि के रूप में चाँदौद नामक स्थल पर नहाने के लिये गये थे । नर्मदा में अपने साथियों के साथ नहाने को उतरने पर आप थोडा गहरे में चले गये । इसी समय एक मगर ने मुंह फाडा सबको विश्वास हो गया कि आप कालकवलित हुए किन्तु आप डुबकी लगाकर लगभग १ मील दूर जा कर निकले । किसी को यह मालुम नहीं हुआ कि आपका क्या हुआ । आश्चर्य तो यह है कि पानी के अन्दर इतनी देर तक उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ । "जा को राखे साइयाँ मार सके न कोय"

अनन्तर आप श्रीवेदान्ता के साथ मालसर में एक प्रसंग में उपस्थित हुये । श्रीवेदान्तजी के अवध पधारने पर

आप राणापुर में रहकर महन्त श्रीकेशवदास जी के द्वारा संचालित विद्यालय में अध्ययन करने लगे। जहां पण्डित-सम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य जी का प्रथम साक्षात्कार हुआ। पाठशाला के छोटा उदयपुर चले जाने से आप भी वहीं गये, जहाँ बाद में ब्रह्मचारी श्रीवासुदेवाचार्य जी तथा जगद्गुरु श्रीजानकी दास जो का भी समागम हुआ। चतुःसनों की भाँति सानन्द अध्ययन करने लगे।

(३) अग्नि से रक्षा—छोटा उदयपुर में एक बार अग्नि काण्ड हुआ। जलते हुए मानवों का रक्षार्थ आग में प्रवेश कर गये। भयंकर धू धू जलती विकराल लपटों के बोज लोगों ने तीनमंजला उपर से कँटीले तारों पर पडते हुए देखा। आप कांटों के तारों में फस गए नोचे अग्नि जल रही थी। लोगों ने लग्गो के सहारे आप को नीचे उतार लिया। आश्चर्य ही था कि आप का बाल भी बाँका न हुआ। "बाल न बाँका कर सके जो जग वैरी होय"

(४) कृषक-चमत्कारः आचार्य पीठ श्रीविश्रामद्वारका में भगवान् की गौचारण निमित्त छोडी हुई बीडी तथा ग्राम सुरक्षानिमित्त उधर आप भ्रमणार्थ जाया करते थे। एक दिन पीठ के पटेवाले (चौकीदार) नाथुराम को सीम में चलने के लिये तैयार रहने को कहकर अन्य कारणों से आपको सीम में जाने

का स्मरण न रहा। पटावाला कारतूष-रायफल के साथ प्रतीक्षा में था। विलम्ब होने पर आपको सीम की ओर निकल गये समझकर सीम की ओर तुरन्त दौडा। उसके यत्र तत्र पूछने पर आस पास पडने वाले कृषकों तथा ग्वालों ने कहा कि हमने उन्हें अभी अभी जाते हुए देखा है। कृषकों से ही पूछता हुआ वह सारा दिन वर्तु-भोरठी नदी तथा अन्य क्षेत्रों में घूमकर शामको पीठस्थल पर लौट आया, क्योंकि उसे पता लगता गया कि आप सीम में चक्कर लगाकर लौट रहे हैं। जिस समय वह पटावाला सीम से लौटकर आचार्य जी को श्रीजानकी बाग में देखा और क्षमा याचना किया कि मैं आपके साथ चल न सकता था। तो श्रीयोगिराज जी ने साश्चर्य कहा कि क्षमा किस बात की? मैं तो यहीं हूँ। भृत्य बहुत भयभीत था। स्वापराध आशंका से और गाँव के दश बारह खेडुतों द्वारा बात की पुष्टि होने पर मन ही मन आचार्य चरणने प्रभु की कृपा को सराहा जिन्होंने अभी प्रमाद भरी उदण्डता को अपनी लीला केलि बना लिया। भक्त के हृदय में उठनेवली आकांक्षाओं की पूर्त्ति भगवान् करते है। इस दिन के पश्चात् योगक्षेम का भार भगवान पर ही रखकर आपने सीम में जाना छोड दिया।

(५) विट्ठलदास के रूप में- एक बार सन् १९७० में आचार्यचरण ने श्रीविट्ठलदास जी को श्रीरामबाग में सोने का आदेश दिया क्योंकि उस समय वहाँ किसी का सोना अत्यन्त

आवश्यक था । श्रीविट्ठलदास जी तो आज्ञापालन के लिये ९ बजे रात्रि को ही मठ से निकलकर श्रीरामबाग चले गये परन्तु लगभग रात्रि को १ बजे आपको ऐसा प्रतीत हुआ जैसे विट्ठल-दास न गये हों। सभामण्डप में हों । श्रीशान्तिभवन की खिडकी से देखा तो विट्ठलदास को सभामण्डप में बन्दूक लिये कारतूस का पट्टा डाले खडा देखा । जाने के लिये तैयार समझ कर आप कुछ न बोले । लगभग तीन बजे पुनः आँख खुली और विट्ठल-दास को वैसे ही सभा मण्डप में खडा पाया । छोटी खिडकी को खोल भ्रम निवारण के लिये भली प्रकार से देखा । बुलाने पर विना उत्तर दिये ही नीचे उतर गया । प्रातः फाटक खुल जाने पर विट्ठलदास को बाहर से आता देख कर बुला कर पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं तो छात्रों के साथ रात्रि ९ बजे ही श्रीराम-बाग चला गया था । सब छात्र साक्षी थे । ध्यान में रहस्य का ज्ञान हुआ । विट्ठलदास के रूप में 'योगक्षेम वाहक' प्रभु ने कष्ट लिया समझ कर तबसे ही विट्ठलदास को श्रीरामबाग में सोने के लिये कभी नहीं कहा ।

श्रीवेदान्तकेशरी जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्य जी के तिरोभाव से सम्प्रदाय स्तब्ध सा रह गया । कुछ समय के लिये आचार्य पीठ की व्यवस्था भी विश्रृङ्खलित हो गई परन्तु शीघ्र ही आशंकाओं की निविड़ घनावली में एक प्रतिभा उद्दीपित दिखी । अस्थिरता का अन्त आया और ज० गु०

योगिराज श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी दिनांक २०-११-१९५१ ई० के शुभ दिन आचार्य गद्दी पर विराजे । श्रीरामप्रपन्नाचार्य जी ही इस संस्थान के अध्यक्ष शेषमठाधीश एवं श्रीरामानन्दपीठाधिपति हैं ।

आपने निज गुरुदेव तथा अन्याय विद्वानों की संगति में रह कर अनेक शास्त्रों में प्रावीणता प्राप्त की । भोग-साधनों को भगवदर्पण करके "कौपीनं युगलं वासः कंथा शीत निवारिणी" के आदर्शानुसार टाटम्बर एवं कन्द फल दूध पर अपने को आश्रित रख परमपथ की ओर चरण बढ़ाये । आज समस्त अधिकारों के बीच राजा जनक की तरह 'चंचरीक जिमि चम्पक बागा' की स्थिति में ये राजयोगी अपने लक्ष्य पर बढ़ रहे हैं ।

आपने जब मठाधिपत्य सम्भाला तब इसकी दशा अच्छी नहीं रह गई थी । बिना मालिक के धन पर जिस तरह सभी आधिपत्य जमाना चाहते हैं उसी प्रकार इस संस्थान की दशा हुई । जिसे जो हाथ लगा उठा गया । इसी बीच जमींदारी उन्मीलित हुई और उसकी लपेट में यह मठ भी आया एवं आय का श्रोत ही टूट गया हो ऐसा लगा । इस भयंकर समय में शान्ति से पीठ की स्थिति सम्भालते हुए आपने स्वावलम्बी बनने का प्रयत्न किया । जीवन संघर्षमय हो उठा और लोगों ने देखा कि वह बीतराग पुरुष 'रघुपति सम्पत्ति' की रक्षार्थ इस संघर्ष को भी भगवदाराधान समझकर संलग्न है ।

अब समय ने अपना रुख बदल लिया था । परम्परा संघर्ष में ज्वलंत विजय प्राप्त कर यह सम्प्रदाय अभी आनन्द में मग्न ही था कि कुछ अवाञ्छित व्यक्तियों की हवा पाकर सम्प्रदाय कलहाग्नि में दग्ध होने लगा । कुछ लोगों ने अनर्गल प्रचार कर दिया कि आनन्दभाष्य आचार्य कृत नहीं है । ऊहापोह जाग्रत हो गया । इसी समय जब सम्प्रदाय को पूर्वाचार्य ग्रन्थो की नितान्त आवश्यकता थी शंका के इस बीज ने प्रकाशन का कार्य अत्यन्त कठिन कर दिया । बाह्य कलह में से तो सम्प्रदाय सुरक्षित बच निकला था लेकिन अब तो इस घर को घर के ही चिराग से आग लगी थी । अत्यन्त दृढता के साथ विरोध शमन करते कराते यह मठ निजाचार्य की इच्छानुकुल चला और अभिनववाचस्पति पण्डित सम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य वेदान्तपीठाधीश, दार्शनिक-सार्वभौम, स्वामी श्रीवासुदेवाचार्य, श्रीरामानन्दपीठाधीश विश्राम-द्वारका (शींगडा) के ज. ग. स्वामी श्रीरामप्रपन्नाचार्य योगीन्द्र महन्त श्रीवेंकटेश्वराचार्यजी न्यायवेदान्ताचार्य महन्त श्रीत्रिभुवन दासजी शास्त्री श्रीरामेश्वरानन्दार्यजी व्याकरण वेदान्ताचार्य श्रीरामानन्दपीठ श्रीकोसलेन्द्रमठ श्रीटीलागाद्याचार्य श्रीमहन्त स्वामी श्रीरामनारायणदासजी, म० स्वामी श्री भगवदासजी म० स्वामी श्रीनारायणदासजी स्वामी म० श्रीअयोध्यादासजी एवं इसके लेखक रमायणी श्रीअवधेश प्रभृति के अथक प्रयत्नों से श्रीआनन्दभाष्य और श्रीरामानन्द दवेदान्त ने अपना उचित स्थान - सम्प्रदाय में प्राप्त कर ही

लिया है । सन् १९६६ ई० से वाराणसेय सम्पूर्णानन्द संस्कृत-विश्वविद्यालय तथा बृहद्गुजरातसंस्कृतपरिषद् आदि में इस वेदान्त की पृथक् शास्त्री एवं आचार्य की कक्षायें चल रही हैं । विपक्षियों के समस्त प्रयत्न 'खल के सकल मनोरथ जैसे' विफल ही रह गये । यदा कदा अभी भी कहीं कहीं कोई कोई खुसपुस करता लेकिन साम्प्रदायिक जगत पर अब उसका कोई प्रभाव नहीं । सत् सम्प्रदाय आनंदभाष्यकार ज० गु० श्रीरामानन्दाचार्य जी को निरक्षर कहा जाना सहन नहीं करेगा क्योंकि उनके प्रस्थानत्रयानन्दभाष्य अब प्राप्य एवं प्रकाशित हैं । इस समय श्रीरामानन्दीयसाहित्य प्रकाश एवं साम्प्रदायिक प्रचार के हेतु को लेकर अखिलभारतवर्षीय श्रीरामानन्द वेदान्त प्रचारसमिति कार्यरत है और योगीन्द्र श्रीरामप्रपन्नाचार्य जी एवं उनके कृपापात्र स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य जी इस समिति के सक्रिय सदस्य हैं । सम्प्रदाय एवं उसके सिद्धांत की रक्षा में श्री-वेदान्तकेसरीजी के लक्ष्य को स्थापित करने में योगीन्द्र जी सतत निरत हैं ।

सुरभारती के प्रचार के लक्ष्य को लेकर श्रीगुरुदेव–स्थापित विद्यालय को आपने गति दी है और वह अब अपनी सुदृढ स्थित में ज्ञानवितरण कर रहा है ।

महान् आत्माएँ संघर्ष में सृजन की अभ्यस्त होती हैं । वे संघर्ष से घबडाती नहीं हैं और सृजन कार्य में थकती नहीं है । योगीराज जी मठ संघर्ष से निवृत्त होते ही सृजन कार्य में लग

गये । सर्व प्रथम उन्होंने श्रीशेषमठ शींगडा की व्यवस्था संभाली तदुपरान्त पोरबन्दर में श्रीजानकीमठ का जीर्णोद्धार करके सुन्दर मंदिर निर्मित कराके उनमें दिनाङ्क ५-४-१९६० ई० श्रीरामनवमी के दिन श्री अवधविहारी जी की विग्रह-प्रतिष्ठा की। पोरबन्दर गाँधीजी का जन्मस्थान है और सुदामापुरी के नाम से विख्यात एक धार्मिकतीर्थ है। इस मठ में साधु सन्तों के निवास की सुन्दर व्यवस्था है। श्रीअवधविहारी जी युगल मूर्ति बडी चित्ताकर्षक है। इन्हीं के दाहिने पार्श्व में श्रीगोपाललालजी एवं वाम पार्श्व में श्रीहनुमन्तलालजी विराजित है। तीर्थयात्री दर्शन यात्रा के लिये आते ही रहते हैं।

अहमदाबाद स्थित श्रीकोशलेन्द्रमठ एक स्वतन्त्र संस्थान है और उसका इस संस्थान से मात्र इतना ही सम्बन्ध है कि उसके संस्थापक मठ के पीठाधीश ज०गु० श्रीरामप्रपन्नाचार्य जी ही हैं और इस मठ की प्रवृत्तियाँ ही वहाँ की भी प्रवृत्तियाँ बन गई हैं। सन्तजन किस तरह जंगल में मंगल कर देते है-इसका यह संस्थान (कोशलेन्द्रमठ) साक्षात् उदाहरण है। इस मठ को देखकर जमदग्नि तथा भारद्वाज आश्रम की घटनायें पूर्णतया सत्य ही होंगी ऐसा मेरा विश्वास बन गया है। श्रीकोशलेन्द्रमठ में श्रीसाकेतविहारी जी की प्रतिष्ठा २५-३-१९६१ ई० के दिन हुई। यह प्रतिष्ठा एक ऐतिहासिक घटना थी जिसने एक नये संस्थान को जन्म दिया। श्रीरामनवमी १९७१ ई० के दिन इसी मठमें भगवान्

योगेश्वर महादेव और ज०गु० श्रीरामानन्दाचार्य जी प्रतिष्ठित हुए और यह संस्थान हरिहर भक्तों का आकर्षण केन्द्र बन गया। वटवृक्ष के तले भगवान् योगेश्वर के दर्शन से चित्त को बड़ी शान्ति मिलती है।

कृति एवं ग्रन्थ

यह तो हुआ वर्तमानपीठाधीश जी का व्यवहारिक जीवन। साहित्य सेवा की दृष्टि से भी धार्मिक जनता की तुष्टि के लिये एवं ज्ञानपिपासुओं को तृषाशान्ति के लिये ग्रन्थों का निर्माण किया है जो तात्विक, साम्प्रदायिक, सैद्धान्तिक निरूपण से आवद्ध है। कुछ प्रकाशित ग्रन्थ निम्न हैं–

१– नव्य न्याय जागदीशी व्यधिकरण की दीपिका टीका संस्कृत में
२– वेदरहस्यम् में तात्पर्य दीपिका हिन्दी में।
३– सिद्धान्तदीपक में किरणावली टीका संस्कृत में
४– ब्रह्मसूत्र आनन्दभाष्य में भाष्यदीप टीका संस्कृत में
५– वेदार्थचन्द्रिका संस्कृत में ६- योग्यसूत्रविवरण संस्कृत में
७– तत्त्वत्रयसिद्धिः संस्कृत में
८– नव्यन्यायखण्डनोद्धार की दीपिका नामक टीका हिन्दी में
९– श्री रघुवरीय वृत्ति विवरण संस्कृत में १०–अध्यासध्वंसलेश में तात्पर्य चन्द्रिकाटीका संस्कृत में प्रभृति अनेक दिव्य प्रबन्ध।

व्यक्तिगत जीवन में आप योगसाधना में रत हैं। अपनी योगीन्द्र उपाधि को यथार्थ कर रहे हैं। योगशिक्षा जीवन के लिये

आवश्यक है लेकिन वह सैद्धान्तिक होने से अधिक क्रियात्मक है और योगशिक्षा के लिए सच्चे गुरुजनों का अभाव उन्हें खटकता है। योगक्रियाओं को प्रदर्शन का विषय बनाना उन्हें पसन्द नहीं कभी कभी वे लम्बी समाधि की स्थिति में होते हैं।

दिनांक १२-४-१९७३ ई० श्रीरामनवमी के दिन इस महापुरुष ने श्रीसम्प्रदाय के रीति अनुसार त्रिदण्डग्रहण करके श्रीरामानन्दजगत् में पुनः त्रिदण्ड ग्रहण व्यवस्था का श्रीगणेश करके एक नवीन क्रान्ति को जन्म दे दिया है।

काशी जन्म तथा साकेतविहारी में रुचि।
बालकपन से राम भक्त बाह्याभ्यान्तर शुचि ॥
गये पितृ साकेत तभी गृह त्यागन कीन्हा।
रामभक्ति के राज मार्ग पर पद धरि दीन्हा ॥
वेदान्तकेशरी की शरण रामप्रपन्न बने तुरत।
तब से अब तक राम की क्षण भर नहिं छोडो सुरत ॥
विक्रमाब्द ग्रह श्रुति निधि ब्रह्म रामनवमी दिन।
जन्में राम जयन्ती लोग मनाते अनगिन ॥
दृढनिष्ठासम्पन्न योगनिष्णात सिद्धिधर !
फलाहार अरु दुग्ध किये केवल टाटम्बर ॥
शमन सकल परिताप को पुनि त्रिदण्ड धारण किये।
महापुरुष के योग्य जो वह महान् मारग लिये ॥

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र का

जीवन–चक्र

१- त्रिपवरान्वित वशिष्ठ गोत्रीय कान्यकुब्ज ब्राह्मणपरिवारमें श्रीरामनवमो विं. सम्वत् १९४९ के प्रातः वाराणसी में आविर्भाव।

२–वि. सम्वत् १९७८ के महाकुम्भपर्व उज्जैन में जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्य जी वेदान्त केशरीजी के शरणापन्न होकर विविधशास्त्राध्ययन तथा योगसाधना में पारङ्गतता।

३-दि० २।११।१९५२ ई० पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्द पीठ विश्रामद्वारिका श्रीशेषमठ–पोरबन्दर (सौराष्ट्र) में सरकार द्वारा-आचार्य के रूप में अभिषेक।

४-सुदामापुरी–पोरबन्दर में श्रीजानकीमठ (विश्रामद्वारकाश्री-शेषमठ की शाखा) का निर्माण कर दि० ५।४।१९६० ई० को श्रीअवधविहारीजी को प्रतिष्ठा श्रीरामनवमी के पावन पर्व के दिन।

५–भारत का प्रमुख नगर अहमदाबाद में साबरमति नदी के किनारे तपोपूत श्रीमगीचितपोभूमि में श्रीरामानन्दपीठ–श्रीकोसलेन्द्र मठ की स्थापना कर दि २५।३।१९६१ ई० को श्रीरामनवमी के पुण्य पर्व के दिन श्रीसाकेत बिहारी जी की प्रतिष्ठा।

६–दि० २८।३।१९६३ ई० को श्री रघुवर रामानन्द वेदान्त महाविद्यालय की स्थापना।

७–दि. ४।४।१९७१ ई० श्री रामनवमी के दिन श्रीयोगे-

श्वरमहादेव, निकुम्भिलामर्दन श्रीहनुमानजी तथा श्री सिद्धेश्वर हनुमानजी, श्रीअम्बाजी श्रीपार्वतीजी, श्रीगणपतिजी तथा प्रस्थान त्रयानन्द भाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी की प्रतिष्ठा।

८-प्रायः सातसौ वर्षों से लुप्त श्री रामानन्द सम्प्रदाय के त्रिदण्डग्रहण प्रथा को श्रीरामनवमी दि० १२।४।१९७३ ई० को सविधित्रिदण्ड ग्रहणकर विलुप्त परम्परा को पुनरुज्जीवित कर क्रान्ति की दिशा प्रदान करना। इस श्रीसम्प्रदाय में जगद् गुरु श्रीअनन्तानन्दाचार्य जी (व सं १३६३–१५४०) तथा जगद्गुरु श्री भावानन्दाचार्य जी (वि सं १३७६–१५३९) के बाद त्रिदण्डग्रहण प्रथा लुप्त हो गई थी।

९–दि० ३।४।१९७४ को नेपाल आदि देश की विजय यात्रा इस प्रसंग में दि० १७।४।७४ को मोतिहारी में नेपाल सरकार के प्रतिनिधि अञ्चलाधीश श्री के. एस. प्रधान द्वारा राष्ट्र की ओर से जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यत्वेन परम्परागत नियम से स्वागत।

१० दि० २०।४।७४ को श्रीवाल्मीकि अध्ययन संस्थान श्री त्रिभुवन विश्वविद्यालय में वहां के समस्त पण्डितों द्वारा सम्मान स्वागत।

११ दि० २५।४।१९७४ को वर्तमान सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व विद्यालय वाराणसी के कुलपति पण्डित प्रवर श्री

बदरीनाथ शुक्ल जी के अध्यक्षत्व में काशीस्थ पण्डित वर्ग तथा नागरिकों द्वारा जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यत्वेन स्वागत। उसी दिन श्री रामानन्द पीठ संस्कृत महाविद्यालय कर्णघण्टा, वाराणसी के अध्यापक तथा छात्रों द्वारा भव्य स्वागत।

१२–दि० १२।१।१९७७ ई० को शकुधारा–वाराणसी-३ में आचार्यपीठ (आनन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य पीठ) की स्थापना उसी दिन वाराणसीविशिष्ठविद्वत्परिषद्द्वारा साभिनन्दनपत्र जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यत्वेन विशेष स्वागत जिसमें पण्डितराज श्री राजेश्वरशास्त्री पण्डितराज श्री काल-प्रसाद मिश्र पण्डित श्री केदारनाथ ओझा पण्डित श्रीदेवस्वरूप मिश्र सं. सं. वि. व. के सम्मान्य कुलपति पण्डित श्री करुणापति त्रिपाठी जी पण्डित श्री राम पाण्डेय प्रभृति अनेक उल्लेखनीय विभूतियाँ उपस्थित थीं।

उसी दिन श्री रामानन्द युवक संघ के सम्मान्य मन्त्री महानुभाव महन्त श्री रामविलासदास जी वेदान्ती श्री महा-वीरदास जी वेदान्ती प्रभृति ने आचार्यपीठ स्थल में अभिनवा-भिषिक्त जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्य जी योगीन्द्र का स्वागत किया।

१३–श्री रामानन्द सम्प्रदाय–दर्शन का एकमात्र प्रति-निधित्व करने वाला ज. गु. श्रीरामानन्दाचार्यपीठ मासिक पत्रिका

का प्रवर्त्तन दि० १।३।१९७९ से

१४—वर्तमान में आचार्यजी आचार्यपीठ निर्माण में संलग्न हैं। पीठ निर्माण कार्य जोरों से चल रहा है। आचार्यपीठ का प्रधान अंग श्रीरामानन्द विद्यालय का कार्य पूर्ण प्रायः है। आचार्य पीठ विभाग में भी तीसेक रूम बन गये है। मन्दिर जगमोहन कार्य पूर्ण प्रायः है। पीठ की सब जगह को चार दीवाली कर दी गई है।

यः श्रीरामपदारविन्दयुगलं ध्याता महाशास्त्रविद्
योगीन्द्रश्च पयः फलाशनपरस्त्यागी परिव्राजकः।
छात्राणां परिपालको गुणनिधिः पीठस्यसंस्थापकः।
स श्रीदर्शनकेशरी विजयते रामप्रपन्नः सुधिः ॥१॥

श्रीरामनवमी

ले० जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्यजी वेदान्त केशरी

सनातन धर्म की मर्यादा संरक्षण करने के लिये भगवान् अनेक प्रकार से इस वसुन्धरा धाम पर पधारते हैं वह धर्म का संस्थापन ही अपना कार्य मानकर उसमें लग जाते हैं। अन्य कार्य तो मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये करता है। पर एक धर्म ही ऐसा कार्य है जिसमें ऐहिक लाभ कम है। अथवा नहीं है। अतः मानव इस कार्य से शिथिल हो सकता है इसकी दृढता के लिये ही स्वयं परमात्मा इस

लोक में अवतार धारण कर स्वय धर्म का आचरण करके उसे लोक कल्याण के लिये समाचरणीय सिद्ध करते हैं। इसके पश्चात् अन्य जन समूह भी "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः, इस गीताचार्य जी के अनुसार उस धर्म पर आरूढ होता है।

भगवान् के ऐसे कार्यों के लिये अनन्त अवतार हैं। परन्तु शुद्धसत्वमूर्ति भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ही हैं। आपकी भूलोक की लीला भी अत्यन्त कीर्तनीय है और पुण्यप्रद भी। आपने मानव देह धारण करके केवल मनुष्यों का ही और मर्त्य लोक में आकर केवल मर्त्यलोक का ही कल्याण नहीं किया। परन्तु आपका श्रीराम अवतार में आने से समस्त देह धारियों का और समस्त ब्रह्माण्ड का कल्याण हुआ है। आपने संसार में धर्म को आदर्श बनाया। और रावण जैसा अत्याचारी का विनाश किया। इससे यह सिद्धकर बताया की सर्वदा धर्मात्मा का ही विजय होता है। हमारे वेद शास्त्र भगवान् श्री रामचन्द्रजी महाराज को पूर्ण पुरुषोत्तम जगत के कारण स्वरूप परब्रह्म बतलाते हैं। आप का मनुष्य रूप में प्रादुर्भाव (जन्म) इसी चैत्र शुक्ल नवमी को हुआ था। अत एव अद्यावधि भारतीय जनसमूह इस तिथि को श्रीरामनवमी के नाम से पहचानता है। हमारे ऋषिओं ने इस तिथी को एक पुण्य तिथि माना है। इस

दिन श्री रामचरित का कीर्तन श्रवण और मनन करना कराना चाहिये । दिन में उपवास रात्री को जागरण करना चाहिये । भगवान श्रीरामचन्द्रजी की प्रतिमाका षोडषोपचार से पूजन करना चाहिये । इसका विशेष विधान श्री अगस्त्य संहिता आदि आर्ष ग्रन्थों में विद्यमान हैं । अगस्त्य संहिता के अध्याय २६ में श्रीरामनवमी के व्रतादिका सविस्तार वर्णन है ।

चैत्रमासे नवम्यान्तु शुक्लपक्षे रघूत्तमः । प्रादुरासीत् पुराब्रह्मन् परब्रह्मैव केवलम् । इस उपक्रम से रामनवमी का वर्णन करते हुये श्रीरामरहस्य का खूब ही विवेचन किया है। इस ग्रन्थ का वैष्णवों को परिशीलन करना आवश्यक है । श्री वाल्मीकि रामायण में भगवान् के चरित्रों का वर्णन है । श्री रामनवमी को यथाशक्ति श्री रामायण का भी पाठ करना श्रीरामभक्तों का कर्तव्य होना चाहिये ।

श्रीराममन्त्रमनन

(ले० वैदेहीकान्तशरण-तुरकी)

मनन का विषय होने के कारण 'मन्त्र' संज्ञा है, एवं मनन करने के कारण 'मन्त्र' नाम पड़ा । अतएव महर्षि यास्क मन्त्र शब्द के निर्वचन में कहते हैं- "मन्त्राः मननात् ।"

कोश में भी कहा गया है कि गुप्तवाद (विषयवस्तु) का नाम मन्त्र है- "गुप्तवादो मन्त्रः- अ. को. ३।३।१६। ।" अतएव

मन्त्रगत गुप्त विषय वस्तुओं के ज्ञान के लिये मन्त्रों का मनन करना परमावश्यक और अनिवार्य है।

साम्प्रदायिकों ने भी मन्त्र की परिभाषा व लक्षण बतलाते हुये कहा है—"मननात् त्रायते इति मन्त्रः ।" इससे भी मन्त्र का मनन अनिवार्य विषय सिद्ध होता है।

कुछ लोगों का कथन है कि मन्त्रों का अर्थ नहीं होता है— "आखर अनमिल अरथ न जापू।" केवल इस मन्त्र के देवता के प्रताप से उस मन्त्र का प्रभाव प्रकट होता है— "प्रकट प्रभाव महेश प्रतापू ॥"

कौत्स मुनि का मत है कि मन्त्र अनर्थक है— "अनर्थका हि मन्त्राः ।" मन्त्रों का महत्त्व केवल उनके पाठ मात्र में ही है। उसके उच्चारण में ही शक्ति है। मन्त्रों के उच्चारण का प्रयोजन 'अदृष्ट' (धर्म) है। इसके उच्चारण से अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। मन्त्र अनर्थक है इसकी सिद्धि के लिये कौत्स ने ७ युक्तियाँ दी हैं— (१) नियतवाचो युक्तयो नियतानुपूर्व्या भवन्ति, (२) ब्राह्मणेन रूप सम्पन्ना विधीयन्ते, (३) अनुपपन्नार्थ भवति, (४) विप्रतिसिद्धार्था भवन्ति (५) जानन्तं सम्प्रेष्यति (६) आह अदितिसर्वम्, (७) अविस्पष्टार्था भवन्ति।

इसका उत्तर करते हुए महर्षि यास्क ने लिखा है कि मन्त्र सार्थक हैं एवं इसे सार्थक सिद्ध करने के लिए दो हेतुएँ प्रस्तुत

किये हैं- (१) अर्थवन्तः शब्दसामान्यात् , (२) एतद् यज्ञस्य समृद्धं यद् रूपसमृद्धं यत् कर्म क्रियमाणम् ऋग् यजुर्वा अभि-वदति ।

फिर उन्होंने कौत्स के उपर्युक्त सातों हेतुओं का उत्तर करते हुए क्रमशः लिखा है - (१) लौकिकेष्वप्येतत् , (२) उदतानुवादः स भवति, (३) आम्नाय वचनाद् अहिंसाप्रतीयते, (४) लौकिके-ष्वप्येतत, (५) जानन्तम् अभिवादयते, जानतेमधुपर्क प्राह, (६) लौकिकेष्वप्येतत् , (७) नैष स्थाणोरपराधो यद् एनम् अन्धो न पश्यति । पुरुषापराधः स भवति ।

इस प्रकार मन्त्र अनर्थक नहीं अपितु सार्थक सिद्ध हैं। कौत्स मुनि की आपत्तियाँ- "अनुपपन्नार्था भवन्ति, विप्रतिषिद्धा-र्था भवन्ति, अविस्पष्टार्था भवन्ति" तो वस्तुतः अज्ञानता के कारण हैं । मन्त्र निर्दुष्ट अर्थवान् हैं ।

यास्क मुनि ने लिखा है कि अर्थज्ञ ही सकल कल्याण की प्राप्ति करता है-

"योऽर्थज्ञ इत् सकलं मदमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधुतपाप्मा।

स्वय वेद भगवान् अर्थज्ञान रहितों की निन्दा करते हुए कहते हैं- "उत त्वः पश्यन्न ददर्शवाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्ये नाम । ऋ. १०।७१।४॥, "अधेन्वाचरति माययैत्र वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम् ॥ ऋ. १०।७१।५॥" अर्थात् जो व्यक्ति अर्थज्ञ नहीं है वह मन्त्र को देखते हुये भी नहीं देखता है और सुनते

हुये भी नहीं सुनता है। अर्थात् उसका पढ़ना (पाठ करना) और सुनना (श्रवण) दोनों ही कार्य व्यर्थ है । वे पाठ करने वाले लोग मन्त्र को माया (मिथ्या) व्यवहार करने वाले है और वे सुननेवाले पुष्प और फल रहित शून्य वाणी को सुनने वाले है।

पुनः वेद भगवान् अर्थज्ञ की प्रशंसा करते हुये कहते है— "उत त्वस्मैं तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः। ऋ० १०।७१।४ ।।" "उतत्वं सख्ये स्थिर पीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।ऋ० १०।७१।५।।"

मीमांसा दर्शन में भी प्रथम मन्त्रों को अनर्थक सिद्ध करने वाला पूर्व पक्ष उपस्थित किया गया है—"तदर्थ शास्त्रात्। वाक्य नियमात्। बुद्धशास्त्रात। अविद्यमान वचनात। अचेतनेऽर्थबन्धनात्। अर्थ विप्रतिषेधात्। स्वाध्यायायवद्वचनात। अविज्ञयात्। अनित्य संयोगान्मन्त्रानर्थक्यम्। अविशिष्टस्तु वाक्यार्थः ।।मी० सू० १।२।३१-४०।।

पुनः उक्त आक्षेपों का उत्तर करते हुये सिद्धान्त पक्ष से मन्त्रों को सार्थक सिद्ध किया गया है—"गुणार्थेन पुनः श्रुतिः। परिसंख्या। अर्थवादो वा। अविरुद्धं परम्। संप्रेषे कर्मगर्हानुपलम्भः। संस्कारत्वात् अभिधाने अर्थवादः। गुणादप्रतिषेधः स्यात। विद्या वचनमसंयोगात्। सतः परम् विज्ञानम्। उक्तश्चाऽनित्यसंयोगः। लिङ्गगोप्रदेज्ञश्चतदर्थत्वात्। ऊहः विधि शब्दाच्च ॥ मी० सू० १।२।४१-५२।।"

शबर स्वामी ने मीमांसा सूत्र के 'सतः परम् विज्ञानम्' सूत्र के भाष्य में कहा है कि मन्त्रों में विद्यमान अर्थ भी प्रमाद और आलस्य के कारण उपलब्ध नहीं होते है। निगमादि से अर्थ को जानना चाहिए—''विद्यमानोऽप्यर्थः प्रमादालस्यादिभि र्नोपलभ्यते। निगम निरुक्त व्याकरणवशेन धातुतोऽर्थः कल्पयितव्यः

इस प्रकार मन्त्रो का अर्थ ज्ञान अत्यावश्यक सिद्ध होता है। वेदभगवान् ने मन्त्रों को मन का विषय बतलाते हुये उसके ममन और तन्मयता का उपदेश दिया है—

"समानो मन्त्र समितिः समानो"

समानं मनः सहचित्र मेषाम्।

समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः

समाने न वो हविषा जुहोमि ॥ ऋ० १०।१९१।३॥"

योग सूत्र में भी मन्त्र के जप के साथ ही उस के अर्थ की भावना का उपदेश है

"तज्जपस्तदर्थ भावनम्-यो०सू० १　।"

मन्त्रो के ऋषि, देवता, छन्द, बीज, शक्ति और विनियोग-ये छः अङ्गः होते है।

राम मन्त्र के मनन के क्रम में प्रथम इस मन्त्र के 'बीज' पर ही विचार किया जाता हैं—

राम मन्त्र का पठित रूप है—"रां रामाय नमः।"

इसमें बीजाक्षर हैं— "रां"।

बीज कहते है हेतु या कारण को—"हेतुर्ना कारणं बीजम् अ. को. १।४।२८॥" राम मन्त्र का बीज 'रां' पद है। श्री प्रह्लादजी ने भगवान् से कहा है कि हे भगवन् ! वेदों में बीज और अङ्कुर के समान आप के दो रूप बताये हैं—कार्य और कारण। वास्तव में आप प्राकृत रूप से रहित हैं। परन्तु इन कार्य और कारण रूपों को छोडकर आप के कोई साधन भी नहीं है। जिस प्रकार काष्ट मन्थन के द्वारा अग्नि प्रकट की जाती है, उसी प्रकार योगी जन भक्ति योग की साधना से आप के कार्य और कारण दोनों में ही ढूढ निकालते हैं क्योंकि वास्तव में वे दोनों आप से पृथक् नहीं है, आप के स्वरूप ही हैं

"रूपे इमे सदसती तव वेद सृष्टे
बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य।
युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां
योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात् ॥७-९-४०।

प्रह्लाद ने भगवान से और भी कहा है हे भगवन् ! वट के बीज से विशाल वृक्ष के समान आपकी नाभि से ब्रह्माण्ड कमल उत्पन्न हुआ— "नाभेरभूत्स्वकणिका वटव-न्महाब्जम्।" उन्होंने पुनः कहा कि उस ब्रह्माण्ड कमल में सूक्ष्मदर्शी ब्रह्माजी प्रकट हुए ! जब उन्हें कमल के सिवा और कुछ भी दिखायी न पडा, तब अपने में बीज रूप से व्याप्त आप को वे न जान सके और आप को अपने से बाहर समझकर जल के भीतर घुसकर सौ वर्ष तक ढूढते रहे। परन्तु उन्हें वहाँ कुछ नहीं मिला। यह ठीक ही है,

क्योंकि अङ्कुर उग आने पर उसमें व्याप्त बीज को कोई बाहर अलग कैसे देख सकता है ।

तत्सम्भवः कविरतोऽन्यदपश्यमान-
स्त्वां बीजमात्मनि तत स्वबहिर्विचिन्त्य ।
नाविन्ददव्दशतमप्सु निमज्जमानो
जातेऽङ्कुरे कथमुहोपलभेत बीजम् ।। श्रीमदा० ७।९।२७।।

न्याय दर्शन भी धर्माधर्म (अदृष्ट) के अधिष्ठान के रूप में ईश्वर की सिद्धि प्रमाणित करने के लिए अदृष्ट साधन में हेतु देते हैं "सापेक्षत्वात्-न्या कु १।४।' कार्यं सहेतुकं कादाचित्कत्वात्, भोजन जन्य तृप्तिवत् । इस पर चार्वाक के इसमें अनवस्था दोषापत्ति पर नैयायक उत्तर देते हैं-"बीजाङ्कुरवत् प्रामाणिकीयमनवस्था न दोषाय इति ।" इस प्रकार बीजाङ्कुरन्याय प्रामाणिक बिषय वस्तु है ।

परन्तु बीज में वृक्ष नहीं देखा जाता और वृक्ष में बीज नहीं देखा जाता है, किन्तु बीज में वृक्ष एक वृक्ष में बीज की व्याप्ति रहती है । महानाटक में लिखा है-

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां,
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां,
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ।।१-८।।

पा० ८।४,५८। वा पदान्तस्य । पा०८।४।५९।" इसी प्रकार 'र' का रजात विसर्ग होता है । अतएव 'रां' पद से 'न', 'म' एवं 'विसर्ग (:)' अर्थात् 'नमः' पद स्वतः सिद्ध होता है। अतएव बीजाक्षर 'रां' से मन्त्राक्षर 'रामाय नमः' उपपन्न है।

(शेष टाइटल नं. ३ में)

श्री सीतारामाभ्यान्नमः

श्री रामानन्दसम्प्रदाय के २७ वें आचार्य

जगद्गुरु श्रीरामभद्राचार्यचरणप्रतीतम्

श्रीरामकर्णरसायनम्

दिशतु स कुशलं जिते दशास्ये
विधिविहितस्तुतिवेदितस्वरूपः ॥
उपदिशति शिवो नृणां यदीयं
मनुमविमुक्तपुरे विमुक्तिहेतोः ॥१॥

सीताकान्तसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरंपराम् ॥

विश्राम द्वारिकास्थपश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दपीठाधीश्वर

स्वामिरामेश्वरानन्दाचार्य

कृता

बालबोधिनी

अन्वयः-शिवः यदीयम् मनुम् अविमुक्तपुरे विमुक्तिहेतोः नृणाम् उपदशति, सः दशास्ये जिते विधिविहितस्तुतिवेदितस्वरूपः कुशलम् दिशतु ॥१॥

श्री शिवजी जिनके मन्त्र का काशीपुरी में मोक्षहेतु मनुष्यों को उपदेश करते हैं, वे भगवान् श्रीरामजी रावण को जीतने पर ब्रह्माजी से की हुई स्तुति से ज्ञापित स्वरूप वाले मुझे कल्याण दे अर्थात् मेरा कल्याण करें ॥१॥

विहितविधिमपास्यता निषिद्धा
न्यपि चरताऽप्यकृताक्षनिग्रहेण ।
यदघमुपचितं मया यतिष्ये
रघुवरसंस्मरणेन तन्निमार्ष्टुम् ॥२॥

अन्वय :—मया विहितविधिम् अपास्यता अकृताक्षनिग्रहेण निषिद्धानि अपि चरता यत् अघम् अपि उपचितम्, तत् रघुवर-संस्मरणेन निमार्ष्टुम् यतिष्ये ॥ २ ॥

मैंने विहित विधि यानी कर्तव्य कर्म को छोड़कर इन्द्रियों का निरोध नहीं करनेवाला निषिद्ध कर्मों को करते हुये जो पाप इकट्ठा किया है वह सर्वेश्वर श्रीरामजी के संस्मरण से शोधित यानी दूर करने के लिये प्रयत्न करता हूँ ॥ २ ॥

चिरपरिचितया मनो विकृष्टं
दिशिदिशि वासनया न मे नियायग्यम्

इति कवनपथेऽवतार्य राम-
स्मरणविधावनघे करोम्युपायम् ॥३॥

अन्वय :—चिरपरिचितया वासनया दिशिदिशि विकृष्टम् मे मनः न निया(?य)म्यम्, इति कवनपथे अवतार्य अनघे रामस्मरण-विधौ उपायम् करोमि ॥ ३ ॥

बहुत समयों से परिचित यानी अनुभूत वासना यानी विषयाऽऽसक्ति से हर एक विषयों की ओर खींचा हुआ मेरा मन नियन्त्रण यानी रोकने योग्य नहीं है, इस कारण से कवन पथ पर मन उतारकर पवित्र श्रीरामजी के स्मरण विधि में अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी की सेवा पूजा भजन के लिये उपाय प्रयत्न करता हूँ ॥ ३ ॥

प्रकृतिरिति सरस्वतीति लक्ष्मी-
रिति गिरिजेतिजगन्मयीति वा याम् ।
गदति मुनिगणः कवित्वसिद्धयै
कथमपि तां कलये विदेहकन्याम् ॥४॥

अन्वय :—मुनिगणः याम् प्रकृतिः इति सरस्वती इति लक्ष्मी इति गिरिजा इति जगन्मयी इति वा, गदति ताम् विदेहकन्याम् कवित्वसिद्ध्यै कथमपि कलये ॥ ४ ॥

महर्षिव्यास महर्षि श्री बाल्मीकि प्रभृति पूर्वाचार्य मुनिगण जिसे यह प्रकृति है यह सरस्वती है यह लक्ष्मी है यह गिरिजा

यानी पार्वती है अथवा यह तो साक्षात् जगत्मयी है ऐसा कहा करते हैं, उस विदेह यानी जनक की कन्या यानी सर्वेश्वरी श्रीसीताजी को कविता की सिद्धि के लिये सर्वप्रकार से आश्रय लेता हूँ ॥ ४ ॥

मधुरभणितये पतिव्रतानां
मुकुटमणिं कलये महीकुमारीम् ।
पतिकृतरिपुपातनप्रतिज्ञा-
दलनभयादहितेऽप्यदत्तशापाम् ॥५॥

अन्वय :—पतिव्रतानाम् मकुटमणिम् पतिकृतरिपुपातनप्रतिज्ञा दलनभयात् अहिते अपि अदत्तशापाम् महीकुारीम् मधुरभणितये कलये ॥ ५ ॥

पतिव्रताओं के मस्तक के अलंकार मुकुट में जड़ित मणि के सदृश यानी सर्वोच्च स्थान पर रहने वाली श्रेष्ठ "निशिचरहीन करहूं मही भुजउठाइ पन किन्ह" ऐसी श्रीरामजीकी की हुई शत्रुओं के नाश की प्रतिज्ञा के भंग के भय से रावण जैसे शत्रु को भी शाप नहीं देने वाली श्रीजानकीजी को मधुरभाषा अर्थात् उक्ति के लिये आश्रय अर्थात् सर्वेश्वरी श्रीसीताजी का आश्रय लेता हूं क्योंकि वे वात्सल्य मयि है अतः मुझे कवित्व शक्ति प्रदान करेंगी । "विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः । तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि । असन्देशात्त रामस्य तपसश्चानु

पालनात् । नाहं कुर्मि दशग्रीव भस्मभस्माहं तेजसा" इस प्रकार से आप के विषय में महर्षि बाल्मीकिजी ने लिखा है ॥ ५ ॥

हृदय ! विषयमेव सेवसे किं
यदयमुदग्रविषोपमः क्रमेण ।
मदयति च निहन्ति च प्रकामं
तदयनमेत्य गिरां भजस्व रामम् ॥६।

अन्वय :—हृदय ! किम् विषयम् एव सेवसे ! यत् अयम् क्रमेण उदग्रविषोपमः (भवति) मदयति च प्रकामम् निहन्ति च तत् गिराम् अयनम् एत्य रामम् भजस्व ॥ ६ ॥

हे मन ! तूं क्या सर्वदा विषय का सेवन ही करते हो, क्योंकि—यह विषय उग्र विष के समान होता हुआ क्रम से मतवाला कर देता है, और इच्छानुसार मार डालता है, इस कारण से तूं सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की प्रार्थना रूपी अमृत स्वरूपा वाणी के मार्ग पर आकर श्रीरामचन्द्रजी का भजन कर जिससे तू बच जाएगा ॥ ६ ॥

रघुवरचरणारविन्दभक्ति-
च्छलमकरन्दनिरन्तराभिषिक्ताः ।
बकुलपरिमला गिरो मदीयाः
कविकुलकर्णरसायनानि सन्तु ॥७॥

अन्वयः—मदीयाः गिरः रघुवरचरणारविन्दभक्तिच्छलमकरन्दनिरन्तराभिषिक्ताः बकुलपरिमलाः (सत्यः) कविकुलकर्णरसायनानि सन्तु ॥७॥

मेरी वाणियां श्रीरामजी के चरणरूपकमलों में भक्ति के छल से परागों के रूप से हमेशा सींची हुई बकुल यानी मौलसरी फूलों के पराग के समान खुशबूवाली अर्थात् सुगन्ददार हो कवि समूह के कानों के रसायन यानी रञ्जित करनेवाली हों ॥७॥

भरतविदितपादुकाप्रभावं
धरतनयाऽऽदरणीय नामधेयम् ।
करतलधृतकार्मुकं पुमांसं
मरकतनीलशरीरमाश्रयामः ॥८॥

अन्वयः—भरतविदितपादुकाप्रभावम् धरतनयाऽऽदरणीयनामधेयम् करतलधृतकार्मुकम् मरकत नीलशरीरम् पुमांसम् आश्रयामः ॥८॥

भरतजी से ज्ञात पदुका प्रभाव वाले धरणिसुता से यानी श्रीसीताजी से आदर पूर्वक लिये गये नामवाले करतल से धारित यानी धरे हुए धनुषवाले मरकतमणि के सदृश नीलवर्ण शरीर वाले पुरुषोत्तम श्रीरामजी का आश्रयण करता हूँ ॥८॥

निटिलनयननिर्वृतिप्रदाख्यं
कुटिलनिशाचरकुम्भिनां मृगेन्द्रम् ।
कटिलसदसिमम्बुदाभमेकं

जटिलमुरीकृतचापबाणमीडे ॥९॥

अन्वय :—निटिलनयननिर्वृतिप्रदाख्यम् कुटिलनिशाचरकुम्भिनाम् मृगेन्द्रम्, कटिलसदसिम् अम्बुदाभम् जटिलम् उरीकृतचापबाणम् एकम् ईडे ॥९॥

मस्तक नेत्र यानी शिवजी को शान्ति देने वाले कुटिल अर्थात् खलराक्षसरूपहाथियों के लिये सिंह रूप तथा कमर में शोभमानतलवार वाले मेघ के समान नीलवर्ण सुन्दर जटावाले धनुष और बाण को स्वीकृत अर्थात् धारण करनेवाले अद्वितीय पर पुरुष सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की मैं स्तुति करता हूँ ॥९॥

निलयमखिलमङ्गलस्य रक्षो-
वलयवसाप्रबलायिता नलास्त्रम् ।
कलयति हृदयं विदेहकन्या-
वलयपदाङ्कितकन्धरं पुमांसम् ॥१०।

अन्वय:—हृदयम् अखिलमङ्गलस्य निलयम् रक्षोवलयवसप्रवलायितानलास्त्रम् विदेहकन्योवलयपदाङ्कितकन्धरम् पुमांसम् कलयति।१०।

मेरा मन सब कल्याण के घर स्थान राक्षसों के समूह रूप वसा को नाश करने के लिये प्रबल पावक मन्त्र वाले श्रीजानकीजी के वलय के यानी मणिबन्धभूषण के पद से यानी स्थान के अर्थात् मणिबन्ध से अङ्कित यानी चिह्नित कंधेवाले परपुरुष अर्थात् श्रीरामजी को भजता है ॥१०॥

विमोहयति विष्टपत्रयजनान् गुणारोपण-
क्षणत्रुटितचण्डिकारमण चापचण्डध्वनौ ।
जयत्यसकृदुन्मिषत्पुलकयोरपेतत्रपं
परस्परनिरीक्षणं रघुवरक्षमाकन्ययोः ॥११॥

अन्वयः – गुणाऽऽरोपणक्षणत्रुटितचण्डिकारमणचापचण्डध्वनौ विष्टपत्रयजनान् विमोहयति (सति) असकृदुन्मिषत्पुलकयोः रघुवरक्षमाकन्ययोः अपेतत्रपम् परस्परनिरीक्षणं जयति ॥११॥

डोरी धनुष पर चढाने के क्षणमें टूटे हुए शिवजी के धनुष के उग्रशब्द से तीनों भुवनों को मोहित करने पर बार-बार रोमाञ्चित शरीर वाले श्रीसीतारामजी का लज्जा रहित परस्पर निरीक्षण सर्वोत्कृष्टता प्राप्तकर विजयी हो ॥११॥

करोमि हृदयाम्बुजे कमपि वीरमम्भोनिधे-
र्निबन्धनमबिन्धनज्वलनबन्धुतूणीशयम् ।
न कश्चिदपि दृश्यते जगति यस्य शक्तो जये
स्मरप्रहितजानकीनयनपद्मबाणं विना ॥१२॥

अन्वयः अपने हृदय रूप कमल में किसी अद्‌भुत बीर को स्थायी करता हूँ, समुद्र का बांधना विद्युत्समान तरकस मे रहनेवाला शर है, जिनके विजय करने में कामदेव से भेजे हुए श्रीजानकी जी के नेत्र रूप कमलशर को छोड़ कर जगत् में कोई

नहीं दीख पड़ता है. अर्थात् श्रीसीताजी के नयन कमल बाण ही श्रीरामजी को जीत सकता है ॥१२॥

क एष दलदुत्पलद्युतिरुदारवेषोज्ज्वलः
स्त्रयं विशति मे मनस्त्वरितमाः परिज्ञायते ।
स एव ननु जानकीकुचतटीपटीरद्रव-
प्रसक्तघनवासनाघुमुघुमायमानः प्रभुः ॥१३॥

दलदुत्पलद्युतिः उदारवेषोज्ज्वलः एषः कः मे मनः स्वयं विशति ? ननु सः एव प्रभुः जानकीकुचतटीपटीरद्रवप्रसक्त घनवासनाधुमुघुमायसानः परिज्ञायते ॥१३॥

विकसित होते हुए कमल की कान्ति सी कान्तिवाले ये कौन मेरे मन में प्रवेश कर रहे हैं, हो सकता है कि—वे ही प्रभु श्रीरामजी श्रीजानकीजी के स्तनों के प्रान्तों में लगे हुए चन्दन रस में लगी हुई निबिडवासना से घुमघुमाते हुए यानी धुमुधुम शब्द करते हुए श्रीरामरूप भ्रमर हों ॥१३॥

भजे शरधनुर्धरं विकटचित्रकूटाटवी-
चरं कमपि शङ्करप्रणयिनीप्रियाख्यं प्रभुम् ।
स्फुटा कलितकुङ्कुमा वदति यस्य वक्षस्तटी,
मृगेन्द्रसितत्रसज्जनकजाहठालिङ्गनम् ॥१४॥

अन्वयः—शरधनुर्धरम् विकटचित्रकूटाटवीचरम् शंकरप्रणयिनी प्रियाख्यम् कमपि प्रभुम् भजे । यस्य स्फुटाकलितकुङ्कुमा वक्ष

स्तटी मृगेन्द्ररसितत्रसज्जनकजाहठालिङ्गनम् वदति ॥१४॥

वाणचापधारी भयानक चित्रकूट पर्वत के वन में विचरने-वाले श्रीपार्वती के प्रिय विलक्षण प्रभु को मैं भजता हू। जिस प्रभु की स्पष्टत कुंकुम का धारण करने वाली वक्षस्तटी यानी वक्षस्थल के प्रान्त भाग सिंह के गरजने से भीत श्री जानकीजी का हठात् आलिंगन सूचित करता है ॥१४॥

चिरस्य विधुरस्य मे विषयधर्मघोरातपैः
　　पयोदनिचयोदयप्रतिनिधिः किलेयं दशा।
नराघमुषि राघवे यदधुना मनः प्रीयते
　　समस्त सुरमस्तक प्रणतिकर्मणि ब्रह्मणि ॥१५॥

अन्वयः-विषयधर्मघोरातपः चिरस्य विधुरस्य मे इयम् दौशा पयोदनिचयोदयप्रतिनिधिः किल (भाति)। यत् अधुना मनः नराघमुषि समस्त सुरमस्तकप्रणतिकर्मणि राघवे ब्रह्मणि प्रीयते ॥१५॥

विषयरूप धर्म के भयानक आतपों से बहुत समय तक पीडित मेरी यह अवस्था समुद्र समूह के उदय के स्थानापन्न जैसी लगती है, अत अभी मेरा मन मनुष्यों के पापों को चुराने वाले सुरगण के मस्तको से प्रणम्य श्री रामरूप ब्रह्म में खुश पूर्वक लग रहा हैं। ॥१५॥

कटीघटितवल्कलं घनलसज्जटामण्डलं
　　करात्तशरकार्मुकं कमलपत्रमित्रेमक्षण ।

तमालदलमेचकं धरणिकन्यका कामुकं
तरङ्गितकृपारसं तरणि वंशदीपं भजे ॥१६॥

कमर में वल्कल लगानेवाले मेघके समान शोभमान जटामण्डल-वाले हाथ में बाण और चाप का धारण करनेवाले कमल दल समान नयन वाले तमाल वृक्ष के पत्र के सदृश नीलवर्ण वाले श्रीसीताजी की कामना करने वाले उछलते हुए दया रूप रस वाले सूर्यवंश के दीप श्रीरामजी को मैं भजता हूँ ॥१६॥

अचोदितकुलक्रमं पुनरपृष्टजातिक्रियं
नयानयविचारणाविधुरमस्तशङ्काकणम् ।
उपेयुषि विभीषणे झटिति दत्तमस्याभयं
मयेतिसमुदीरिता भगवतो गिरः पान्तु नः ।१७।

अन्वय :—उपेयुषि विभीषणे झटिति अचोदितकुलक्रमम् पुनः अपृष्टजातिक्रियम् नयानयविचारणाविधुरम्, अस्तशङ्काकणम् अस्य अभयम् मया दत्तम् इति समुदीरिताः भगवतः गिरः नः पान्तु ॥१७॥

समीप में आये हुए विभीषण को शीघ्र ही उसे कुल की रीति की प्रेरणा रहित और जाति की क्रिया की जिज्ञासा से रहित सर्व समर्थ अभय दाता होने से नयानय विचार रहित जिसमें आशंका का लेश भी नहीं है ऐसा अभय मैंने

दे दिया है, ऐसी कही हुई भगवान् की वाणियाँ हमारी रक्षा करे ॥१७॥

कह्लाराम्बुजगन्धिमन्दपवने खेलन्मृगालङ्कृते
कूजत्कोकिलबालचूतगहने कूले सरय्वाः शुभे।
पश्यान्वेति शुकं शुकीति चुबुके गृह्णन् करेण प्रियां
चित्ते भाति स कोऽपि मे दशशिरोमत्तेभकण्ठीरवः ॥१८

कल्हाराम्बुजगन्धिमन्दपवने खेलन्मृगालंकृते कूजत्कोकिल-बालचूतगहने शुभे सरय्वाः कूले करेण चुबुके प्रियाम् गृहन् अन्वेति तं पश्य इति शुकी शुकम् कथयति एतादृशः दशशे-रोमत्तेभकण्ठीरवः कोऽपि मे चित्ते भाति ॥१८॥

सौगन्धिककमल के खुसबू यानी सुगन्ध वाले मन्द पवन से युक्त क्रीडा करते हुए हरिणों से शोभित मधुर अव्यक्त शब्द करते हुए कोयलों के बच्चों से युक्त आम के वन वाले पवित्र सरयू नदी के किनारे यानी तीर पर अपने हाथ से स्वप्रिया श्रीजानकीजी के चिवुक में स्पर्श करते आरहे हैं उन्हें देखो ऐसा सूगी सूगे को कह रही है ऐसे रावण रूप मत्त हाथी के लिए सिंह रूपकोई पर पुरुष मेरे मन में प्रकाशित हो रहे हैं ॥१८॥

माद्यत्केकिनि चित्रकूटकटके मन्दाकिनीमेदुरे
प्रत्यग्रप्रसवस्य केसरतरोः प्रच्छायशीते तले ।

कौशेयास्तरणे विदेहदुहितुः कुर्वाणमङ्के शिरो
नीलाम्भोदनिभं भजे रघुकुलप्राचीनभाग्यं प्रभुम् ॥१९।

माद्यत्केकिनी मन्दाकिनीमेदुरे चित्रकूट–कटके प्रत्यग्रप्रशवस्य केसरतरोः प्रच्छायशीते तले कौशेयास्तरणे विदेहदुहितुः अंके शिरः कुर्वाणम् नीलाम्भोदनिभम् रघुकुलप्राचीनभाग्यम् प्रभुम् भजे ॥१९॥

मद्द से युक्त होते हुए मयुर वाले आकाश गंगा से स्निग्ध यानी सीचे हुए चित्रकूट पर्वत पर डाले डेरे में हर एक अग्रभाग में फल वाले केसर वृक्ष के निविडच्छाया के शीतल तल में रेशम (कुश) के विस्तरे पर श्रीसीताजी के गोद में मस्तक किये हुए नीलमेघ सदृश श्यामकान्ति वाले रघुकुल के पूर्व काल के भाग्य रूप प्रभु श्रीराम को मैं भजता हूँ ॥१९॥

त्रस्तप्रस्थित हंसयूथमभितो नृत्यन्मयूरव्रजं
बल्मीकान्तरसंप्रतिष्ठभुजगं पंक्तीभवच्चातकम् ।
पुष्प्यन्नीपसिलिन्ध्रकेतकिजनस्थानाटवीमेयुषा
कालिम्ना मम केनचित् कवचितं चेतो विराधद्विषा २०

त्रस्तप्रस्थितहंसयूथम् अभितः नृत्यन्मयूरव्रजम् वल्मीकान्तरसंप्रविष्टभुजगम् पंक्तिभवञ्चातकम् पुष्प्यन्नीप सिलिन्द्रकेतकिजनस्थानाटवीम् एयुषा विराधद्विषा केनचित् कालिम्ना मम चेतः कवचितम् ॥२०॥

पहले उद्विग्न होकर पीछे से चल पड़े हंस के समूह वाले चारो तरफ नाचते हुए मोरों के समूह वाले वल्मीक के अन्दर घुसे हुए सांप वाले पंक्तिकेआकार होते हुए चातक वाले फूलते हुए कदम्ब सिलिन्ध अर्थात् मौलसरी के बड़े समूह वाली जन-स्थान की अटवी यानी वन में आगमन कर चूकने वाले श्रीरामजी के विलक्षण श्यामत्व ने मेरे चित को कवचित अर्थात् बद्ध कर लिया यानी हर लिया है ॥२०॥

संरम्भस्खलितोत्तरीयमवनिन्यस्ताग्रपादभुजा-
वुद्यम्य श्लथनीविपुष्पनिचयं संगृह्णतीं जानकीम्।
पश्यन्पञ्चवटीवने मुहुरपि प्रच्छन्नएकान्तिके
हस्तोपात्तधनुः शरः स्फुरतु मे चित्ते रघुग्रामणी॥२१॥

पञ्चवटी वने संरम्भ स्खलितोत्तरीयम् अवनियन्यस्ताग्रपादम् श्लथनीविं भुजौ उद्यम्य पुष्पनिचयम् संगृह्णतीम् जानकीम् अन्तिके प्रच्छन्न एव मुहुः अपि पश्यन् हस्तोपात्त-धनुः शरः रघुग्रामणीः मे चित्ते स्फुरतु ॥२१॥

पञ्चवटी के वन में उतलाहट से चादर गिरते हुये से पृथिवी में आगे पाव रख ने वाली कमर कस ढीले हुये दोनों हाथों को उपर उठाकर फूलों के समूह को इकठ्ठा करती हुई श्रीजानकी को समीप में से छिपे हुए ही वार वार देखने वाले चाप और वाण को हाथ में धारण करने वाले

रघुश्रेष्ठ श्रीरामजी मेरे मन में विराजमान हों ॥२१॥

निवृत्ते खरदूषणत्रिशिरसामुन्मुलनादाहवे
वैदेही परिषस्वजे सपदि यं मूर्ता जयश्रीरिव।
उन्मीलत्पुलकश्रमाम्भसि धनुन्यस्तैकहस्ताम्बुजे
तस्मिन्सस्मितवक्त्रचन्द्रमसि मे देवे मनो धावति ॥२२

खरदूषणत्रिशिरसाम् उन्मूलनात् आहवे निवृते (सति) मूर्ता श्रीः इव वैदेही यम् परिषस्वजे तस्मिन् उन्मीलत्पुलकश्रमाम्भसि धनुर्बाणैकहस्ताम्बुजे सस्मितवक्त्रचन्द्रमसि देवे मे मनः धावति ॥२२॥

खरदूषण और त्रिशिरस के वध से युद्ध खतम हो जाने पर मूर्तिधारिणी जय लक्ष्मी श्रीजानकीजी ने जिसका आलिङ्गन किया, उन रोमाञ्चित शरीर और पसीने वाले हाथ रूप कमल में धनुष और बाण धारण करने वाले मुसकान युक्त मुखचन्द्र वाले सर्वाधिदेव श्रीरामजी के प्रति मेरा मन दौड़ कर जाता है ॥२२॥

पायात् पर्णकुटीगतो घनघटासिक्तावनीसौरभ
घ्राणव्यापृतपुष्करद्विपकुले नीपप्रसूनाकुले।
केकाकण्ठशिखण्डिताण्डवयुते खेलत्पुरोमारुते
नन्दत्प्रावृषि चित्रकूटकटके सीतासखो राघवः ॥२३॥

घनघटा सिक्तावनी सौरभघ्राणव्यापृतपुष्करद्विपकुले नीप प्रसूनाकुले केकाकण्ठशिखण्डिताण्डवयुते खेलत्पुरोमारुते नन्दत्प्रावृषि चित्रकूटकटके पर्णकुटीगतः सीतासखः राघवः पायात् ॥२३॥

मेघों की घटा से सींची हुई पृथिवी के सुगन्ध सूंघने में लगे हुए कमल में आसक्त गजयूथ वाले कदम्बों के फूलों से व्याप्त केका यानी मोरकीवाणी से युक्त गले वाले मयूरों के नाचने तथा खेलते हुए पवन वाले आनन्दित होती हुई वर्षा वाले चित्रकूट पर्वत के डेरे में पत्ते की कुटी में स्थित श्रीजानकी के मित्र राघव यानी श्रीरामजी रक्षा करें ॥२३॥

अर्घावर्तितमन्त्रमर्धविरतस्वाध्यायमर्धोज्झित-
ब्रह्मोपासनमर्धमुक्तहवनातिथ्यादिसर्वक्रियम् ।
दृष्ट्वा पञ्चवटीजुषो यमृषयः सार्थं तपो मेनिरे
कन्दर्पायुतसुन्दरं व्रजति मे काकुत्स्थमेनं मनः ॥२४॥

पञ्चवटीजुषः ऋषयः यम् दृष्ट्वा अर्घावर्तितमन्त्रम् अर्धविरतस्वाध्यायम् अर्धोज्झितब्रह्मोपासनम् अर्धमुक्तहवनादिसर्वक्रियम् तपः सार्थम् मेनिरे एनम् कन्दर्पायुतसुन्दरम् काकुत्स्थम् मे मनः व्रजति ॥२४॥

पञ्चवटी के सेवन करने वाले ऋषियों ने जिन्हें देखकर आधी मन्त्र की आवृत्ति करने वाला स्वाध्याय का आधे

(पृष्ठ ३२ का शेष)

इसी प्रकार 'रां' बीज में रामाय नमः मन्त्र एवं रामाय नमः मन्त्र में 'रां' बीच की व्याप्ति है। भगवान् का नाम 'बीजमव्ययम्' भी है विष्णु सहस्रानाम श्लोक ५० एवं उनका नाम 'मन्त्र' भी है (वि० स० श्लो० ४३) वे मन्त्रों द्वारा जानने योग्य होने से मन्त्र कहे गये हे मन्त्रवोध्यत्वाद् मन्त्रः--शा० भा० एवं विना अन्यथा भाव के ही संसार के कारण हैं, इसलिए उनका बीज अव्ययम् विशेषण सहित नाम है—अन्यथा भावव्यतिरेकेण कारण-मिति बीजमव्ययम् सविशेषणमेकं नाम शा० भा०'

अब 'रां' में 'रामाय नमः' कैसे हैं तो बीज पद 'रां' का विश्लेषण करने पर रां = र+अम् र (रामएकाक्षर शब्द कोष) अम् (द्वितीया विभक्ति) "'उपपद विभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी (वार्तिक) के अनुसार उपपदविभक्तिपद के सम्वन्द में होनेवाली विभ-क्ति से कारक विभक्ति क्रिया के सम्बन्ध में होनेवाली विभक्ति वल-वान् होती है। अव्ययोंके योग से जो विभक्तियाँ प्रयुक्त होती है उन्हें उपपद विभक्ति कहते है। अतः नमस्करोति क्रिया के योगमें नमः अव्यय की अपेक्षा चतुर्थी विभक्ति नहीं होगी, वल्कीनमस्करोति क्रियापद की अपेक्षा द्वितीया विभक्ति होगी-जैसे मुनित्रयं नमस्कृत्य (सि० कौ०)। अतएव 'यहाँ अम्' पद द्वितीयार्थक युक्त है। पुनः "नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषट्‌ योगाच्च-पा० २।१।" के अनुसार वही 'रामाय नमः' यह चतुर्थी हो गयी। अतएव 'रां' से 'रामाय नमः' सिद्ध हैं। पुनः 'रां' में जो अनुस्वार है उससे 'न' और 'म' दोनो अक्षर सिद्ध होता है—'अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण

Regd. No. GAMC 451

असावधानी ? कृपया ध्यान दें

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य पीठ पत्रिका के वर्ष ५ अंक २ के टाइटल नम्बर तीन में "डाक्टरों का सम्मान" शीर्षक से आचार्य पीठ में सम्पन्न कार्यक्रम का विवरण छपा है उस में असावधानी से डाक्डरों का पूरा नाम छपना रह गया है अतः कृपया सम्मान्य डाक्टरों का नाम निम्न प्रकार से पढ़ें ?

१– डा० श्री भरत भाई जे० भडीयादरा ।

२– डा० श्री सन्दीप भाई जे० दवे ।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्त्रत समादधति सज्जनाः ।।

स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य

मुद्रक:–श्रीरामानन्द प्रिंटिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद-२२

त्रिदण्डि संस्थान श्रीशेषमठ–धर्मप्रचार विभागसे धर्मप्रचारार्थ प्रकाशित

प्रेषक–श्री कोसलेन्द्र मठ सरखेज रोड
पो० पालड़ी, अहमदाबाद–३८० ००७

ग्राहक आ. नं.
प्रति श्री. ......

रजिस्ट्रार
गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार (यु. पी.)

वाराणसीस्थ आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यपीठाचार्य

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य- रामप्रपन्नाचार्य

योगीन्द्र प्रवर्तित विश्राम द्वारकास्थ श्री सीयमठ संचालित

ज.गु. श्री रामानन्दाचार्य-पीठ

सचित्र धार्मिक मासिक

संरक्षक- शेठ श्री अमरशी कुरजी पजिठिया
सम्पादक- स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य
सहसम्पादक- पं. शरच्चन्द्र शास्त्री

ऐश्वर्यं यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यंदिगीशैर्जुतं
चित्रंचा खलमद्भूतं शुभगुणा वात्सल्यसीमा च या।
विद्युत् पङ्कजसमानकान्तिरमितक्षान्तिः सपद्माक्षणा
दत्तान्नोऽखिलसम्पदो जनकजा रामप्रिया सानिशम ॥
(जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्याः)

कार्यालयः श्री कोसलेन्द्र मठ, सरखेज रोड, पालड़ी,
अहमदाबाद-३८०००७

वर्ष ५ विक्रमाब्द २०४० अंक ४-५

श्रीरामानन्दाब्द ६८३ १ जुलाई १९८३

स्वयं ज्ञान क्या वस्तु है ? इसकी उत्पत्ति और विकास कैसे होता है जन्म के समय मनुष्य के मन में कोई ज्ञान रहता है या नहीं ? उन की उत्पत्ति हमारे मन में कैसे होती है ? आदि प्रश्नो को उठाकर पाश्चात्य दर्शन में तीन मत हैं—

(१) अनुभव वाद (Lrmplrlelsm) का कथन है कि हमारे मन में कोई जन्म जात प्रत्यय नहीं रहता है । मन को एक कोरा कागज के समान मानना चाहिए । ज्ञान की उत्पत्ति बाह्य अनुभवों संवेदना के द्वारा होता है । ज्ञान के निर्माण में बुद्धि का कोई स्थान नहीं है । आदि ।

(२) बुद्धिवाद (RATIONALISM) का कथन है कि सभी सनूत और सामान्यज्ञान का उदगम स्थान बुद्धि है, अनुभव नहीं । बुद्धि प्राकृतिक देन है, जिसे लेकर हम जन्म लेते हैं। वुद्रि जन्म जात है । हमारे मन में जन्मजात प्रत्यय हैं ।

(३) परीक्षावाद (CRITISISM) यह मत ज्ञान में बुद्धि और अनुभव दोनों का सहयोग मानता है । उनका कहना है कि संवेदन के बिना अन्धा है और बोध के बिना संवेदनखोखला (PEREEPTS WITHOUT CONEEET SARE BLIND AND OOM CONEEPTS MITHOUT PEREEPTS EMPTY) ज्ञान की सामग्री अनु भव से मिलती है और उसका रूप बुद्धि से ।बुद्धि इन्द्रिय ज्ञान से पहले है । ज्ञान को अन्तिम प्रामाणिकता बुद्धि वादी बुद्धि को और

(शेषटाइटल नं. ३ पर)

'श्रीरामावतार'

नित्य पार्षद–जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्य जी वेदान्तकेसरी जी

अखिल कल्याणगुणसागर और समस्त हेय दोषरहित भगवान मर्यादा रक्षक पुरुषोत्तम सर्वेश्वर श्री रामचन्द्र जी का दिव्य अवतार, परम पवित्र श्री रामनवमी के दिन हुआ था। हम लोग इस पुनीत दिन को देखकर परम हर्षित होते हैं। और इस सुअवसर पर हमारे हृदय महल पर परमपूज्य भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के जगदुद्धरणशील दिव्य चरित्र अंकित होते हैं। भगवान् अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के नायक हैं। जिसको हम जगत् शब्द से कहते हैं, वह भगवद्विभूति है। शास्त्रकारों ने इस विभूति के दो विभाग अपने शास्त्रों में लिखे हैं। पहले सत्यविभूति है, जिसके परम व्योम, नित्य-धाम साकेतधाम, आदि नाम हैं। जिस नित्य धाम में भगवान् श्रीरामचन्द्रजो महाराज अपने नित्य स्वरूप पारषदों के साथ अपने शेषभूत नित्य और मुक्त जीवों को नानाविध महाश्चर्य कारक आनन्द प्रदान करते हुए विमलादि सखीजनों से सेवित जगन्माता श्री मैथिली देवी के साथ अनन्य साधारण अपने दिव्य मंगल विग्रह से विराजमान रहते हैं। दूसरी लीला विभूति है। इसमें भगवान् अपने संकल्प से पधारकर अनन्त

लीलाओं का विस्तार करते हैं। लीलाविभूति में वह आदि देव अपनी सदिच्छा से ही पधारते हैं। और अपने अंगभूतपार्षदों और नित्य मुक्त आदि जीवों को भी लीला में सम्मिलित होने के लिए अपने संकल्प से प्रेरित करते हैं। भगवान का लीला विभूति में पधारने में उनका संकल्प ही कारण है। एवं संकल्पानुकूल ही अन्य और भी तीन प्रयोजन श्री गीताचार्य जी ने स्वयं श्री मुख से अर्जुन को उपदिष्ट किया है।

"परित्राणायसाधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्म संस्थापनार्थाय संभावामि युगे युगे" भगवान् के अनंतभक्त साधुजनों के परित्राण के, लिये दुरात्मा जीवों के विनाश के लिए, और धर्मसंस्थापन के लिये मै युग युग में अवतार लेता हूँ। यह तीनों कार्य हमारे मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी महाराज के चरित्र में बहुत ही स्पष्ट देखे जाते हैं। जिस स्वरूप में भगवान् विराजते हैं। वह उसी स्वरूप के अनुगुण धर्मों का भी पालन करते हैं। भगवान् में उपयुक्त कार्यों कि पूर्णता सम्पादन करनेके लिए अपने पूर्ण स्वरूप से ही, देवानां पूरयोध्या, इस वेद वाक्य से प्रशंसीत और साकेतपद से बोधित दिव्यधाम श्री अयोध्यापुरी में महाराज दशरथजी के गृह में अवतार धारण किया था 'वेद वेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे' इस वाक्य से सर्वेश्वर पर पुरुष स्वयं दशरथ महाराज के यहाँ अवतार धारणकरते हैं यह स्पष्ट ही कहा गया है। मनुष्य शरीर धारण करके भगवान् ने भक्त सुखदायिनि

मानत्र भाव लिए हुए ही अनेक लीलाओं का विस्तार किया है। इसी भाव से आपने ब्रह्माजी से कहा है कि 'आत्मानं मानुषं मन्ये' मैं अपने को मनुष्य मानता हूँ। साधारण योगी जीवों के भी चरीत दुर्ज्ञेय देखे जाते हैं भगवान्तो माया मृगीनर्तक ही हैं। उनकी लीला दुर्विभाव्यहो इसमें क्या आश्चर्य है। लीला शिशु भगवान्ने एक साधारण बालक की तरह कुलगुरु वसिष्ठ जी से समस्त विद्याओं को बहुत थोडे ही समय में पढ़ लिया। और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार साधु परित्राण रूपकार्य में तत्पर हो गये। महर्षि विस्वामित्र जी के यज्ञ की रक्षा के लिए उनके साथ चल दिये। ताडका, मारीच और सुबाहु आदि साधुद्रोही जीव आत्माओं को समन करके मार्ग में अहिल्या का शाप मोचन किया इन सब लीलाओं में भी प्रभु का प्रमुख निरंकुश ऐस्वर्य प्रकट होता है। इसके आगे स्वावतार प्रयोजन को विसिष्ट रूप से सिद्ध करने के लिए अपनी अनन्य सहचारिणी महारानी जनक नन्दनीजी के साथ बन में पधारे और वहाँ पर स्वकार्य पूर्ण रूप से सम्पन्न किया। यह ऋषियों के इस वाक्य से स्पष्ट ज्ञान होता है "ते वयं भवतारक्ष्या भवद्विषयवासिनः। नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नोराजा जनेश्वरः"। अर्थात् हम आपके राज्य के रहने वाले हैं। आप हमारे राजा हैं नगर में रहें या बन में रहें आप को हमारी रक्षा करणीय है। भगवान् ने भी महारानीजी से इसी आशय को व्यक्त करने वाला एक वाक्य

इसप्रकार से कहा है "अप्यहं जीवनंजह्यां, त्वां वा सिते सलक्ष्मणाम्। न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः। तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम्। अर्थात् हे मैथिलि! मैं अपना जीवन और लक्ष्मण जी सहित तुम्हें भले हो त्याग दूँ, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा को विशेष करके ऋषियों के सामने उनके रक्षण के लिए की गई प्रतिज्ञा नहीं छोड सकता हूँ। इसलिए ऋषियों का पालन अवश्य करुँगा इसप्रकार भगवान् श्रीरामका साधु जन रक्षण के लिए दृढ संकल्प ऊपर के उनके वाक्यों से विदित होता है। दुष्टाचार आत्माओं के विनाशन तो पदे पदे भगवान श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र में विद्यमान हैं। धर्म संस्थानार्थाय, इसका चरितार्थ वाली और शम्बूक के शासन से स्पष्टतया होता है। बाली को भगवान् ने कहा कि, "तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः। भ्रातुवर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मसनातनम्। मैंने जिस कारण से तुमको मारा है वह यह कि सनातन धर्म के विरुद्ध छोटे भाई की स्त्री के साथ तेरा असद्व्यवहार है। इस प्रकार प्रभु ने सनातन धर्म की रक्षा के लिए बाली का बध किया। धर्म मर्यादाओं का रक्षण करने के लिए ही प्रभु ने अपना अवतार बताया है। यह सुन के बाली के हृदय से सब कुतर्क शान्त हो गये और उसने कहा कि 'यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत्तथैव न संशयः" हे पुरूषोत्तम! जो आप कहते हैं, वह सत्य है। इस में संदेह नहीं है। शंबूक नामक शूद्र की तपश्चर्या त्रेता युग

के अन्त में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के राज्य शासन के समय में होने से महान् अधर्म माना गया। और उसका विचार भगवान् ने वशिष्ठादि अष्ट मंत्रीयों के साथ किया त्रेता युग के अन्त में शूद्र तपश्चर्या नहीं कर सकता। क्यों कि यह कार्य अधर्म है। भविष्यच्छूद्रयोन्यांहि तपश्चर्या कलौ युगे। अधर्मः परमोराजन् द्वापरे शूद्रजन्मनः॥ सवै विषयपर्यन्ते, तव राजन्यहातपाः। अद्यतप्यति दुर्बुद्धि, स्तेन बाल वधोह्ययम्। इस प्रकार धर्म निर्णय करके भगवान् ने शम्बूक शुद्र को मारकर सनातन धर्म की रक्षा की। इसी प्रकार शरणागति धर्म के लिये भगवान ने अपनी सुदृढ़ प्रतिज्ञा उद्घोषित की थी। सकृदेव प्रपन्नाय, तवास्मीति च याचते। अभयं सर्व भूतेभ्यो, ददाम्येतद्व्रतं मम। एक वार भी जो प्राणी मेरे शरण में आकर मैं आपका हूँ यह याचना करता है, उसकों मैं सर्व भूतों से अभय कर देता हूँ। यह मेरा व्रत है। इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के दिव्य चरित्र में अवतार प्रयोजन पूर्ण रीति से सम्पन्न होता है। अन्त में स्वधाम पधारते समय "भ्रातृभिः सह देवाभैः, प्रविशस्व स्विकान्तनुम्। यामिच्छसि महाबाहो, तां तनुं प्रविशस्विकाम्॥ इस ब्रह्मा जी की प्रार्थना को सुनकर भगवान लीला विभूति में सुशोभित साकेत पुरी के समस्त प्राणियों को अपने दिव्यधाम में ले गये। इसका वर्णन महर्षि वाल्मीकि इस प्रकार करते हैं।

"नोच्छसत्तद्योध्यायां सुसूक्ष्म मपिदृश्यते । तिर्यग्योनिगताश्चैव सर्वे राममनुव्रताः" तात्पर्य यह है कि. प्राणीमात्र भगवान् के साथ ही गये थे । उन सबके लिए सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम ने संतानक लोको में जाने के लिए आज्ञा दी थी । भगवान् श्री रामचन्द्र जी के इस दिव्य चरित्र में सर्वत्र अपरिमित निरंकुश ऐश्वर्य समाया हुआ है । ऐसे ही भगवान् के गुप्त भी अनेक चरित हैं । वह सम्प्रदाय गम्य होने के कारण यहाँ संक्षेप किया गया है ।

"साकारोपासना"

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी वेदान्त केसरी

साकारो पासना का रहस्य प्राचीन कालके भारतने यथार्थ रूप से समझा था । वह समय साकारोपासना को प्रधान रूप देता था । अत एव सर्वत्र देश में शान्ति, सौमनस्य और निर्भिकता का साम्राज्य था । इस उपासना के सिद्धान्तों का सब जगह महात्मा साधु, और विद्वान् पुरूष प्रचार किया करते थे । और समस्त जनता आदर के साथ श्रवण करके अपने कर्तव्य पथ में उसे लगाती थी । ऐसे पवित्र आचरण से हमारा देश अन्य समस्त देशों का शिरो भूषण बना था । इतना ही नहीं देश के समस्त सम्प्रदाय भी इस सार्वभौम सिद्धान्त साकारोपासना के अनुगामी होकर ऐक्य सूत्र में परिबद्ध होते

हुए अन्योन्यका बल प्राप्त करके विजयी बने रहते थे ।

आज इस साकारोपासना से लोक रुचि सर्वथा परिवर्तित हो गयी है । कुछ परिगणित जन समूह को छोड़कर बहुत से मनुष्य इस सिद्धान्त से पराङ्मुख बन बैठे हैं । अतएव पदे पदे दुःख दौर्मनस्य का अनुभव कर रहे हैं । वर्तमान जनता अपने इस सुदृढ सिद्धान्त साकारोपासनासे शिथिल होकर जनता जहाँ तहाँ भटक रही है । जो कुछ महापुरुष इसमें दृढता रखते हैं । उनका परिहास करके स्वयं विभ्रान्त बने हुए भी उन्है इस पवित्र सिद्धान्त से गिराने का साहस करते हुए इस समय बहुत से मनुष्य देखे जाते हैं । हमारे पूर्वाचार्य जगदगुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी आदि धर्माचार्यों ने महान् कष्ट को उठाकर ऐसे धार्मिक सिद्धान्त का प्राणपण से रक्षण किया था । परन्तु आज इसका लेश मात्र भो विचार नहीं किया जा रहा है । और उन धर्ममाचार्यों के अनुयायो कहलाते हुए भी अन्य विचाराक्रान्त सदाचार्यो से संस्थापित सिद्धान्त के विरोधो मनुष्यों के वातावरण में फंसे जाते है । दृष्टान्त के लिये अभी कुछ एक मनुष्यो ने बौद्ध गया को फिर से बौद्धो को देने की आवाज उठाई तो कितने हमारे आचार्य प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुगामी भी उसी स्वर में स्वर मिलाने लग पडे । इसी को कहते हैं हृदय दौर्बल्य अस्तु । भगवदिच्छा प्रबल है । इसका शासन

समस्त प्राणियो पर है । वह कैसे भी हटाया नहींजा सकता है। हमें भी इसे भगवदिच्छा के परतन्त्र होकर प्राचीन धर्म मर्यादाओ के अनुसार ही जगत् की प्रवृत्ति में भाग लेना चाहिये। स्वतन्त्र होकर नहीं। इस छोटे से लेख मे तो मुझे साकारोपासना का स्वरुप बताना है । अतः प्रकृत में उसका विवेचन आरम्भ करता हूँ ।

परमात्मा की उपासना निराकार और साकार इस प्रकार उपास्य स्वरूप के द्वैविध्य होनेके कारण दो प्रकार की हो सकती है ऐसा भी कतिपय आचार्योंका सिद्धान्त है । परन्तु निराकारोपासना करना इस समय संसार के लिये बहुत कठीन ही नहीं असंभव है । बडे बडे संयमी साधु महात्माओंके हृदयमें भी निराकार तत्वो के लिये अनुकूलता होना कठीन है । अत एव उपासना के लिये सर्वाचार्योंने सगुण और साकार स्वरूप को ही श्रेष्ठ माना है । श्रीमज्जगद्गुरु रामानन्दाचार्यजी ने तो अपने आनन्दभाष्य में यह सिद्धान्त किया है कि उपास्य देव ब्रह्म कहें ईश्वर कहे। चाहे नारायण कहें । वे साकेतलोक के अधिपति देवाधिदेव द्विभुजधारी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही हो सकते है । यही प्रभु साकार और निराकार शब्दों के वाच्य हैं । परन्तु निराकार पदका सर्वथा आकार रहित अर्थ नहीं है ।

इस पदका अर्थ है प्राकृत आकार से रहित । अर्थात् परमपुरुषप्रभु श्रीरामचन्द्रजी माया (प्रकृति) सेपर हैं । उनका स्वरूप प्रकृतिका कार्य नहीं है । इतना ही नहीं उनका दिव्य धाम-साकेत लोक

भी अप्राकृत हैं। अतएव उसे नित्यधाम, नित्य विभूति, त्रिपाद विभूति, और परमव्योम आदि पदों से वेद में वर्णित है। 'क्षयन्तमस्य रजसः पराके'' इत्यादि श्रुतियोंमें उस धामका वर्णन आता है। वह प्रकृतिसे पर होने के कारण सर्व साधारणसे अचिन्त्य है।

"प्रकृतिभ्यः परं यच्चतदचिन्त्यस्यलक्षणम्''

इस प्रकार ऋषियों ने अचिन्त्य बतलाया है। इसका चिन्तन ज्ञान विषय भी भगवदनन्यभक्त नित्य मुक्त महापुरुष करते ही है। ''तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्तिसूरयः' इस वेद वाक्य में 'सूरि विज्ञानयुक्त पूर्वोक्तमहात्मा सदा दर्शन करते हैं। यह स्पष्ट हो गया है। इसलिए भगवान का धाम विरजापार होने के कारण त्रिपाद विभूति में है। विरजा के इस ओर यह सब लीला विभूति है। अतः इसका परिणाम उत्पत्ति और विनाश हुआ करता है परन्तु नित्य विभूतिका नहीं। वहाँ कालका सामर्थ्य नहीं है। "न कालस्तत्र वै प्रभुः'' इत्यादि पौराणिक वचनों से यह अर्थ ज्ञात होता है। इन दोनो विभुति के नायक एक भगवान श्रीजानकीपति श्रीराघवेन्द्रजी स्वतन्त्र रूप से हैं।

यह विषय साम्प्रदायिक ग्रन्थों में पूर्णतया प्रतिपादित है। प्रकृत में निराकार शब्दका तात्पर्य प्राकृत (मायिक) आकारों से रहित होना यही दीर्घदर्शी मुनियों ने सिद्ध किया है। भगवान् निराकार है– अर्थात् मायासे कल्पित परिमित (परिच्छिन्न) आकार वाले नहीं है।

और साकार से तात्पर्य है अपनी इच्छा से स्वसंकल्पानुसार ही रूपधारण करके तदनुसार व्यापार चेष्टा आदि भी करते रहना। निराकार और साकार इन दोनों अवस्थाओं में प्रभु तो अपने स्वरूप स्वभाव गुण, वैभव इनसे युक्त ही रहते है। भगवान के धर्मों मे कभी भी अनिच्छित परिवर्तन नहीं होता वह सदा एकरस रहते है। अतः एव "आनन्दघन' कहे जाते है। इन दोनो अवस्थाओं में साकारावस्था प्रभु का ध्यान भजन करना उपासकों के लिये शीघ्र लाभकारी है। इसीलिये कहाभी है कि :-

"उपासकानां सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना' परमात्माअपने भक्तों की रुचिके अनुसार ही स्वरूप धारण करते है। जिससे उपासक भक्त किसी विशेष परिश्रम के बिनाही भगवानको हृदय में धारण कर सके। प्रभुके हृदयस्थ होनेपर सर्व काम परिपूर्ण होते हैं।

(१) अब साकारोपासनाका अन्य भी विशेष फल प्रदर्शित किये जाते है। योगदर्शनमें "ईश्वर प्रणिधानाद्वा' यह सूत्र ईश्वर भक्ति से चित्तकी शुद्धि वतलाता है। अतएव "समाधिसिद्धिरीश्वर-प्रणिधानात्' इस द्वितीय सूत्रमें महर्षि पतंजलिने ईश्वर प्रणिधान भक्तसे समाधिकी सिद्धि होती है यह लिखा है। योगाचार्यों के मत में समाधिका सिद्ध हो जाना ही सर्वोत्तम लाभ अर्थात मोक्ष माना जाता है। इस मोक्ष को प्राप्त करनेका साधन ईश्वर भजन है। यह विषय इस सूत्र से स्पष्ट हुआ। ईश्वर प्रणिधान-भजन रूप साधन साकार परमात्माका हो सकता है। निराकार पदार्थका होना दुर्घट है।

(२) साकार परमेश्वर की उपासना शीघ्र हृदय गामी होकर शीघ्र फलदायिनी होती है। निराकारपदार्थ शीघ्रतया हृदयाधिरूढ नहीं होता। क्योंकि हृदय में स्थापन के लिये नाम, रूप, गुण, कर्म आदि विशेष कुछ हो तो सविशेष साकार कहा जायगा। और ऐसा साकार मन वाणीका विषय बन सकेगा। निर्विशेष कदापि नहीं बन सकता।

(३) साकारोपासनासे स्वकीय आचरणों का आवेक्षण हो सकता है। और उन आचरणों के सुधारने का भी पूर्णतया उपाय हो सकता है। निराकार में यह बात नहीं है।

(४) जिस पदार्थ की उपासना (भावना)की जाती है उस पदार्थ में तादात्म्य (ताद्रूप्य) होना परमावश्य होता है। और इसी अन्तिमावस्था को अर्थात् ब्रह्म तादाम्य को ही मोक्ष माना जाता है। यह ब्रह्म निराकार निर्गुण में कैसा तादात्म्य! किस आकार विशिष्ट के साथ तादात्म्य आकार मानते ही नहीं।

(५) साकारोपासना—उपास्य को साकार मानने पर ही आकृति विशेष का अनुसन्धान करके हो सकती है। निराकार में आकृति कल्पना की जायेगी तो वह भ्रान्ति कही जा सकती हैं वास्तविक नहीं इस अवस्था में यदि उपासक यह जान ले की मैंने जिस देव की उपासना के लिए आकृति कल्पित की है अथवा गुण अध्यस्त किये है। वह परमार्थिक नहीं है तब उपासक के हृदयमें

परितोष न होगा। और उसे वास्तविक ज्ञान के लिये अभिलाषा बनी ही रहेगी. इसलिये भी साकार ब्रह्म का साकरोपासना करना श्रेयस्कर है। इन फलों के अतिरिक्त भी अनन्त फल है। जो उपासको को दृष्टि में स्वयं आ जावेगे। जब वह भजन में तल्लीन हो जायेंगे। इसी आशय को लेकर गीताचार्य जी ने कहा है कि 'क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्': अर्थात् निराकारोपासन में अधिक क्लेश है यह विषय साधको का स्वयं अनुभव करलेने पर स्पष्ट ज्ञात हो सकता है। उत्तम मध्यम और मन्द इन तीनों प्रकारके अधिकारियों के लिए साकारोपासना ही सर्वोत्कृष्ट फलदायिनी है।

ज्ञान तत्त्व विचार

(ले. वैदेहीकान्तशरण – तुरकी)

ज्ञान को ही मुक्ति पाने का साधन कहा गया है– "ऋतेर्ज्ञानान्नमुक्तिः।:", "तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसाधिगमः–न्या. सू. १।१।१।।" मोक्ष के लिये ज्ञान अनिवार्य हैं। चाहे प्रमाण-प्रमेय आदि पदार्थों का ज्ञान हो, चाहे ज्ञेय-ध्येय का ज्ञान, चाहे भक्ति प्रपत्ति का ज्ञान, चाहे आचार-विचार का ज्ञान, चाहे विधिनिषेध का ज्ञान, चाहे योग-तप का ज्ञान, चाहे कोइ भी ज्ञान, परन्तु ज्ञान ही आवश्यक।

अब ज्ञानतत्त्व क्या है ? इस पर विभिन्न दर्शनों का विभिन्न मत है। सांख्यदर्शन ज्ञान और बुद्धि को अलग अलग मानते हैं। उनका कथन है कि बुद्धि अचेतन (जड़) है और उस जड़ बुद्धिरूप करण का व्यापार ही ज्ञान है। सत्व-रजस्तम त्रिगुणात्मिका प्रकृति जड (अचेतन)है। किन्तु अचेतन होने पर भी बुद्धि में आत्मा में रहनेवाला चैतन्य का प्रतिविम्ब पडने के कारण वह बुद्धि आत्मा की चेतनता के प्रकाश में विषयों को प्रकाशित कर उसका ज्ञान करा देती है।

परन्तु न्यायदर्शन इस बात को नहीं मानता है। न्यायदर्शन का कथन है कि ज्ञान अचेतन बुद्धि का व्यापार नहीं हो सकता हैं। क्योंकि ऐसा होने से वह बुद्धि चेतन होगी। देहादि संथान से भिन्न एक चेतन आत्मा ही ज्ञान का आधार हैं। आत्मनिष्ठ चेतनता का प्रतिविम्ब जड़ बुद्धि में नहीं पड़ सकता क्योंकि आत्मा की चेतनता परिणाम रहित है। इस हेतु से जड बुद्धि में उसका प्रतिविम्ब पडना अशक्य है। अतः बुद्धि में ही चैतन्य मानना होगा। जिससे प्रत्येक ज्ञान के लिये आत्मा एवं बुद्धिरूप दो चेतनों के व्यापार की आवश्यकता होगी। इसलिए यह सांख्यमत अप्रमाणिक है।

इस सांख्यमत का खण्डन करते हुये गौतम ने कहा है कि बुद्धि, उपलब्धि और ज्ञान ये सभी पद दूसरे पदार्थ नहीं हैं-''बुद्धिरूपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम्—न्या. सू. १।१।१५॥

यहाँ आक्षेप किया जाता है कि केवल पर्याय शब्द के कहने से लक्षण नहीं हो जाता है। क्योंकि लक्षण तो उसे कहते हैं जो सजातीय और विजातीय पदार्थों से भेद करे (सजातीय विजातीयवस्त्वन्तरेभ्यः स्वलक्ष्यस्य व्यावर्तको लोक प्रसिद्धः कश्चिदाकार विशेषो लक्षणम्'' न्यायमञ्जरी कारने ऐसा प्रश्न उठाकर स्वयं उसका उत्तर भी किया है- ''ननु पर्यायोच्चारणमेतन्नबुद्धेर्लक्षणमभिधीयते। न पर्यायप्रयोगस्यैव लक्षणक्षमत्वात्। लक्षणं हि तदुच्यते येन समानेतरजातीयेभ्यो लक्ष्यं व्यवच्छिद्यते। व्यवच्छिद्यते च बुद्धिर्बुद्ध्यादि पर्यायवाच्यतयैव तेभ्य इति नाभिधानमाला मात्रमिदम्।'' अर्थात् बुद्धि के पर्याय बुद्धि आदि (उपलब्धि, ज्ञान) की वाच्यता से ही समानजातीय और विजातीय अन्य पदार्थों से भेद हो जाता है। अत एव यह पर्यायमाला मात्र नहीं कहा गया है, अपितु लक्षण भी बतलाया गया है। पद विशेष सामान्य रूप से सम्पूर्णवाच्य अर्थ में अर्थ सङ्गत रखते हैं। इस प्रकार के पदों के सम्बन्ध में पर्याय से भी लक्षण हो सकता है। क्योंकि उसमें भी पदार्थ का बोध करने की शक्ति है और पदार्थ का बोध कराना ही लक्षण का प्रयोजन है, ('उद्दिष्टस्य तत्त्व

व्यवस्थापको धर्मो लक्षणम्') । लक्षण का दो प्रयोजन कहा गया है व्यावृत्ति और व्यवहार (व्यावृत्तिर्व्यवहारो वा लक्षणस्य प्रयोजनम्) । अतएव तर्क संग्रह में बुद्धि का लक्षण लिखा है— सर्व व्यवहारहेतुर्गुणोबुद्धिर्ज्ञानम् । जिसकी दीपिका टीका में लिखा है—जानामीत्यनुव्यवसायगम्यज्ञानत्वमेव लक्षणमित्यर्थ । न्याय-बोधिनी टीका में लिखा है—"व्यवहारः शब्दप्रयोगः, ज्ञानं विना शब्दप्रयोगेणासम्भवाच्छब्दप्रयोग रूपव्यवहारहेतुत्वं ज्ञानस्य

अब बुद्धि आदि पर्याय शब्द ज्ञान के लक्षण का बोध कैसे कराते है ? तो अपने वाच्यता के द्वारा । बुद्धि का अर्थ है—"बुद्ध्यते अनया इति बुद्धिः" अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा को किसी वस्तु या विषय का बोध हो वह पदार्थ बुद्धि है । 'बुधिर् अवबोधने (४ वा०) 'बुध अवगमने (४ वा०) "ज्ञा अवबोधने (७ वा०) "अतएव बुद्धि और ज्ञान एक ही हैं । अमर कोष में बुद्धि के पर्याय हैं—

"बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः ।
प्रेक्षोपलब्धिश्चित्संवित्प्रतिपज्ज्ञप्तिचेतनाः॥१।५।१॥"

अ. को. में मोक्ष विषयक बुद्धि का नाम ज्ञान कहा है—
"मोक्षधीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः ।१।५।६।।"

पदार्थचन्द्रिका में बुद्धि को आत्मनिष्ठ प्रकाश (आत्माश्रयः प्रकाशः) एवं तर्क प्रकाश में इसे आत्मा का गुण और अर्थ का प्रकाश (आत्मगुणोवा सत्यार्थ प्रकाशः) कहा है ।

मध्व वेदान्त में इसे दो प्रकार का कहा गया है—

१ तत्त्वरूपा एवं २ ज्ञानरूपा । तत्त्वरूपाबुद्धि को वहां द्रव्य माना गया है ।

न्याय दर्शनमें आत्माको ज्ञान का अधिकरण (आधार) कहा गया है-"ज्ञानाधिकरणमात्मा ।" इसकी न्यायबोधिनी टीका में लिखा है-"अत्राधिकरणपदं समवायेन ज्ञानाश्रयत्व लाभार्थम् । जिसकी टिप्पणी में लिखा है-"अन्यथा कालिकसम्बन्धेन कालेऽपि ज्ञानस्य सत्वेनातिव्याप्तिः स्यात् ।" पदकृत्य में लिखा है-"समवायसम्बन्धेन नित्यज्ञानवान् ईश्वरः (परमात्मा टिप्पणि में लिखा है-"जीवत्वं च समवायेन जन्यज्ञानाधिकरणम् ।"मुक्तावली में लिखा है-"ज्ञानोत्पादकात्मनः संयोगाभावेन ज्ञानाधिकरणत्वाभावात् मूलोक्तलक्षणमव्याप्तमतो ज्ञानसमानाधिकरणद्रव्यविभाजकोपाधिमत्वमत्रलक्षणं बोध्यम् ।" प्रतिबिम्बटीका में लिखा है-"परमात्मत्वं च समवायेन नित्यज्ञानवत्वम् । समवायेन जन्यज्ञानवत्वं जीवत्वम् ।" दीपिका टीका में लिखाहै--"नित्यज्ञानाधिकरणत्वं जोवत्वम् " जीव एवम् ईश्वर गत प्रमा (यथार्थ ज्ञान) नित्या है एवम् जीव गत प्रमा अनित्या । इसलिए कहा गया है नित्यं लक्षणमात्रा में उदयनाचार्य ने कहा है- "तत्र नित्याया आश्रयः प्रमाणम् । अनित्यायाः साधकतम प्रमाणम् । "

न्यायलीलावती में लिखा है-" प्रकाशो बुद्धिः । सा द्विधा विद्या चाविद्या च तत्राविद्या संशय विपर्यय स्वप्नानध्यवसाय लक्षणा ।

(शेष टाइटल २ पर)

सम्पन्न वाला आधी छोड़ी हुई ब्रह्म की उपासना वाला आधी छोड़ी हुई हवनादि सत्क्रिया वाला तप सफल माना उन अयुत कामदेव के समान सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी के प्रति मेरा मन जाता है ॥२४॥

चारुस्मेरमुखाम्बुजं चरणयोर्मञ्जुक्वणन्नूपुरं
चञ्चद्रत्नललन्तिकालिकलसत्कस्तुरिकाचित्रकम् ।
कान्तव्याघ्रनखानुबन्धिकनकग्रैवेयकालंकृतं
कौशल्याङ्कविभूषणं कुवलयश्यामं भजामः शिशुम् ॥२५॥

अन्वय - चारुस्मेरमुखाम्बुजं चरणयोःमञ्जुक्वणन्नुपुरम् चञ्चद्रत्नललन्तिकालिकलसत्कस्तूरिकाचित्राकम् कान्त व्याघ्र नखानुबन्धिकनकग्रैवेयकालंकृतम् कौसल्याङ्कविभूषणम् कुवलयश्यामम् शिशुम् भजामः ॥२५॥

सुन्दर मुस्कुराहट शील मुख रूप कमल वाले, पांवों में मधुर शब्दायमान नूपुरवाले, शोभायमान रत्नों की ललन्ति का नामक भूषण विशेष की पंक्ति वाले, और शोभमान कस्तूरी के चित्र वाले, मनोहर बाघ के नाखूनों से युक्त वाले गलेके भूषण से शोभित श्री कौसल्या माताजी के गोद को सुशोभित करने वाले नील कमल के समान श्याम वर्णवाले बालक श्रीरामचन्द्र जी को हम भजते हैं ॥२५।

दत्वा पार्श्वजुपोविदेहदुहितुश्चापं कराम्भोरुहे

गुल्फद्वन्द्वनिवेशितस्फिगवनौ कुर्वन्समे जानुनी।
दृष्ट्या कुणितया कराम्बुजयुगव्यासक्तमूलाञ्चलं
पश्यन्बाणमृजुर्नवेति हृदि मे वीरोऽयमारोहति ॥२६॥

अन्वयः विदेहदुहितुः कराम्भोरुहे चापं बाणं च दत्वा गुल्फद्वन्द्वनिवेशितस्फिगवनौ जानुनी समे कुर्वन् कूणितया दृष्ट्या कराम्बुज युगव्यासक्तमूलाञ्चलम् ऋजुः नवा इति पश्यन् अयं वीरः मे हृदि आरोहति ॥२६॥

बगल में स्थित श्री सीताजी के हाथ रूपी कमल में धनुष तथा बाण देकर पृथिवी में दोनों गुल्फ और नितम्बों को निवेशित कर दोनों जानुओं के बराबर करते हुए मोड़ी हुई तीखी दृष्टि से दोनों हस्त कमल में लगे मूल अञ्चलको यह सरल है कि नहीं इस तात्पर्य से देख रहे यह वीर श्री रामचन्द्रजी मेरे हृदय में आरोहण अर्थात् प्रवेश कर रहे हैं ॥२६॥

उन्मीलन्नवमल्लिकापरिमलोदञ्चद्द्विरेफाऽऽरवै-
रारण्ये तुलसीवने मुखरिते दृश्ये शुकश्यामले।
शश्वल्लीनमयूरदग्वलनया शश्वद्गृहीतं बला-
ज्जानक्या सह चित्रकूटकटके देवं मनो धावति ॥२७॥

अन्वयः—उन्मीलन्नवमल्लिका परिमलोदञ्चद् द्विरेफारवैः मुखरिते शुकश्यामले दृश्ये आरण्ये तुलसीवने शश्वल्लीन मयूर

वलनया बलात शश्वत् गृहीतम् चित्रकूटकटके जानक्या सह देवं मनः धावति ।।२७।।

प्रगट होती हुई नई बेलियों के खुसबू में उठते हुए भौंरों के शब्दों से शब्दायित पोपट के समान हरे देखने के योग्य वन में हमेशा छिपे हुए मोरों की दृष्टि की वलना से यानी घुमाने से सर्वदा गृहीत यानी निरीक्षित हुए चित्रकूट पर्वत के मंदिर में श्री जानकी जी के साथ श्र रामरूप देव के प्रति मेरा मन दौड रहा है अर्थात् मेरा मन श्रीसीतारामजी के दर्शनार्थ आकृष्ट हो रहा है ।।२७।।

सीतादत्तकराम्बुजं पदयुगश्लिष्यन्मणीपादुकं
हर्षावेक्षिविहारबर्हुपसृताभ्यर्णं घटोघ्नया गवा ।
स्वामिन् देव जयेति पञ्जरशुकस्वानोल्लसत्तोरणं
साकेताधिपतेरुषस्यवतु नः शय्यागृहान्निर्गमः ।।२८।।

अनवय:—सीतादत्तकराम्बुम् पदयुगश्लिष्यन्मणीपादुकम् हर्षावेक्षिविहारबर्युपसृताभ्यर्णम् घटोघ्न्या गवा हे स्वामिन् देव जय इति पञ्जरशुकस्वानोल्लसत्तोरणम् साकेताधिपतेः उषसि शय्यागृहात् निर्गमः नः अवतु ।।२८।।

श्री सीताजी के प्रति दिये हुए—अवलम्बित कर कमल वाले दोनों पावों मे लगती हुई मणि पादुकावाले हर्ष के साथदेखने के लिये आगे आते हुये विहार क्रीडा मोर से उपगत समीपवाले

घटोन्नीगौ के साथ हे स्वामी हे देव आप की जय हो इसप्रकार पांजरे के पोपट के शब्द से शोभमान तोरण यानी प्रवेश द्वारा वाले श्रीसाकेत नायक श्रीरामजी का प्रातः काल में शयन के द्वार से निकलना रूप प्रथम दर्शन हमारी रक्षा करे ॥२८॥

पाणौ मुष्टिगृहीतपन्नगलतापर्णोच्चये बिभ्रतीं
वामे रत्नकरण्डकं तदपरे वीटीं विदेहात्मजाम् ।
पश्यन् कूजति पार्श्वतः कलरवे दृष्ट्या तिरश्चीनया
मन्दस्मेरमुखीं हृदि स्फुरति मे मञ्चाधिरूढो विभुः ।२९।

अन्वयः—मुष्टिगृहीतपन्नगलता पर्णोच्यते वामे पाणौ रत्न करण्डकम् तदपरे वीटीम् बिभ्रतीम् मन्दस्मेरमुखीम् पार्श्वतः कल-रवे कूजति तिरश्चीनया दृष्ट्या पश्यन् मञ्चाधिरूढः विभुः मे हृदि स्फुरति ॥२९॥

मुठ्ठी से पकडे हुए पान के पत्तों के समूह वाली बाएँ हाथ में सोने का पानबट्टी कोटधरनेवाली और दाहिने हाथ में लगाए हुए पान की बीडी धरनेवाली मन्दहसनशील मुख वाली श्रीजानकी जी को पार्श्व में कलरव यानी कोकिलों के मधुर अव्यक्त शब्द करने पर तिरछी नजर से देखने वाले मञ्च पर यानी सिंहासन पर बैठे हुए विभु सर्वेश्वर श्रीरामजी मेरे मन में मनरूप सिंहासन में शोभित हो रहे हैं ॥२९॥

शैलान्मत्तोऽवतरतिकरी ज्यास्वनैर्वीरयैनं

सौमित्रे मा भवतु चकिता जानकीति प्रहिण्वन् ।
तज्ज्याघोषं मृगपतिरवं व्याहरन् वेपिताङ्ग्या
गाढाश्लिष्टो जनकसुतया कौशलेयोऽवतान्नः ॥३०॥

अन्वयः—शैलात् मत्तः करी अवतरति, एनम् ज्यास्वनैः वारय जानकी चकिता मा भवतु इति तज्ज्याघोषम् प्रहिण्वन् मृगपतिरवम् व्याहरन् वेपिताङ्ग्या जनकसुतया गाढाऽऽश्लिष्टः कौसलेयः नः अवतात् ॥३०॥

हे लक्ष्मण ! पर्वत से मतवाला हाथी नीचे उतर रहा है इसे ज्या के शब्द से दूर करो सीताजी चकित यानी त्रस्त न हों इस प्रकार से श्रीरामजी के कहने पर श्री लक्ष्मण जी के द्वारा सिंह गर्जना के समान ज्या घोष—धनुष के शब्द करने पर कम्पित अङ्ग वाली जानकी जी से निर्भर आलिङ्गित श्रीराम जी हमारी रक्षा करें ॥३०॥

हंसी मन्दं चलति हरिणी वीक्षते लोललोलं
रम्यं कूजत्ययमिह पिको राजते बर्हिणोऽसौ ।
इत्याश्चर्याद् वनभुवि वधूं दर्शयन्तीं यदि त्वां
पश्याम्येतैरलमिति वदन् पातु नः कौशलेयः ॥३१॥

अन्वयः—हंसी मन्दम् चलति, हरिणी लोललोलम् वीक्षते, इह अयम् पिकः रम्यम् कूजति, असौ बर्हिणः राजते, इति आश्चर्यात् वनभुवि यदि दर्शयन्तीम् त्वाम् वधूम् पश्यामि (तदा) एतैः अलम् इति वदन् कौसलेयः न पातु । ३०॥

हंसी धीरे चल रही है,हरिणी अतिचञ्चलता से देख रही है, यहाँ यह कोयल सुन्दर अव्यक्त मधुर शब्द कर रहा है, यह मोर

नाचने से शोभमान हो रहा है, इस प्रकार आश्चर्य से वन भूमि में यदि दिखलांती हुई तुझे देखू तो हंसी आदियों से क्या तुम कम हो इस प्रकार बोलनेवाले कौशल्यानन्द श्रीरामजी हमारी रक्षा करें ।३१॥

देव त्वां रघुवीर नीरदसमं सीतातडित्संगतं
कारुण्यामृतवर्षिणं कतिपये दृष्ट्वा मयूरा इव ।
किं नृत्यन्ति न चातका इव परे किं वा न माद्यन्त्यतः
स्वामिन् पालय पालयेत्यहमपि क्रोशामि मण्डूकवत्।३२।

अन्वय–रघुवीर ! देव ! नीरदसन्निभम् सीतातडित्संगतम् कारुण्यामृतवर्षिणम् त्वाम् दृष्ट्वा कतिपये मयूरा इव किम् न नृत्यन्ति ? चातका इव वा किम् न माद्यन्ति ? अतः स्वामिन् पालय पालय इति अहमपि मण्डूकवत् क्रोशामि ॥३२॥

हे रघुवीर ! हे देव ! मेघसदृश श्रीसीतारूप विजली के साथ सम्मिलित मेघसदृश दया-सुधा के वर्षणशील आप को देखकर अनेक जन मयूर के सदृश क्या नहीं नाचते हैं ? अपितु नाचते ही हैं, अथवा चातक के समान खुसियाली में आप के अन्य भक्त क्या मदयुक्त नहीं होते हैं ? अपितु होते ही हैं. इस कारण से हे नाथ! आप रक्षा कीजिये ? इस प्रकार मैं भी मेढक सा क्रोश कर रहा हूँ अर्थात् रक्षा के लिये प्रार्थना कर रहा हूँ ॥३२॥

खेलत्केकिनि संचरन्मृगशिशौ चूतस्फुरद्वल्कले

नीपन्यस्तनिषङ्गधन्वनि जनस्थानोटजप्राङ्गणे ।
सीतां पुष्पसमित्कुशान् हृतवतीं संभाषयन्तं दृशा
बद्धस्वस्तिकमेणचर्मणि घनच्छायं भजेयं प्रभुम् ॥३३॥

खेलत्केकिनि संचरन्मृगशिशौ चूतस्फुरद्वल्कले नीपन्यस्तनिषङ्ग धन्वनि जनस्थानोटजप्राङ्गणे पुष्पसमित्कुशान् हृतवतीम् सीताम् दृशा संभाषयन्तम् एणचर्मणि बद्धस्वस्तिकम् घनच्छायम् प्रभुम् भजेयम् ॥३३॥

खेलते हुए मोरवाले, चलते हुए हरिण के बच्चे वाले, आम के वृक्ष के ऊपर शोभमान वल्कल वाले, कदम्बवृक्षपर स्थापित तरकस चापवाले जनस्थान की कुटीके आंगनेमें फूल लकडी और कुशों को ले आनेवाली श्रीसीताजी के प्रति दृष्टि से ही संभाषण करते हुए हरिण के चर्म पर स्वस्तिकासन से विराजमान मेघ के सदृश श्यामवर्ण प्रभु श्रीरामजी को मैं भजता हूँ ॥३३॥

संप्राप्तो मृगयां विधाय नलिनीपत्राहृतैरम्बुभिः
संक्षाल्यांशुकपल्लवेन कुचयोः पादाब्जमुन्मार्जतीम् ।
मृष्टा नेह मनःशिलेति विसृतां रत्नांगुलीयश्रियं
वैदेहीं प्रति दर्शयन् हृदि कृतव्याजो विभुः पातु नः ।३४।

अन्वय– मृगयाम् विधाय संप्राप्तः नलिनीपत्राहृतैः अम्बुभिः पादाब्जम् संक्षाल्य कुचयोः अंशुकपल्लवेन उन्मार्जतीम् इह मनः शिला न मृष्टा इति विसृताम् रत्नाङ्गलीयश्रियम् वैदेहीम् प्रति दर्शयन्

हृदि कृतव्याजः विभुः नः पातु ॥३४॥

मृगया शिकार कर श्रीरामजी के आ पहूंचने पर कमलिनी के पत्ते से लाये हुए जलों से चरण कमल प्रक्षालित कर स्तनों के वस्त्र पल्लव से श्रीचरणों को पोछती हुई श्रीजानकी जी को यहां मैनशिला नहीं पोंछी गई ? इस प्रकार से फैली हुइ रत्न शोभा से जडी हुई अंगुठी की शोभा से युक्त श्री सीताजी के प्रति नर्म पूर्वक दिखदाने वाले विभु श्रीरामजी हमारी रक्षा करे ॥३४॥

श्लथकचभरान् नैतद्भूमौ निपातय सुन्दरी–
त्युदितहसितं सव्रीडा या महीदुहितुर्दिशन् ।
वनतरुतले मल्लीपुष्पैः कृतं नवगर्भकं
दिनकरकुलोत्तंसो देवोऽधिरोहति मे मनः ॥३५॥

अन्वय-सुन्दरि ! एतद्भूमौ श्लथकचभरान् न निपातय इति उदितहसितम् वनतरु तले मल्लीपुष्पैः कृतम् नवगर्भकम् सव्रीडायाः महीदुहितुः दिशन् दिनकरकुलोत्तंस: देवः मे मनः अधिरोहति ॥३५॥

हे सुन्दरिः इस पृथ्वी पर ढीले केशों के समूह नहीं गिराओ इस प्रकार हास से कहते हुये वन के वृक्ष के नीचे बेली फुलों से विरचित नवगर्भक माल्यविशेष को देखकर लज्जा वाली श्री सीताजी को देनेवाले सूर्यवंश के शिरोमणि सर्वसमर्थदेव श्रीरामजी मेरे मन में आरूढ होते है ॥३५॥

दलितदनुजाटोपे चापाधिरोपितसायके
मरतकमणिच्छाया दायादकायमनोहरे (महोभरे)
प्रणतजनताप्राणत्राणप्रवीणपराक्रमे
स्फुरति पुरतोऽस्माकं सीतापतौ दुरितं कुतः ॥३६॥

दलितदनुजाऽऽटोपे चापाधिरोपितसायके मरतकमणिच्छायादायादकायमनोहरे (महोभरे) प्रणतजनता प्राणत्राणप्रवीण पराक्रमे सीतापतौ अस्माकम् पुरतः स्फुरति (सति) कुतः दुरितम्? ॥३६॥

दानवों के आडम्बर दूर करने वाले धनुष के उपर वाण चढाये हुये मरकत मकाणि की कान्ति के समान श्यामवर्ण शरीर से सुन्दरता से मन को हरने वाले प्रणत यानी प्रणाम करने वाले भक्तजनों के प्राणों की रक्षा में पटुपराक्रम वाले श्री सीतानाथ श्रीरामजी के हमारे आगे विराजमान रहने पर किस कारण से पापरह सकेगा? अपि तु नहीं रहेगा ॥३६॥

अविदित नवक्लेशानीशानपास्य दिशामहो
सह परिहरन् कालीकेलीसखं मुरलीभृता
वनमृगपरिवारे वीरे वरेषु धनुर्धरे
कुवलयदलश्यामे रामे कुतूहलि मे मनः ॥३७॥

अन्वय–अहो अविदितनवक्लेशान् दिशाम् ईशान् अपास्य मुरलीभृता सह कालीकेलीसखम् परिहरन् वनमृगपरिवारे वीरे

वरेषुधनुर्धरे कुवलयदलश्यामे रामे मे मनः कुतूहलि(अस्ति) ।३७।

आश्चर्य है कि–नये क्लेशों को मालुम नहींकरता हुआ दिशाओं के पतियों को छोडकर श्रीकृष्णजी के साथ श्री शिवजी को भी छोड़कर वन के मृगरूप परिवार वाले वीर बड़े बाण और धनुष को धारण करने वाले नील कमल दल के समान श्यामवर्ण-वाले श्रीरामजी में मेरा मन उत्कण्ठित है अर्थात श्रीरामजीके चरणों में हो मेरामन लगता है अन्यत्र नहीं ॥३७॥

स्फटिकधवलान्मेघश्यामे गृहीतमृगानलाद्
धृतधनुरिषौ भूतेशानात् प्लवङ्गमसेविते ।
मतिरवतरत्यात्तव्याघ्राजिनाद् धृतवल्कले
शिखरितनयानाथात पृथ्वीसुतापरिणेतरि ॥३८॥

अन्वय–स्फटिकधवलात गृहीतमृगानलात् भूतेशानात् आत्त व्याघ्राजिनात् शिखरितनयानाथात मेघश्यामे धृतधनुरिषौ प्लवङ्गम सेविते धृतवल्कले पृथ्वीसुतापरिणेतरि मतिः अवतरति ॥३८॥

स्फटिक के समान श्वेतवर्ण मृग और अग्नि को धरने वाले भूतों के पति बाघ के चमडे को धारण करने वाले और हिमाचल की कन्या श्रीपार्वतीजी के पति को छाड़ कर मेघ के समान श्यामवर्ण चापबाण को धारण करने वाले वानरों से सेवित वल्कल को धारण करने वाले पृथिवी की कन्या श्रीसीताजी के परिणेतामें यानी पति श्रीराम में मेरी बुद्धि उतर रही है अर्थात शंकर को छोड़ मैं श्रीरामजी की सेवा करता हूं ॥३८॥

स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरी जनविटाद् वद्धैकदारव्रते
लीलावेणुलसत्करात् त्रिभुवनत्राणाय चापस्पृशि ।
चौर्याकृष्टवधूजनात् परिणतौ कीटादि मुक्ति प्रदे
व्यावृत्तं मम यादवाद् रघुपतौ चेतः स्वयं धावति ।३९।

अन्वय–स्वच्छन्दम् व्रजसुन्दरी जनविटात लीलावेणुलसत्करात् चौर्याकृष्टवधूजनात् यादवात् व्यावृत्तम् मम चेतः वद्धैकदारव्रते त्रिभुवनत्राणाय चापस्पृशि परिणतौ कीटादि मुक्ति पदे रघुपतौ स्वयम धावति ॥३९॥

अपनी इच्छा के मुताविक व्रज के महिलाजनों के विट (जार) कर्म में रत तथा क्रीडार्थ मुरली से शोभमानहाथ वाले चोरी से स्त्री जनों को अपहरणकरने वाले यदुनन्द श्रीकृष्ण से लौटा हुआ मेरा मन एक स्त्री व्रत वाले तीनलोकों की रक्षा के लिये धनुष को धारण करने वाले अच्छीतरह नति करने पर कीडे आदि को भी मोक्ष देने वाले श्रीरामजी में खुद दौड कर जाता है उक्त ३८ तथा ३९ श्लोकों से आचार्य जी ने यह वताया कि– "परान्नारायणाच्चापि कृष्णात्परतरादपि यो वे परतमः श्रीमान्रामो दाशरथिः स्वराष्ट्र" इस आगम प्रमाण से सर्वपर तथा श्रेष्ठ शरण्य सर्वेश्वर श्रीरामजी हैं अतः उन्हीं की शरणागति स्वीकारकरना चाहिये संसार तरने के लिये अन्य की नहीं ॥३९॥

कश्चिद् बालो मृत्तिकां भक्षयित्वा

कश्चिद् बृद्धश्चूतमूले लुठित्वा ।
मां रक्षेच्चेन्माऽस्तु तद् यन्ममास्ते
त्राता सीता केलिलोलो युवैकः ॥४०॥

अन्वय–कश्चिद् बालः मृत्तिकाम् भक्षयित्वा काश्चत् वृद्धः चूतमूले लुठित्वा चेत् माम रक्षेत् ततमाभस्तु यत मम त्राता सीताकेलिलोलः एकः युवा आस्ते ॥४०॥

कोई लडका मिट्टी खाकर कोई बुढ़ा आम घृक्ष मूल के जड में लुढककर यदि मेरी रक्षा करे सो नहीं हो अर्थात् उनसे मेरी रक्षा की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मेरे रक्षक श्रीसीता जी के क्रीडा में चञ्चल एक तरुण जुवान पुरुष हैं अर्थात् सर्वेश्वर श्री राम हैं ।।४०।।

अभिमतफलसिद्ध्यै ध्यातुमेकं सुराणा
मनुसरति मनोमे यावदाबद्धवेगम् ।
अपहरति निरुद्धमन्तरा तावदेतत्
कपिकुलपरिवारः कश्चिदम्भोजनीलः ।।४१।।

अभिमतफलसिद्ध्यै सुराणाम् एकम् ध्यातुम् मे आनद्धवेगम् मनः यावत् अनुसरति, तावत् कश्चित कपिकुलपरिवारः अम्भोदनीलः अन्तरा निरुन्धन् एतत् अपहरति ।।४१।।

अभीष्ट फलों की सिद्धि के लिये देवों के मध्य में प्रधान को याद करने के लिये मेरा मन वेगी हो जब तक पीछे दौडता

है. तब तक कोई वानर कुल रूप परिवार वाले मेघ के समान श्यामवर्ण वाले बीच में इस मेरे मन को रोकते हुए अपहृत कर देते हैं अर्थात् मेरे मन को श्रीरामचन्द्र जी हठात् अपनी ओर खींच लेते हैं अपनी मनोहरता से अतः मैं उन्ही को भजता हूं।४१।

क्षणचलितनिरूढस्वर्णदीकर्णभूषे
परिहृतमयकन्यापत्रलेखाप्रसङ्गे
विरचितसुरसुभ्रूविभ्रमप्रातिभाव्ये
कुतुकितमतिभव्येकाऽपिकालिम्नचेतः।४२।

अन्वयः क्षणचलितनिरूढस्वर्णदीकर्णभूषेपरिहृतमयकन्यापत्रलेखा प्रसङ्गे विराचित सुरसुभ्रूविभ्रमप्रातिभाव्ये अतिभव्ये कापि कालिम्नि चेतः कुतुकितम् ॥४२॥

क्षण में पहले चली हुई पीछे रोकी गई गङ्गा रूप कान के भूषणवाले मयनामकदानवकी कन्या के पत्र के लिखने के प्रसङ्ग को अर्थात् अवसर का परिहरण करने वाले अर्थात् रावण को मुक्ति देनेवाले देवो की स्त्रियों के विभ्रम का प्रतिनिधिपना करने वाले अत्यन्त भव्य बहुत मनोहर विलक्षण कालिमा यानी श्यामता में मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है ॥४२॥

कचभरनिटिलभ्रूकर्णदृङ्नासिकोष्ठ–
स्तनजघननितम्बां पश्यदन्याङ्गनानाम् ।

मलिनमपि मनश्चेन्मन्मथस्तावता किं
विमलयितुमहल्या पावनोऽप्यस्ति वीरः ॥४३॥

अन्यांगनानाम् कचभरनिटिलभ्रूकर्णदङ् नासिकोष्ठ स्तन जघननितम्बम् पश्यत् मम मनः मन्मथः मलिनम् अपि करोति चेत् तावता किम् अहल्यापावनः वीरः मलिनमपि मनः विमलयितुम अस्ति ॥४३॥

पर स्त्रियों के सुन्दर केशपास अच्छा ललाट सुन्दरभ्रू कान खञ्जन के सदृश नयन सुडोल नाक बिम्ब फलोष्ट ऊचेस्तन जघन व नितम्बों को देखने पर मेरे मन को मन्मथ यानी कामदेव मलिन अर्थात् विकृत भी करदे तो भी क्या क्यों कि ऐसे अंस्थाने विकृत हुये मन को विमल-शुद्ध करने के लिये सर्व समर्थ अहल्या के उद्धारक सर्वेश्वर श्री रामचन्द्र जी भी तो हैं ॥४३॥

नवकुवलयदामश्यामलः कोमलाङ्ग्या
विरचितमधुरश्रीरेकया विद्युतेव
जलधर इव काले जृम्भमाणो मयूरं
कुतुकयति मनो मे कोऽपि कोदण्डभूषः ।४४।

नवकुवलयदामस्यामलः विरचितमधुरश्रीः कोऽपि कोदण्ड भूषः कोमलाङ्ग्या एकया विद्युता इव काले विजृम्भमाणः जलधरः मयूरम् इव मे मनः कुतुकयति ॥४४॥

नये नील कमलों की माला के समान श्यामल वर्णवाली सुन्दर शोभा बनाने वाले कोमल अङ्ग वाली श्री सीता रूप एक विद्युतलता के साथ वर्षा काल में विराजमान बादल ममूरको उत्कण्ठित करता है उस के समान मेरे मन को कोई चापरूप-भूषण धारी राजा श्रीरामजी उत्कण्ठित कर रहे हैं अर्थात् श्रीराम चन्द्र जी की ओर मेरा मन कुतुहल वस हठात् जा रहा है।४४।

मनसि मम समिन्द्धे पुण्यभाजामवेक्ष्यः
कपिसदसि मुनीनां चेतसा स्वादनीयः ।
जनकनृपतिकन्या सस्पृहाऽऽलिङ्गनार्हः
श्रुतियुवति कबर्याः कोऽपि सौरभ्यसारः ॥४५॥

मम मनसि पुण्यभाजाम् अवेक्ष्यः कपिसदसि मुनीनाम् चेतसा आस्वादनीयः जनकनृपतिकन्यासस्पृहाऽऽलिङ्गनार्हः श्रुति-युवतिकबर्याः कोऽपि सौरभ्यसारः समिन्द्धे ॥४५॥

मेरे मन में पुण्यशालियों के दर्शनीय वानरों की सभा में मन से आस्वादन के योग्य श्रीजानकीजी के अभिलाष सहित आलिङ्गन के योग्य श्रुतिरूपयुवतियों की कबरी के विलक्षण खुपबु के सार अर्थात्" वेद वेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे" इत्यादिरूपसे सर्व श्रुति वेद्य परतत्व परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी बिराजते हैं ॥४५॥

कुवलयदलनीलः कोऽपि रत्नोषभूषी

कुचगिरिषु निपातं वाष्पवृष्टेर्विधाता ।
निखिलभुवनचेतोबर्हिनृत्तैकहेतुः
शमयति मम तापं शार्ङ्गचापाम्बुवाहः ॥४६॥

कोऽपि कुवलयदलनीलः रक्षोवधूनाम् कुचगिरिषु वाष्पवृष्टेः निपातम् विधाता निखिलभुवनचेतोबर्हिनृत्तैकहेतुः शार्ङ्गचापाम्बुवाहः मम तापम् शमयति ॥४६॥

कोई नीलकमलदलसमान श्यामवर्णवाले राक्षसों की स्त्रीजनों के अर्थात् राक्षसियों के स्तन रूप पर्वतों पर आंसुओं की वर्षा का निपात करने वाले सबलोकों के हृदयरूप मोर के नर्तन के एक मात्र कारण हरिण के शृङ्ग से विरचित धनुष का धारण करनेवाले श्रीरामजी रूप बादल मेरा पापरूप ताप शान्त दूर कर रहे हैं ॥४६॥

निगमशिखरिशृङ्गान्नित्यमागत्य खेलन्–
मुनिजनहृदरण्ये मोहसारङ्गमुक्ते ।
दशवदनगजेन्द्रे दर्शिताऽऽघातलीलो
वशयति रघुसिंहो मानसं नः प्रसन्नः ॥४७॥

निगमशिखरिशृङ्गात् आगत्य मोहसारङ्गमुक्ते मुनिजनहृदरण्ये नित्यम् खेलन् दशवदनगजेन्द्रे दर्शिताऽऽघातलीलः प्रसन्नः रघुसिंहः नः मानसम् वशयति ॥४७॥

श्रीसीतारामाभ्यांनमः । श्रीहनुमते नमः ।
बोधायनवृत्तिकाराय श्रीपुरुषोत्तमाचार्याय नमः
आनन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।
पण्डितसम्राट्श्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठाचार्यनिर्मिते
लघूपासनाङ्गचतुष्टयसङ्ग्रहे

श्रीबोधायनलघूपासनाङ्गचतुष्टयम्

भगवान् श्रीपुरुषोत्तमाचार्य जी बोधायन
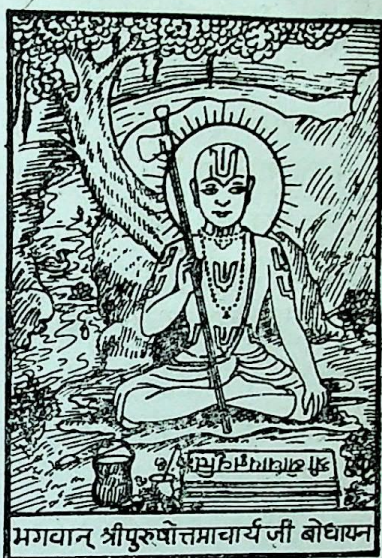
वृत्तिकार ! नमस्ते श्रीशुकशिष्याय ते नमः
वर्षानुज ! नमस्तेऽस्तु बोधायन ! नमोऽस्तुते !।१।।

प्रकाशकः--पण्डितसम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य
त्रणदेरी श्रीराममन्दिर–शारंगपुर दर्वाजाबाहर
अहमदाबाद–२

प्रति ५०० | श्रीरामानन्दसप्तमशताब्दी सन् १९८३ ईसवी | मूल्य ७५ पैसे

श्रीरामानन्दप्रिन्टिंगप्रेस–अहमदाबाद

सर्वेश्वरौ श्रीसीतारामौ विजयेतेतराम् ।

अथ श्रीप्रमिताक्षरावृत्तिसारनामकश्रीबोधायनमतादर्शकार जगद्गुरुश्रीपूर्णानन्दाचार्यसिद्धान्तसार्वभौमकृता

श्रीबोधायनमङ्गलनक्षत्रमाला ।

नत्वा रामं चसीतां च चिदानन्दं गुरुं तथा ।
श्रीमन्मङ्गलनक्षत्रमालां कुर्वे सुखप्रदाम् ॥१॥
मिथिलायां हि यो जातो बोधायनसरस्तटे ।
तस्मै ब्रह्मावताराय बोधायनाय मङ्गलम् ॥२॥
शङ्करद्विजपुत्राय चारुमत्याश्च सूनवे ।
श्रीमद्वर्षानुजाय श्रीबोधायनाय मङ्गलम् ॥३॥
श्रीमद्व्यासस्य छात्रो यः श्रीशुकार्येण दीक्षितः ।
श्रीकृतकोटये तस्मै बोधायनाय मङ्गलम् ॥४॥
मृतः गङ्गाधरो विप्रो येनाचार्येण जीवितः ।
महासिद्धाय तस्मै श्रीबोधायनाय मङ्गलम् ॥५॥
श्रीमद्रामप्रपत्तिश्च येनाचार्येण निर्मिता ।
तस्मै चार्याचिताय श्रीबोधायनाय मङ्गलम् ॥६॥
श्रीमीमांसामहावृत्त्या कर्मस्वरूपबोधिने ।
महावैराग्यदाय श्रीबोधायनाय मङ्गलम् ॥७॥
येनोक्तं मुक्तिदायिन्या भक्तेः साधनसप्तकम् ।
देशिकेन्द्राय तस्मै श्रीबोधायनाय मङ्गलम् ॥८॥
ब्रह्मसूत्रमहावृत्तिर्येनाचार्येण निर्मिता ।
ब्रह्मज्ञानाब्धये तस्मै बोधायनाय मङ्गलम् ॥९॥

श्रीगायत्र्यक्षरारब्धरामायणं विनिर्मितम् ।
येन महर्षिणा तस्मै बोधायनाय मङ्गलम् ॥१०॥
श्रीबोधायनगीता च गङ्गाधराय बोधिता ।
येन तस्मै मुनीन्द्राय बोधायनाय मङ्गलम् ॥११॥
महर्षिणा कृतं येन सप्तकाण्डार्थसप्तकम् ।
तस्मै रामायणज्ञात्रे बोधायनाय मङ्गलम् ॥१२॥
श्रीरामायणसारश्च येनाचार्येण निर्मितः ।
तस्मै महोपकर्त्रे श्रीबोधायनाय मङ्गलम् ॥१३॥
बोधायनस्मृतिर्येन धर्माचार्येण निर्मिता ।
धर्मशास्त्रकृते तस्मै बोधायनाय मङ्गलम् ॥१४॥
धर्मसूत्रं कृतं येन मत्यधर्मावबोधितुम् ।
धर्मस्य रक्षिणे तस्मै बौधायनाय मङ्गलम् ॥१५॥
श्रौतसूत्रं कृतं येन श्रीबोधायननामकम् ।
तस्मै महर्षये श्रीमद्बोधायनाय मङ्गलम् ॥१६॥
गृह्यसूत्रं कृतं येन श्रीबौधायननामकम् ।
धर्माचार्याय तस्मै श्रीबोधायनाय मङ्गलम् ॥१७॥
शुल्वसूत्रं कृतं येन श्रीबोधायननामकम् ।
महाचार्याय तस्मै श्रीबोधायनाय मङ्गलम् ॥१८॥
श्रीमद्वेदरहस्यं च कृतं येन महर्षिणा !
पाणिनिगुरवे तस्मै बोधायनाय मङ्गलम् ॥१९॥
येन द्वादशशुद्धीनां कृतो भव्यः समुच्चयः !
पिङ्गलगुरवे तस्मै बोधायनाय मङ्गलम् ॥२०॥

श्रीरामनाममाला च येन मुक्तिप्रदा कृता ।
तया मुक्तिप्रदात्रे श्रीबोधायनाय मङ्गलम् ॥२१॥
धर्मशास्त्रे कृता येन सन्ध्योपासनसद्विधिः ।
जगतो गुरवे तस्मै बोधायनाय मङ्गलम् ॥२२॥
सन्यासस्य विधिर्येन गृह्यसूत्रे हि वर्णितो ।
तस्मै यतीश्वराय श्रीबोधायनाय मङ्गलम् ॥२३॥
यतीनां चान्त्यसंस्कारो येनाचार्येण वर्णितः ।
तस्मै च यतिधर्मज्ञबोधायनाय मङ्गलम् ॥२४॥
गृह्यसूत्रे प्रतिष्ठायाः कल्पो रामस्य शार्ङ्गिणः ।
बोधितो येन तस्मै श्रीबोधायनाय मङ्गलम् ॥२५॥
महाविष्णोश्च रामस्याभिषेकविधिबोधिने ।
श्रीरामार्चकरन्ताय बोधायनाय मङ्गलम् ॥२६॥
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तो वैदिको येन शिक्षितः ।
तस्मै सिद्धान्तिवन्द्याय बोधायनाय मङ्गलम् ॥२७॥
ददौ गंगाधराय श्रीराममन्त्रः षडक्षरः ।
यश्च तस्मै महाचार्यबोधायनाय मङ्गलम् ॥२८॥
जगतो गुरुणा श्रीमत्पूर्णानन्देन निर्मिता ।
भूयान्मङ्गलमालेयं पठिता मङ्गलप्रदा ॥२९॥

जगद्गुरुश्रीपुरुषोत्तमाचार्यबोधायनप्रातःस्मरणम्

दृष्टं यद् वैष्णवानां च कर्मबन्धस्य नाशकम् ।
बोधायनपदाब्जं तत् प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥१॥
यच्छाया वैष्णवानां च तापत्रयविनाशिनी ।
बोधायनकराब्जं तत् प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥२॥

यद् विकासमवाप्नोति श्रीभक्तैश्वर्यभास्करात् ।
बोधायनमुखाब्जं तत् प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥३॥
चारुमत्याः सुतो यश्च श्रीशङ्करद्विजात्मजः ।
पद्मजस्यावतारं तं प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥४॥
बोधायनमहावृत्तिकारं वर्षानुजं मुनिम् ।
बोधायनमहर्षिं च प्रातःकाले स्मराम्यहम्॥५॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
प्रातःस्मरणमेतच्च पाठाद् भूयात् सुखप्रदम् ॥६॥

—०—

अथ पण्डितसम्राट् स्वामि श्रीवैष्णवाचार्यविरचितं

लघुश्रीबोधायनोपासनचतुष्टयम् ।

अथ श्रीबोधायनपूजापद्धतिः ।

अथ ध्यानम् ।

सीताराघवपादपद्मनिरतः पद्मासनेनास्थित-
स्तत्त्वज्ञानानिधानदण्डलसितो विज्ञानमुद्रापरः ।
गौरो ध्यानपरायणोऽर्धविकसन्नालाब्जतुल्येक्षणः
श्रीबोधायनवृत्तिकृद् विजयतां बोधायनः शाश्वतम् ॥१॥
योगत्यक्तकषायशुद्धहृदयः काषायवर्णाम्बरो
न्यग्रोधस्य तले वशिष्ठतनयामुक्ते कुरङ्गत्वचि ।
आसीनः सुशिखोर्ध्वपुण्ड्रलसितो यज्ञोपवीती शमी
श्रीबोधायनवृत्तिकृद् विजयतां बोधायनः शाश्वतम् ॥२॥

पार्श्वेभाति शुभं कमण्डलु तथा दूर्वान्विता भूमिका
मीमांसार्थविकासिनी सुमहती वृत्तिः पुरो यस्य सः ।
सद्वायुव्यजनैस्तथा च तरुभिः पुष्पैः समासेवितः
श्रीबोधायनवृत्तिकृद् विजयतां बोधायनः शाश्वतम् ॥३॥
(जगद्गुरुश्रीसदानन्दाचार्यकृतंबोधायनपञ्चकम्)
बोधायनमहाचार्य ! ज्ञानादिसुगुणाम्बुधे !
आगच्छ करुणासिन्धो ! करिष्येऽहं त्वदर्चनम् ॥४॥
श्रीपूर्वोत्तरमीमांसामहावृत्तिविधायक !
बोधायन ! मया दत्ते भवासीनो वरासने ॥५॥ आसनम् ॥
सिद्धैश्च योगिभिर्भूपैः पूजित ! धर्मरक्षक ! ।
पाद्यं गृहाण मद्दत्तं महर्षे वृत्तिकारक ! ॥६॥ पाद्यम् ।
अर्घ्यं गृहाण मद्दत्तं दिव्यगन्धसमन्वितम् ।
दिव्यौषधिरसैर्युक्तं वेदान्ताब्धिसुधाकर ! ॥७॥ अर्घ्यम् ।
पावनं निर्मलंनीरं भव्यगन्धेन वासितम् ।
आचमनं मया दत्तं बोधाम्बुधे ! गृहाण च ॥८॥ आचमनम् ॥
स्वीकुरुष्व मया दत्तं मधुपर्कं मुनीश्वर ! ।
बौधायनाख्यमीमासावृत्तिकार ! जगद्गुरो ! ॥९॥ मधुपर्कः ।
पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं दुग्धं दधि घृतंमधु ।
शर्करया युतं देव ! गृहाण यतिभूपते ॥१०॥ पञ्चामृतम् ।
आनीतं पुण्यतीर्थेभ्यो दिव्यौषधिरसान्वितम् ।
दत्तं शुद्धंजलं स्नातुमङ्गीकुरु यतीश्वर ! ॥११॥ स्नानम् ॥

हेमाम्बरेण तुल्यं हि काषायाम्बरमुत्तमम् ।
स्वीकुरुष्व मयादत्तं बोधायन ! बुधेश्वर ! ।।१२।। वस्त्रम् ।
रम्य यज्ञोपवीतं च रम्यसूत्रेण निर्मितम् ।
ब्रह्मसूत्रार्थनिष्णात ! धारय शङ्करात्मज ! ।।१३।। उपवीतम् ।
नमस्ते वृत्तिकाराय बोधायनमहर्षये ।
उत्तरीयमिदं वस्त्रं स्वीकुरु करुणाम्बुधे ।।१४।। उत्तरीयम् ।
पूर्वाचार्यानुगाचार्य ! वृहद्वृत्तिविधायक ! ।
सुरभि चन्दन शीत स्वीकुरु कीर्तिविश्रुत ! ।।१५।। चन्दनम् ।
त्वयाऽपसार्य चाधर्मं जना धर्मेण भूषिताः ।
पुष्पहारं मया दत्तं गृहाण धर्मभूषण ! ।।१६।। पुष्पहारः
त्वया च पञ्चसंस्कारैः संस्कृताश्च मुमुक्षवः ।
धूपं गृहाण मद्दत्तं मुक्तिप्रद ! जगद्गुरो ! ।।१७।। धूपः
घृताक्तवर्त्तिसंयुक्तं दिव्यप्रभासमन्वितम् ।
दीपं स्वीकुरु मद्दत्तं ज्ञानालोकप्रदायक ! ।।१८।। दीप
पूपमोदकसंयावाः पायसं व्यञ्जनं दधि ।
नैवेद्यमर्पितं स्वामिन् स्वीकुरु पुरुषोत्तम ! ।।१९।। नैवेद्यम्
पीयूषसदृशं स्वादु शीतलं हिमवज्जलम ।
अङ्गीकुरु मया दत्तं यशसा दिक्षु विश्रुत ! ।।२०।। जलम् ।
दिव्यगन्धयुतं तोयं दिव्यौषधिरसान्वितम् ।
गृहाणाचमनं दत्तं ब्रह्मावतार ! सद्गुरो ! ।।२१।। आचमनम्
छत्रचामरसुस्तोत्रचरित्रपठनादिभिः ।
राजोपचारसंघैश्च तुष्यत्वाचार्यभूपते ! ।२२।। राजोपचारः

घृतोक्तवर्त्तिकर्पूरज्वालामालायुतं मया ।
नीराजनं कृतं दिव्यं स्वीकुरु देशिकेश्वर ! ॥२३॥ नीराजनम्
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तिन् वैष्णवधर्मरक्षक ! ।
पुष्पाञ्जलिं मया दत्तं स्वीकुरु भक्तिद ! प्रभो ! ॥२४॥ पुष्पाञ्जलि
ज्ञानादज्ञानतश्चाथ यत् पापं चिन्तितं मया ।
नाशमाप्नोतु तत सर्वं बोधायनप्रदक्षिणात् ॥२५॥ प्रदक्षिणा ।
दुर्वादध्वान्तमार्त्तण्ड ! रामोपासनतत्पर ! ।
गृहाण श्रीफलं स्वादु महाचार्याधिनायक ! ॥२६॥ श्रीफल
सिद्धिश्रीभक्तिमुक्त्यादिदायकाय नमोऽस्तु ते ।
भूयो भूयो नमस्तेऽस्तु महाचार्य ! जगद्गुरो ! ।२७॥ नमस्कार
उपलब्धोपचारैश्च कृतार्चा ते जगद्गुरो ! ।
पूर्णतांयातु सा सर्वा ह्यपराधं क्षमस्व मे ॥२८॥ क्षमापनम्
भक्तिं मे मुक्तिदां देहि बोधायन ! महागुरो ॥२९॥ विसर्जनम्
वैष्णवधर्मरक्षाकृत ! धर्माचार्यशिरोमणे ! ।
भक्तिं मे मुक्तिदां देहि बोधायन ! महागुरो २९॥ विसर्जनम्
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्य [illegible] ।
भूयात् कल्याणकृच्चैषा पूजा [illegible]समर्पिता ॥३०॥
इतिजगद्गुरुश्रीबोधायनलघूपासनाङ्गचतुष्टये प्रथममङ्गम् ।

—०—

श्रीबोधायनलघूपासनाङ्गचतुष्टये

श्रीबोधायनकवचम् ।

सम्पत्तौ च विपत्तौ च भवनेषु वनेषु च ।
सदा बोधायनः पातु सर्वथा मां हि सर्वतः ॥१॥
जले स्थले तथाऽऽकाशे सर्वासु दिग्विदिक्षु च ।
सदा बोधायनः पातु सर्वथा मां हि सर्वतः ॥२॥
स्वप्ने जागरणे स्वापे दिवारात्रौ तथैव च ।
सदा बोधायनः पातु सर्वथा मां हि सर्वतः ॥३॥
शक्तिं भक्तिं धनं धर्मं मतिं तनुं तथा गुणम् ।
सदा बोधयनः पातु सर्वथा मां हि सर्वतः ॥४॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
पठनाद् धारणाद् भूयात् कवचं विघ्ननाशकम् ॥५॥

इतिद्वितीयाङ्गम् ॥२॥

बोधायनपञ्चके श्रीबोधायनमतम्

रामो ब्रह्म परात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैव निःश्रेयसं
शैषा येन च शेषिणो रघुपतेर्जीवा इति स्वीकृतम् ।
श्रौतं युक्तियुतं मतं खलु विशिष्टाद्वैतकं यस्य स
श्रीबोधायनवृत्तिकृद् विजयतां बोधायनः शाश्वतम् ॥४॥

—०—

गीताभाष्ये श्रीरामानन्दपरम्परा ।

श्रीरामं जनकात्मजामनिलजं वेधोवशिष्ठावृषी
योगीशं च पराशरं श्रुतिविदं व्यासं जिताक्षं गुरुम् ।

श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यान् यतीन्
श्रीमद्राघवदेशिकं च वरदं स्वाचार्यवर्यं श्रये ॥२॥

—०—

पण्डितसम्राट श्रीगौष्णवाचार्यविरचिता

श्रीबोधायननमस्कारमाला ।

रामभक्त ! नमस्तुभ्यं नमोऽस्तु रामपूजक ! ।
बोधायन ! नमस्तुभ्यं विशिष्टाद्वैतिने नमः ॥१॥
वृत्तिकार ! नमस्तुभ्यं नमो सिद्धान्तरक्षक ! ।
जगद्गुरो नमस्तेऽस्तु नमो वादिभयङ्कर ! ॥२॥
नमः श्रीराममभक्ताय नमो वादिनिरासक ! ।
नमः रामप्रपन्नाय प्रपत्तेर्वेदिने नमः ॥३॥
पूजनीय ! नमस्तुभ्यं स्तवनीय नमोऽस्तु ते ।
कीर्त्तनीय ! नमस्तुभ्यं नमनीय ! नमोऽस्तु ते ॥४॥
महाचार्य ! नमस्तुभ्यं नमो धर्माब्जभास्कार ! ।
नमो रामकथासक्त ! नमो धर्मप्रबोधक ! ॥५॥
नमश्चास्तिकवर्याय नमोऽनीशत्वबाधक ! ।
नमश्चाचार्यभूपाय धर्मविधायिने नमः ॥६॥
नमः स्थापितधर्माय नमश्चाधर्मनाशक ! ।
आयुःप्रद ! नमस्तुभ्यं बलबुद्धिद ! ते नमः ॥७॥
यशःप्रद ! नमस्तुभ्यं नमः स्वास्थ्यप्रदाय ते ।
नमस्तारकदात्रे ते तारकार्थविदे नमः ॥८॥

नमश्चेशप्रपन्नाय प्रपत्तिशिक्षिणे नमः ।
नमोऽस्तु ब्रह्मविज्ञाय नमोऽस्तु ब्रह्मबोधिने ॥९॥
नमोऽस्तु भक्तभक्ताय नमोस्तु भक्तभक्तिद ! ।
भक्तारक्षिन् नमस्तुभ्यं राममन्त्रद ! ते नमः ॥११॥
नमस्ते तुलसीधारिन् ! चोर्ध्वपुण्ड्रधृते नमः । ॥१०॥
नमो व्यासप्रशिष्याय शुकशिष्याय ते नमः
नमः श्रीवैष्णवाचार्य ! वैष्णवस्तुत ते नमः
यतिराज ! नमस्तुभ्यं यतिवर्य ! नमोऽस्तु ते ।
विद्यानिधे ! नमस्तुभ्यं शुद्रोनां शिक्षिणे नमः ॥१३॥
वेदार्थज्ञ ! नमस्तुभ्यं धर्मसुकृकृते नमः ।
वेदान्तज्ञ ! नमस्तुभ्यं मीमांसाया विदे नमः ॥१४॥
नमोऽस्तु वैष्णवेन्द्राय श्रीयतीन्द्र ! नमोस्तु ते ।
द्विजेन्द्राय नमस्तुभ्यं धार्मिकेन्द्राय ते नमः ॥१५॥
नमस्ते रामवृत्तज्ञ ! रामलीलाविदे नमः ।
नमो नाममहत्वज्ञ ! रामधामविदे नमः ॥१६॥
नमः शुककृपापात्र ! व्यासछात्राय ते नमः ।
नमोऽस्तु रामब्रह्मज्ञ ! नमोस्तु वेदवेदिने ॥ १७ ॥
नमः सूत्रार्थमर्मज्ञ सूत्रवृत्तिकृते नमः ।
नमस्तेऽस्तु महाचार्य धर्माचार्याय ते नमः ॥ १८ ॥
महात्यागिन् नमस्तुभ्यं नमश्चायाचिताय ते ।
नमः संग्रहशून्याय परिव्राजक ! ते नमः ॥ १९ ॥

नमो यज्ञविधिज्ञाय वेदपाठविदे नमः ।
नमः शिखाधृते तुभ्यमुपवीतधृते नमः ॥ २० ॥
नमस्त्रिदण्डिने तुभ्यं नमः सन्यासभूषण ।
नमश्चाधातुपात्राय नमः काषायधारिणे ॥ २१ ॥
नमस्त्यक्तार्थकामाय ब्रह्मचर्यधृते नमः ।
नमः कर्मफलत्यागिन् पुरुषोत्तम ! ते नमः ।
नमस्ते सत्यनिष्ठाय चाहिंसानिष्ठ ते नमः ॥ २३ ॥
नमोऽस्तु खण्डिताध्यास ! नमो मायानिरासिने ।
नमः सत्ख्यातिवेत्रे ते परिणामविदे नमः ॥ २४ ॥
नमोस्तु खण्डिताविद्य ! सत्यविश्ववित्रे नमः ।
नमो मतेशशेषित्व ! जीवदास्यविदे नमः ॥ २५ ॥
नमस्ते चोपवर्षाय नमो वर्षस्य चानुज ।
नमश्चारुमतीसूनो ! शङ्करात्मज ! ते नमः ॥ २६ ॥
नमः पूजितरामाय नमो वन्दितराम ते ।
नमः कीर्तितरामाय नमोऽस्तु स्मृतराम ते ॥ २७ ॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता ।
बोधायननमस्कारमाला पाठात् सुखप्रदा ॥ २८ ॥

श्रीपुरुषोत्तमाचार्यबोधायनकथितः

श्रीरामायणसारः

आदौ रामतपोवनदिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनं
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम् ।
वालेर्निर्दलनं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं
पश्चाद् रावणकुम्भकर्णहननञ्चैतद्धि रामायणम् ॥ १ ॥

— ० —

पण्डितसम्राट्कृतेश्रीबोधायनलघूपासनचतुष्टये श्रीपुरुषोत्तमाचार्यनामकश्रीबोधायनपञ्चाशिका

वैदिकरामायणं चायकबोधायन-

श्चायकबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः ।
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः ॥ १ ॥

सञ्चितरामायणं सूचकबोधायनः

सूचकबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः ।
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः ॥ २ ॥

पाठितरामायणं पाठकबोधायनः

पाठकबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः ।
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः ॥ ३ ॥

बोधितरामायणं बोधकबोधायनो

बोधकबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः ।
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः ॥ ४ ॥

पूजितरामायणं पूजकबोधायनः

पूजकबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः ।
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः ॥ ५ ॥

कीर्त्तितरामायणं कीर्त्तकबोधायनः
कीर्त्तकबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः ॥ ६ ॥
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः ।
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः
श्रीयुतबोधायनः श्रीयुतवर्षानुजः ॥ ७ ॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता ।
एषा पञ्चाशिका भूयात् पाठकानां सुखप्रदा ॥८॥

९–श्रीबोधायनपञ्चकम्

मीमांसाद्वयनिश्चितार्थमतिदा श्रौतार्थसंरक्षिका
दुर्वादास्त्रविभञ्जिका कुमतिहृत् सत्तर्कपुञ्जप्रदा ।
येनाचार्यवरेण संविरचिता वृत्तिर्विशाला शुभा
रामब्रह्मपरायणः स भगवान् बोधायनः पातु माम् ॥१
काषायाम्बरधारको बुधमतैर्दण्डैस्त्रिभिर्मण्डितो
योगीन्द्रैः क्षितिपालकैर्बुधगणैः संसेवितो यः सुधः ।
सायुज्याध्वसुदर्शको मुनिवरो दिव्यैः प्रबन्धैश्च यो
रामब्रह्मपरायणः स भगवान् बोधायनः पातु माम् ॥२॥
श्रीमद्वैष्णवधर्मवारिजकृते यो भास्करो रश्मिवान्
यो रामस्य च भक्तिसाधनविधेः कल्पद्रुमो विश्रुतः ।
श्रीसम्पादितसम्प्रदायजलधेर्यो वर्धकश्चन्द्रमा
रामब्रह्मपरायणः स भगवान् बोधायनः पातु माम् ॥३॥
यः श्रीरामषडक्षरं शुकमुनेः संलब्धवान् मुक्तिदं

रामब्रह्म परात्परं भजनतो मुक्तिप्रदो मन्यते ।
आचार्यः पुरुषोत्तमः सुखकरो यस्याभिधानं शुभं
रामब्रह्मपरायणः स भगवान् बोधायनः पातु माम् ॥५
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यविनिर्मितम् ।
पञ्चकं भवतादेतत् सर्वकल्याणकारकम् ॥६॥

——०——

बोधायनवृत्तिकारभगवत्पादश्रीपुरुषोत्तमाचार्यप्रणीता

श्रीबोधायनगीता

(श्रीरामायणरहस्यम्)

शुकदेवं गुरुं नत्वा श्रीमद्व्यासं च राघवं ।
रामायणरहस्यं हि सदबोधाय ब्रवीम्यहम् ॥१॥
जिज्ञास्यः शास्त्रयोनिश्च श्रुत्यन्वितोऽखिलेश्वरः ।
जगत्सृष्ट्यादिकर्त्ता श्रीरामो ब्रह्म परात्परम् ॥२॥
उपायश्चाद्वितीयोऽस्ति रामप्राप्तौ विनिश्चितः ।
प्रारब्धनाशिनी नृणां श्रीरामशरणागतिः ॥३॥
प्राप्यं श्रीरामकैङ्कर्यं श्रीरामप्राप्तिपूर्वकम् ।
पुरुषकारसाहाय्यात् प्रपत्त्या प्राप्यते हि तत् ॥४॥
आदर्शव्यवहारो हि ज्ञायते रामवृत्ततः ।
मात्रा पित्रा सह भ्रात्रा मित्रामित्रैश्च देशिकैः ॥५॥
प्रपन्नरक्षकत्वस्य वात्सल्यादेश्च पूर्णता ।
उक्ता रामायणे श्रीमत्सीतारामचरित्रतः ॥६॥
आचाराल्लक्ष्मणस्याथ ज्ञापिता रामशेषता ।
श्रीरामाधीनता सम्यग् व्यक्ता भरतवृत्ततः ॥७॥
श्रीमद्भागवताधीनतोक्ता शत्रुघ्नवृत्ततः ।

अनन्यगतिकत्वं च प्रपन्नेऽपेक्षितं खलु ॥८॥
विभीषणजयन्तादेर्वृत्तात्तदवगम्यते ।
रक्षकत्वविहीनत्वं भ्रात्रादौ गम्यते च तत् ॥९॥
भगवत्प्रतिपत्तौ च मुख्यो हेतुर्हि देशिकः ।
इत्येतदवबोद्धव्यं श्रीमन्मारुतिवृत्ततः ॥१०॥
कथिता रामगीता हि रामेण भरतं प्रति ।
साररूपतया बोध्या श्रीमद्रामायणस्य सा ॥११॥
वृत्ताभ्यामवगन्तव्यं रावणकुम्भकर्णयोः ।
अहन्ताममतादीनां स्वरूपं हि विरोधिनाम् ॥१२॥
निरासाग्रहणाभ्यां हि जाबालिवचसस्तथा ।
अग्राह्यं च निरास्यं चासच्छास्त्रोक्तं प्रबोधितम् ॥१३॥
प्रपन्नावासदेशो हि प्रोक्तः कोशलवृत्ततः ।
उक्तो रामायणेनाथ गायत्र्यर्थविनिर्णयः ॥१४॥
उत्तरेण चरित्रेण श्रीरामस्यावतारिणः ।
वर्णितं पूर्णरूपेण चावतारस्य कारणम् ॥१५॥
भक्तिदानं च लोकेभ्यः सद्धर्मस्थापनं तथा ।
रामायणे हि सम्प्रोक्तं श्रीवाल्मीकिमहर्षिणा ॥१६॥
रामवद् वर्त्तितव्यं हि कदाचिन्न दशास्यवत् ।
स्वेन सार्द्धं कुलस्यात्र नो चेन्नाशो भविष्यति ॥१७॥
यान्ति न्यायसहायस्य सर्वेऽप्यत्र सहायताम् ।
अन्यायं समवाप्तं तु स्वीयो भ्राताऽपि मुञ्चति ॥१८॥
इत्येवं सदसत्मार्गदर्शकत्वेन सम्मते ।
रामरावणयोर्वृत्ते रामायणे सुवर्णिते ॥१९॥
बोधायनेन सम्प्रोक्ता गीता गङ्गाधरं प्रति ।
जनानां पठतां भूयादज्ञानस्य विनाशिनी ॥२०॥

नुभववादी अनुभव को मानते है तथा परीक्षावादी अनुभव और बुद्धि दोनों को।

भारतीय ज्ञान ग्रहण प्रक्रियां में इन्द्रियो द्वारा ज्ञान का ग्रहन, मन द्वारा मनन, चित्त द्वारा चिन्तन, बुद्धि द्वारा निर्णयके पश्चात आत्मा को प्रत्यक्ष होता है इन्द्रिय द्वारा प्राप्त ज्ञान निर्विकल्पज्ञान (विषयता प्रकारतारहित ज्ञान) रहता है वह मनके सम्पर्क से मनन का विषय और चित्त के सम्पर्क में चिन्तन का विषय बना हुआ बुद्धि द्वारा सविसय ज्ञान ही नहीं अपितु अलौकिक प्रत्यक्ष ज्ञान के रूप में आत्मा को बोध होता है। जीव की बुद्धि अनित्या (जन्या) है। वह विकारी है। इस लिये भगवान् ने अर्जुन को कहा है—"व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।" व्यवसाय विपरीत अव्यवसायात्मिका (अनिश्चय:। इसके विपरीत अव्यवसात्मिका (अनिश्चयात्मिका) बुद्धि संशयात्मिका होती है। बुद्धि का परिच्छेद ज्ञान है—ऐसा मानने वाले मत, एक' 'बुद्धि ही ज्ञान है—ऐसा मानने वाले मत चाहे कोई भी मत हो मुक्ति के प्रकरण में ज्ञान को अनिवार्य मानते है। श्रीमदभगवदगीता में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि—

"बुद्धि नाशात्प्रणश्यति" "बुद्धौ शरणमन्विच्छ— ॥४७॥ सम्भवतः बुद्ध धर्म के "बुद्धं शरणं गच्छामि" के संशय उपदेश का लक्ष्य भी "बुद्धौ शरणं अन्विच्छ" ही हो।

ज्ञान के तिरस्कार के कारण आज असंख्य मनगढ़ंत मत मतान्तर संसार में प्रचलित हैं और दिन प्रतिदिन उत्पन्न हो रहेहैं

यदि बुद्धि द्वारा परीक्षाकर ध्येय ज्ञेय आदि का ज्ञान प्राप्त कर अपने कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय किया जाय तो असत्पक्ष स्वतः निरस्त हो जायेंगे क्योंकि ज्ञान प्रकाश रूप है, उसके साथ अज्ञान रूपतम रह ही नहीं सकता है 'सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः" "तुलसी कबहुँ कि रह सकहिं, रवि रजनी इक ठाम'। भगवान् ने कहा है–

"तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।।"
'ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम् ।"
अतएव भक्त कहतेहै–"तमसो मा ज्योतिर्गमय।"

ज्ञातव्य–

आचार्य पीठ सम्बन्धी अनेक कार्य व्यग्रता तथा मुद्रणालय में कार्यकर्ताओं का अवकाश और कार्याधिक्य से जून महिना का अंक नहीं निकल सका अतः यह संयुक्तांक ४–५ आपकी सेवा में जा रहा है। सम्पादक

मुद्रकः–श्रीरामानन्द प्रिंटिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद–२२

त्रिदण्डि संस्थान श्रीशेषमठ–धर्मप्रचार बिभागसे धर्मप्रचार्थ प्रकाशित

प्रेषक–श्री कोसलेन्द्र मठ सरखेज रोड
पो०पालड़ी, अहमदाबाद–३८०००७

ग्राहक नं.

प्रति श्री ....

१७७ रजिस्ट्रार
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार (यु. पी.)

वाराणसीस्थ आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यपीठाचार्य

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य-राम प्रपन्नाचार्य

योगीन्द्र प्रवर्तित विश्राम द्वारकास्थ श्री शीवमठ संचालित,

ज.गु. श्री रामानन्दाचार्य-पीठ

सचित्र धार्मिक मासिक

संरक्षक- शेठ श्री अमरशी कुरजी मजिठिया

सम्पादक- स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य

सहसम्पादक- पं. शरच्चन्द्र शास्त्री

प्रणम्यं पूजनीयं च स्तवनीयं बलाम्बुधिम् ।
शरण्यं सद्गुरुं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम ॥
सर्वज्ञं रामभक्तं च दयाब्धिं ज्ञानभक्तिदम ।
देव देवं गुरुं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥
(श्रीब्रह्माकृतस्तुति वसिष्ठसंहितायाम्)

कार्यालय: श्री कोसलेन्द्र मठ, सरखेज रोड, पालड़ी,

अहमदाबाद-३८०००७

वर्ष ५ विक्रमाब्द २०४० अंक ६

श्रीरामानन्दाब्द ६८३ १ अगस्त १९८३
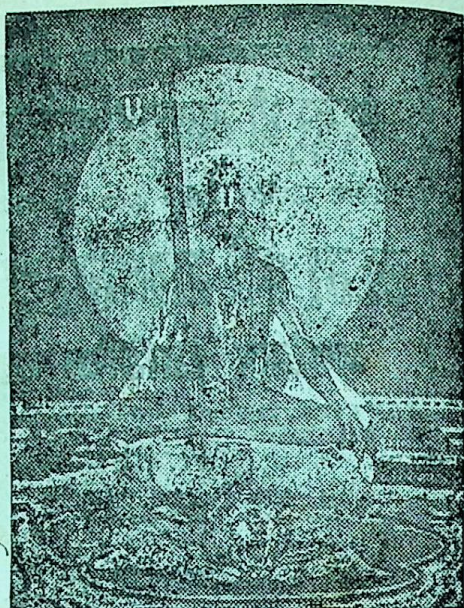
जगद् गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र

चातुर्मास सूचना

सर्वसाधारण मानवों को विदित हो कि इस वर्ष अनन्त श्री विभूषित श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीरामानन्द सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र का चातुर्मासानुष्ठान प्रधान श्रीरामानन्दाचार्य पीठ काशी में ही होगा। अतः सर्वभाविकों को आचार्य श्री का सम्पर्क काशी में ही साधना चाहिये।

आचार्य श्री
आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य पीठ
शंकुधारा—वाराणसी. २२१०१०

आचार्य पीठों में गुरु पूर्णिमा महोत्सव

सानन्द सम्पन्न

गुकार अन्धकारश्च रुकारस्तन्निवर्तकः ।
अन्धकारविरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥

यह अति प्राचीन आभाणक है । तात्पर्य यह कि 'गु' शब्द का अर्थ अन्धकार है 'रु' शब्द का अर्थ अन्धकार विरोधी अन्धकार को दूर करने वाला अतः दोनों का संयुक्तार्थ यह हुआ कि अज्ञानान्धकार दूर करके ज्ञानरूप प्रकाश प्रदान करे वह गुरु है । इसीलिये भारतीय साहित्य में--

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षुरुन्मिलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

यह उक्ति अति प्रसिद्ध हैं । भारतीय ही नही विश्व मानव गुरु महत्व से अच्छी तरह से परिचित है । मानव जीवन पथ का कर्णधार ही गुरु होते हैं अतः भारतीय साहित्य में--

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

इस प्रकार ब्रह्म विष्णु महेश के साथ गुरु की तुलना की गई है । अतः कवि कुल मणि जगद्गुरु श्री तुलसीदासजी महाराज ने मानव को सूचित किया कि--

"विनगुरु भवनिधि तरइ न कोई ।
जौं विरंचि शंकर सम होई ॥"

गुरु शरणापन्न होकर वैदिक विधानानुसार शिक्षा-दीक्षा प्राप्त किये बिना ब्रह्माजी जैसों की भी गति-मुक्ति नहीं हो सकती तो अन्यों की तो बात ही क्या? आप ने इस आदि काल के प्रसङ्ग के तरफ संकेत किया है--

"सृष्टयादौ च सिसृक्षुः श्रीरामोविधिं विधाय हि ।
सृष्टये प्रेरयामास वेदं ज्ञानमहानिधिम् ॥४॥
तथाप्यर्थविबोधस्याभावाद्विधिः ससर्ज न ।
जातायामीश भक्तौ च गुरुभक्तिर्यतो नहि ॥५॥
भक्तिद्वये यतश्चास्ति तत्त्वप्रकाशहेतुता ।
ततो वेदार्थबोधो न गुरोर्भक्तेरभावतः ॥६॥
ततो रामस्य खेदं हि समुद्वीक्ष्य च मैथिली ।
गृहित्वा विधवद् रामान्मन्त्रराजं षडक्षरम् ॥७॥
हनुमते च दत्त्वा तं मन्त्रराजं षडक्षरम् ।
विधये मन्त्रदानाय प्रेरयामास मारुतिम् ॥८॥

(आगमशास्त्र-वशिष्ठ संहिता) सारांश यह कि 'योवै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाश्च प्रहिणोति तस्मै'' इस श्रुति के अनुसार जो सर्वप्रथम ब्रह्माजी को उत्पन्न कर वेदों का उपदेश देते हैं उन सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ने सृष्टि के आदि में ब्रह्माजी की सृष्टि कर वेदों का उपदेश देकर सृष्टि करने की आज्ञा दी पर गुरुनिष्ठा के अभाव तथा यथा विधि दीक्षा ग्रहण-गुरुमन्त्र प्राप्त न होने के कारण सृष्टि कार्य में असमर्थ रहे, सृष्टि कार्य में ब्रह्मा

को असमर्थ देखकर श्रीरामजी खिन्न हुए, भगवान् का दुःखावस्था से अवगत हो सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ने विधवत् श्रीरामचन्द्र जी से तारक षडक्षर मन्त्रराज की दीक्षा-शिक्षा प्राप्त की अनन्त यथा विधि अपने प्रिय सेवक नित्यपार्षद श्रीहनुमानजी को दीक्षा शिक्षा देकर विधि पूर्वक ब्रह्माजी को दीक्षित करने की आज्ञा दी। सर्वेश्वरी जी की आज्ञानुसार श्रीहनुमानजी ने ब्रह्मा जी को दीक्षा-शिक्षा दी गुरुमहत्व का उपदेश दिया-

"राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ॥"
(अथर्ववेदीय श्रीरामोपनिषद्) १।६ तथा
"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥"

(श्वे. उ. ६।२३) अर्थात् सर्वेश्वर श्रीराम ही पर ब्रह्म है जैसे कि श्रीरामतापनीयोनिषद् में भी कहा है "रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति राम पदेनाऽसौ परं ब्रह्माभिधियते" जिस अनन्त स्वरूप सच्चिदानन्द श्रीराम जी में योगिजन रमण करते हैं उस सर्वरमण शील श्रीराम को पर ब्रह्म कहा जाता है" श्रीरामजी ही परं तप स्वरूप हैं श्रीराम जी ही पर तत्व हैं तारक ब्रह्म भी वही हैं। व्यक्ति की जैसे स्वेष्ट देव में उत्कृष्ट भक्ति होति है वैसी ही भक्ति दीक्षा-शिक्षा देने वाले गुरु में हो तब उपदिष्ट सर्व तत्व प्रकाशित

होते हैं अर्थात् फलाभिमुख होते हैं, अन्यथा निष्फल हो जाते हैं। इस प्रकार गुरु मुखी होने पर ब्रह्मा जो गुरु वेदान्त वाक्यविश्वास वाले हुये तब उन्होंने कार्यक्षम होकर सृष्टि क्रम चलाई, भगवदाज्ञापालन कर अन्त में भगवत्सायुज्य प्राप्त किया।

अतः यह परंपरा अक्षुण्ण रूप से आज भी प्रवाहित हैं उसी का स्मारक यह गुरुपूर्णिमा वर्ष में एक बार आकर मानव समाज को अक्षुण्ण वैदिक परम्पराप्राप्त सदाचार्य से ब्रह्मतारकषडक्षर मन्त्र राज श्री की दीक्षा लेकर शिक्षित होकर यावज्जीवन स्व जीवन को धन्य बनाकर अन्त में श्रीरामसायुज्य प्राप्त करने की प्रेरणा देती है।

यों तो यह क्रम पूर्वोक्तदिशा सृष्टि के आदि काल व उससे भी पूर्व काल से नित्यविभूति में दृष्टि पथ होता है पर लीला विभूति में ग्लानिप्राय क्रम ने पुनः तब वेग पकड़ा जब श्रीरामानन्द सम्प्रादाय के सातवें आचार्य श्रीव्यासजी का इसी गुरु पूर्णिमा के दिन अवतरण हुआ। उन के द्वारा सविधि परम्परागत वैदिक–नियम से दीक्षा–शिक्षा लेने लिवाने का क्रम इतना जोर पकड़ गया कि यह तिथि ही गुरु पूर्णिमा व्यास पूर्णिमा व्यास पूजा आदि नामोंसे सुविख्यात होकर उनका स्मारक कीर्ति स्तम्भ बन गई। गुरु पूर्णिमा के स्मरण से उनके द्वारा

उमदिष्ट या विभक्त वेद इतिहास पुराण ब्रह्ममोमांसा आदि मानव समाज के परमोन्नायक पथ प्रदर्शक सद्ग्रन्थ आंखों के सामने नाचने लगते हैं। तत्वज्ञान का चरमोत्कृष्ट शारीरिक मीमांसा श्रीबादरायण जी का ही देन है जिसका प्रतिद्वन्दी आजतक विश्व में उत्पन्न नहीं हुआ। वह आज भी उसी तरह से मानव सेवारत है जिस तरह से उसके प्रादुर्भाव काल में था उसके ऊपर अनेक मतमतान्तर वादियों के द्वारा स्वमत स्थापनार्थ अनेक प्रकार से भाष्य टीकादि किये गये पर पाटच्चरों के कुचक्र रूप चङ्गूल में फँस जाने के कारण अपने परमदुर्भाग्य से अद्यावधि पूर्णतया अनुपलब्ध उन्हीं के प्रशिष्य श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के ९ वें आचार्य जगद्गुरु **श्रीपुरुषोत्तमाचार्य** कृत **श्रीबोधायनवृत्ति** ही सर्वोत्कृष्ट थी क्योंकि उन्होंने अपने दादा गुरु सूत्रकार से ही सूत्राशयों को समझा था जिसके ऊपर श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के २२ वें आचार्य जगद्गुरु **श्रीरामानन्दाचार्य जी** यतिसम्राट् का विश्व में विशिष्टाद्वैत मत विजय ध्वज को फरकाने वाला **आनन्द भाष्यरूप** महल अवस्थित है। उस आनन्द भाष्य के तत्वों को प्रदीपित करने वाली श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के ४० वें **आचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्य योगीन्द्र** जी की भाष्य-दीप टीका तथा स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य जी का प्रकाश विवरण है।

इस वर्ष यह पावन गुरु पूर्णिमा दि० २४।७।८३ रविवार को थी। प्रधान श्रीरामानन्दाचार्य पीठ काशी शुंकुधारा तथा पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दपीठ विश्रामद्वारिका पोरबन्दर और श्रीरामानन्दपीठ श्रीकोसलेन्द्रमठ अहमदावाद में गुरु पूर्णिमा महोत्सव विशेष रूप से मनाया जाता है जहाँ हजारों की भीड़ रहती है क्योंकि आचार्य श्री से दीक्षा-शिक्षा प्राप्त करने की इच्छावालों का प्रवाह विशेष रहता है। जो प्रातः ७ बजे से ही प्रारम्भ हो जाता है सायं ७ बजे तक चालू रहता है। इस वर्ष में भी हजारों मानव ने जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्य जी योगीन्द्र तथा आचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी से दीक्षा-शिक्षा प्राप्तकर भगवत् शरणापन्न होकर स्व जीवन को धन्य बनाया आचार्यपीठ का गुरु पूर्णिमोत्सव एक मेला का रूप धारण कर लिया है। सौम्य वातावरण में उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। आचायपीठों में दूर से आये भाविकों के लिये आवास प्रसाद सेवनादि की उत्तम व्यवस्था होने से किसी को कोइ कठिनाई नहीं होती।

संक्षिप्त श्रीमन्त्रराजजपविधिः

नीचे लिखे मन्त्रों को बोलकर तीन बार आचमन करें १-ॐ रामाय नमः २-ॐ रामभद्राय नमः ३-ॐ रामचन्द्राय नमः। ॐ रघुनन्दनाय नमः इस मन्त्र को बोलकर हाथ धोवें। इसके बाद ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुर प्रसन्नवदनाय अमिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः, क्लीं

तेजसे रां तां क त्र म स्वाहा। इस मन्त्र से जल अभिमन्त्रित कर षडक्षर राममन्त्र को पढ़कर आठ बार शिर पर जल छिटके। पुनः हाथ में जल लेकर नीचे लिखा विनियोग पढकर जल छोड़ दे--

ॐ अस्य श्रीरामषडक्षरमन्त्रराजस्य श्रीसीता ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीरामोदेवता रां बीजं नमः शक्तिः रामाय कीलकं श्रीसीताराम प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

तब न्यास करे—**ऋषिन्यास** ॐ श्रीसीता ऋषये नमः शिरसि। गायत्री छन्दसे नमः मुखे। श्रीरामोदेवतायै नमः हृदि। रां बीजाय नमः गुह्ये। नमः शक्तये नमः पादयोः। रामाय कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ रां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ रूं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ रैं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

अंगन्यास

ॐ रां हृदयाय नमः। ॐ रीं शिरसे स्वाहा। ॐ रूं शिखायै वषट्। ॐ रैं कवचाय हुँ। ॐ रौं नेत्राभ्यां वौषट्। ॐ रः अस्त्राय फट्।

मन्त्राङ्गन्यास

ॐ रां नमः मूर्ध्नि। ॐ रामाय नमः नाभौ। ॐ नमो

नमः पादयोः । ॐ रां बीजाय नमः दक्षिणस्तने । ॐ नमः शक्तये नमः वामस्तने । ॐ रामाय कीलकाय नमः हृदि ।

तब यथाशक्ति प्राणायाम कर इस श्लोक को बोलते हुए ध्यान करे—

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं
सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौमहासायकचारुचापं
नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

तब—ॐ दाशरथायविद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात् । इस श्रीरामगायत्रीमन्त्र का बारह बार जप करे । अनन्तर श्रीमन्त्रराज—

रां रामाय नमः

का कम से कम तीन माला जप कर श्रीरामगायत्री का १२ बार जप करे ।

पुनः यथाशक्ति प्राणायाम कर—

१—ॐ श्रीरामः शरणं मम । २—ॐ श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये । श्रीमतेरामचन्द्राय नमः ।

३-ॐ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

इन तीन मन्त्रों को यथाशक्ति बोलते हुए भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करे ।

श्रीसीतारामीय जन्म शताब्दी महोत्सव

कटावधाम (बनासकांठा) उ० गुजरात श्री बजरंग भजन आश्रम में साधन के प्रतिमूर्ति प्रेरक एवं समर्पित जीवन वाले संत पण्डित श्री अवधकिशोरदास जी श्री प्रेमनिधि महाराज जी के तत्वावधान में ३ जून से ११ जून तक श्री खाकी जी महाराज के साकेतधाम यात्रा की हीरक जयन्ति एवं संत सम्राट स्वामी श्री मथुरादासजी महाराज की जन्म शताब्दी महोत्सव धूमधाम के साथ मनाया गया ।

उक्त अवसर पर श्रीरामचरित मानस की कथा ९ दिनों पालिताणा के महन्थ श्रीरामदासजी रामायणी के व्यासकत्व में बड़ी ही रोचक काठियावाड़ी शैली में (गुजराती में) की गया । ९ पाठकों के द्वारा रामायण जी का पाठ भी पूरा किया गया । कथा में श्रीराम जन्मोत्सव श्रीसीताराम विवाह तथा श्रीराम-राज्याभिषेक का आयोजन अत्यधिक धूमधान से बाजा गाजा के साथ किया गया ।

अन्तिम दिन पुर्णाहुति के अवसर पर एक विशाल संत-एवं महन्थों का भंडारा भी किया गया । इस दिन करीब ५

हजार मूर्तियों ने भगवान् का प्रसाद पाया। प्रत्येक दिन करीब १ हजार व्यक्तियों के बीच प्रसाद वितरण होता रहा।

पण्डितजी अवधकिशोर दासजी द्वारा पुर्णाहुति के अवसर पर एक विद्वत्तापूर्ण प्रवचन पेश किया गया। श्री भगवान् दासजी श्री सियावल्लभ दासजी ने भी अपने विचार व्यक्त किये। श्री भीमजी भाई वकील, श्री डायाभाई, श्री माधवलाल, श्री टिकम चन्द श्री वैकुण्ठरामजी श्री स्वरूपचन्दजी श्री रूपसीभाई पटेल श्री मफतलाल पटेल जी का सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ। समिति के द्वारा साधु सन्तों को यथोचित विदाई भी दी गयी।

सीताराम
प्रतिनिधि कटावधाम
गुजरात

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ संचालित महाविद्यालयों में
अनुष्ठनीय मान दैनिक

प्रार्थना

पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दपीठाधीश्वर स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य कृता प्रकाश युता।

यस्माद् विश्वमुदेति येन लभते संरक्षणं शाश्वतं
यस्मिन्नव्ययमेति यो हि सततं कारुण्यवारांनिधिः।
यः कल्याण गुणाकरस्त्रिजगतः श्रेयः परंप्रापक—
स्तं ब्रह्मार्चितपादपद्मयुगलं रामाख्यमीशं नुमः ॥१॥

अन्वयः—यस्मात् विश्वम् उदेति, येन ? (विश्वम्) शाश्वतम् संरक्षणम् लभते, यस्मिन् (विश्वम्) अप्ययम् एति, यः कल्याणवारां निधिः सततम् हि (अस्ति), यः कल्याणगुणाकारः त्रिजगतः श्रेयः परंप्रापकः (अस्ति) तम् ब्रह्मा चिंतपादपद्मयुगलम् रामाख्यम् ईशम् नुमः ॥१॥

प्रकाश :- जिस सर्वेश्वर श्रीरामजी से सब (चराचर जगत्) प्रकट होता है, जिसके द्वारा विश्व हमेसा संरक्षण अच्छी तरह की रक्षा पाता है, पुनः अन्तमें जिसमें विश्व लय प्राप्त करता है, जो सर्वदा कल्याण (मङ्गल) का समुद्र रूप से रहता है, जो सर्व कल्याण गुणों का खान है, तथा त्रिभुवन का अत्यन्त श्रेष्ठ कल्याण सायुज्यमुक्ति की प्राप्ति (सब को उपलब्धि) करानेवाला है, उन ब्रह्मादि देवों से पूजित युगल चरण कमल वाले श्रीराम नामक प्रभु को हम स्तुति करते हैं ॥१॥

ऐश्वर्यं यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जग-
च्चित्रं चाखिलमद्भुतं शुभगुणा वात्सल्यसीमा च या
विद्युत्पुञ्जसमानकान्तिरमितक्षान्तिः सुपद्मेक्षणा
दत्तान्नोऽखिलसम्पदो जनकजा रामप्रिया साऽनिशम् ॥२

अन्वयः—इदम् दिगीशैः भोग्यम् ऐश्वर्यम् यदपाङ्गसंश्रयम् अस्ति अद्भूतम् चित्रम् च अखिलम् जगत् यदपाङ्गसंश्रयम् अस्ति या शुभगुणा वात्सल्यसीमा च विद्युत्पुञ्जसमानकान्तिः अमितक्षान्तिः सुपद्मेक्षणा रामप्रिया जनकजा सा नः अखिलसम्पदः अनिशम् दत्तात् ॥२॥

प्रकाशः–यह दिशाओं के स्वामियों (इन्द्रादियों) से उपभोग योग्य ऐश्वर्य (विभूति) जिन श्री जानकीजी के अपाङ्ग (दृष्टिकोण) के अवलम्बन करनेवाला होता हुआ वे सब भोगते है, तथा अति अद्भुत विचित्र यह सब जगत् जिनके इशारा मात्र से उत्पन्न होकर सबका भोग साधन बनता है, तथा जो कल्याण गुणवाली वत्सलता की सीमा हैं, तथा जो बिजली के समूह के तुल्य चमकदारदेह कान्ति वाली हैं और अतुलितक्षमा वाली तथा सुन्दर कमल के समान नेत्र वाली हैं ऐसी श्रीरामजी की प्रिया, (प्रेम पात्र-भूत) जनकजा श्री जानकी जी हैं वे हमलोगों के लिये सर्वदा सब सम्पतियां मुक्ति प्रभृति सब ऐश्वर्य दिया करें।२।

रामो ब्रह्म परात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैव निःश्रेयसं
शेषा येन च शेषिणो रघुपतेर्जीवा इति स्वीकृतम् ।
श्रौतं युक्तियुतं मतं खलु विशिष्टाद्वैतकं यस्य स
श्रीबोधायनवृत्तिकृद् विजयतां बोधायनः शाश्वतम्॥३॥

अन्वयः–रामः श्रुतिमतम् परात्परम् ब्रह्म, भक्त्या एव निःश्रेयसम् येन शेषिणः रघुपतेः जीवाः शेषाः इति स्वीकृतम् । यस्य खलु श्रौतम् युक्तियुतम् विशिष्टाद्वैतकम् मतम् सः बोधायनवृत्तिकृत् बोधायनः शाश्वतम् विजयताम् ॥३॥

प्रकाश–श्रीरामजी श्रुतियों (वेदों) से माने हुए सच्चिदानन्द परात्पर ब्रह्म हैं, भक्ति से ही सायुज्यादि मोक्ष होता है, जिस श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन ने शेषी श्रीरामजी के सबजीव शेष

हैं, ऐसा माना है। तथा जिस बोधायन जी का श्रौत स्मार्त तथा युक्तियों से निश्चित विशिष्टाद्वैत नामक मत निश्चित है, वे बोधायनवृत्तनामक वेदान्त दर्शनमें सर्व दर्शन सम्मत वृहत् निबन्ध के कर्ता श्री बोधायन ऋषिजी सर्वदा सबसे उत्कृष्ट रहें अर्थात् विजयी हो ॥३॥

सन्मुक्तेः पथदर्शकं कुमतिहृत्-प्रस्थानभाष्यैस्त्रिभिः
काषायाम्बरधारिणं वरतमैर्दण्डैस्त्रिभिर्मण्डितम् ।
योगीन्द्रैर्वसुधाधिपैश्च विबुधैः संसेवितं मुक्तिदं
रामानन्दजगद्गुरुं हितकरं वन्दे यतीनां पतिम् ॥४॥

अन्वय—त्रिभिः प्रस्थान भाष्यैः कुमतिहृत् सन्मुक्तेः पथदर्शकम् काषायाम्बरधारिणम् वरतमैः त्रिभिः दण्डैः मण्डितम् योगीन्द्रैः वसुधाधिपैः च विबुधैः संसेवितम् मुक्तिदम् हितकरम् यतीनाम् पतिम् रामानन्दजगद् गुरुम् वन्दे ॥४॥

प्रकाशः-कुबुद्धिनाशक तीन भाष्यों से यानी गीतोपनिषद्वेदान्त दर्शन-ब्रह्मसूत्रों के आनन्द भाष्यों से अच्छी मुक्ति सायुज्य मुक्ति का मार्गदिखलाने वाले काषायवस्त्र का धारण करने वाले अत्यन्त श्रेष्ठ तीन दण्डों से शोभित योगियों में श्रेष्ठों से और विशिष्ट पण्डितों से सम्यक् सेवित मोक्षदाता हित करने के शीलवाले यतियों के स्वामी उन जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी का मैं वन्दन करता हूँ ॥४॥

रामानन्दनयार्यवर्ययतिभिः स्वाचार्यभाः संभृतो
दुर्वादान्मददंतिनो विदलयन् संकाशते केसरी ।
शिक्षा शिष्यवरान् सुतीर्थपदवीं सम्पादयँ लक्ष्यते
श्रीयुक्तो जयतात् सदा रघुवरो विश्वे यशो हर्षयन् ॥५॥

अन्वयः—रामानन्दनयार्यवर्ययतिभिः संभृतः स्वाचार्यभाः शिष्यवरान् शिक्षा दुर्वादोन्मददन्तिनः विदलयन् केसरी संकाशते, यः शिष्यवरान् शिक्षा सुतीर्थपदवीम् संपादयन् लक्ष्यते सः विश्वे यशः हर्षयन् श्रीयुक्तः रघुवरः सदा जयतात् ॥५॥

प्रकाशः—जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी के नय [नीति] के आचार्यों में श्रेष्ठ यतियों से संभृत संवेष्टित पूजित अपने आचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी के समान उद्दीप्त तथा सब शिष्यों को श्रेष्ठ शिक्षा से शिक्षित कर दुर्वादरूप मतवाले हाथियों को विदारित करता हुआ सिंह वेदान्द केसरी ज.गु. श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्य जी सम्यक् विराजित हैं वे आचार्य जी श्रीमान् ऐश्वर्य शाली श्री रघुवराचार्य जी विश्व में यश फैलाते हुये सर्वदा सबसे उत्कृष्ट हो रहे हैं यानी सर्वदा विजयी हों ॥५॥

यः श्रीरामपदारविन्दयुगलं ध्याता महाशास्त्रविद्
योगीन्द्रश्च पयः फलाशनपरस्त्यागी परिव्राजकः ।
छात्राणां परिपालको गुणनिधिर्विद्यालय (पीठस्यसं)स्थापक
स श्रीदर्शनकेशरी विजयते रामप्रपन्नः सुधीः ॥६॥

अन्वयः–यः श्रीरामपदारविन्दयुगलम् ध्याता महाशास्त्रवित् योगीन्द्रः च पयः फलाशनपरः त्यागी परिव्राजकः छात्राणाम् परिपालकः गुणनिधिः विद्यालय(पीठस्यस्)स्थापकः दर्शनकेसरी सुधीः सः रामप्रपन्नः विजयते ।६॥

प्रकाश–जो श्रीरामजी के युगल चरण रूप कमलों के ध्यान शील वाले हैं तथा महाशास्त्रज्ञाता योगियों में श्रेष्ठ और दूध फलों का भोजन मुख्य खुराक वाले विद्यार्थियों का रक्षक गुणों के खजाना विद्यालयों के या श्रीरामानन्दाचार्य पीठों के स्थापना करने वाले दर्शनशास्त्रों में सिंहसमान अर्थात् सर्व दर्शनशास्त्र के ज्ञाता सुन्दर बुद्धि वाले सद्गत विवेकीपण्डित जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य राम प्रपन्नाचार्य नामक आचार्य सबसे उत्कृष्ट हो विराजमान हैं ।६।

श्रीरामं जनकात्मजामनिलजं वेधोवसि(शि)ष्ठावृषी
योगीशं च पराशरं श्रुतिविदं व्यासं जिताक्षं शुकम् ।
श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गंगाधराद्यान् यतीन्
श्रीमद्राघवदेशिकं च वरदं स्वाचार्य वर्यं श्रये ॥७॥

अन्वय—श्रीरामम् जनकात्मजाम् अनिलजम् वेधोवशिष्ठौ ऋषी योगीशम् पराशरम् च श्रुतिविदम् व्यासम् जिताक्षम् शुकम् गुणनिधिम् श्रीमन्तम् पुरुषोत्तमम् गंगाधराद्यान् यतीन् स्वाचार्य वर्यम् वरदम् श्रीमद्राघवदेशिकम् च श्रये ॥७॥

प्रकाश–श्रीरामजी श्रीजानकीजी श्रीब्रह्माजी श्रीवशिष्ठऋषीजी योगियों में श्रेष्ठ श्रीपराशरजी वेदज्ञाता श्रीव्यासजी जितेन्द्रिय श्री

शुकदेवजो गुणों का खजाना श्रीमान् पुरुषोत्तमाचार्यजो यतियों में श्रेष्ठ श्रीगंगाधराचार्यजो आदि समस्त पूर्वाचार्यों के साथ अपने गुरु वरदाता श्रीमान् श्रीराघवानन्दाचार्यजी का मैं आनन्दभाष्यकार जगद् गुरु श्रीरामानन्दाचार्य आश्रय लेता हूँ अर्थात् समस्त पूर्वाचार्यों को सादर दण्डवत् प्रणाम करता हूँ।

यहाँ आदि शब्द से श्रीसदानन्दाचार्यजी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी श्रीद्वारानन्दाचार्यजी श्रीदेवानन्दाचार्यजी श्रीश्यामानन्दाचार्यजी श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी श्रीचिदानन्दाचार्यजी श्री पूर्णानन्दाचार्यजो श्रीश्रियानन्दाचार्यजी तथा श्रीहृयानन्दाचार्यजी का ग्रहण होता हैं क्यों कि आचार्य जी के परम्परा में श्रीरामजी से लेकर उनके गुरुदेव तक २१ आचार्य हैं अतः आचार्यप्रवर जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी इस श्री सम्प्रदाय के २२ वें आचार्य हैं। यह श्लोक आचार्य श्री का शिक्षा गीता के आनन्दभाष्य का मंगलाचरण है ॥७॥

अर्थपंचक-क्रमागत

(वर्ष ५ अङ्क २ के पृ० ४६ से आगे)

के विरोधियों को जानना विरोधी कौन से हैं। जो हमें परब्रह्म को नहीं प्राप्त होने देते है। उनको जानना चाहिए बस यही पाँच प्रकार के ज्ञान मुक्ति के वास्ते अपेक्षित है। इसी के न होने से जीव संसार में पड़ा है और इस ज्ञान के होते ही अनादि अविद्या के फन्दे से छुटकर यह जीवत्मा निरतिशयानन्दा वाप्तिरूप

(शेष टाइटल नं० ३ में)

वेदरूप पर्वत के शिखर से आकर मोहरूप हरि से रहित मुनिजनों के हृदय रूप वन में क्रीड़ा करते हुए रावणरूप हस्ति राजपर आघात क्रीड़ा दिखाने वाले अर्थात् रावण को बध करने वाले प्रसन्नवदन रघुवंश में सिंह यानी सिंह समान पराक्रमी सर्वेश्वर श्री रामचन्द्रजी हमारे मन को वश अर्थात् स्वाधीन अपने अनुकूल कर रहे हैं ॥ ४७ ॥

करयोः शरकार्मुकाभिरामं पदयोरश्मविवेककृत्परागम् ।
कलितेषुधिमंसयोः प्रभुं तं करुणापूर्णमपाङ्गयोरुपासे॥४८॥

अन्वय– करयोः शरकार्मुकाभिरामम् पदयोः अश्मविवेककृत्परागम् अंसयोः कलितेषुधिम् अपाङ्गयोः करुणापूर्णम् तम् प्रभुम् उपासे ॥४८॥

हाथों में बाण और धनुष धारित होने से अभिराम अर्थात् अति सुन्दर तथा पांवों में पत्थरों के विवेक कारक परागवाले कंधे पर तरकस बाणों की थैली धारण करने वाले करुणा पूर्ण अपाङ्ग अर्थात् नयन वाले प्रभु सर्व समर्थ श्रीरामचन्द्र जी की उपासना करता हूँ ॥४८।

अवलम्ब्य शरासमद्रिसारं
गुणमाकृष्य गुरुध्वनिं विमुञ्चन् ।
विशिखानहितेषु रुक्मपुंखान्
विहरत्याहवसीम्नि वीरराम: ॥४९॥

अन्वय-वीररामः आहवसीम्नि अद्रिसारम् शरासम् अवलम्ब्य गुरुध्वनिम् गुणम् आकृष्य अहितेषु रुक्मपुङ्खान् विशिखान् विमुञ्चन् विहरति ॥४९॥

वीर श्रीरामचन्द्रजी युद्ध की सीमा पर यानी युद्धभूमि में पर्वत के सार के समान सार वाला अतिदृढ़ धनुष लेकर महाशब्द करने वाली डोरी खैंच कर शत्रुओं के ऊपर सोने से मढ़ाए हुए बाणों को फेंकते हुए विचरते हैं ॥४९॥

चरमाङ्गनिबद्धचारुतूणं
सुरमाङ्गल्यधुरीणचापबाणम् ।
अलिनीलमुपैति मानसं मे
नलिनीनायकवंशभागधेयम् ॥५०॥

अन्वय-मे मानसम् चरमाङ्गनिबद्धचारुतूणम् सुरमाङ्गल्य धुरीणचापबाणम् अलिनिलम् नलिनीनायक-वंशभागधेयम् उपैति ॥५०॥

मेरा मन उत्तमाङ्ग में सुन्दर तूणीर अर्थात् तरकस बाँधे हुए देवों के कल्याण करने में अग्रेसर चाप बाण वाले भौंरे के सदृश नीलवर्ण वाले कमलिनीपति के यानी सूर्य के कुल के भाग्य स्वरूप श्रीरामचन्द्र जी के समीप में जाता है । ५०॥

दृशि कारुणिकः करे धनुष्मान्
कुशिकापत्यमखस्य रक्षिता यः ।

रजनीचरतूलचण्डवातो
भजनीयो मम सोऽयमेक एव ॥५१॥

अन्वय– यः दृशि कारुणिकः करे धनुष्मान् कुशिकापत्य मखस्य रक्षिता, रजनीचरतूलचण्डवातः सः अयम् एकः एवं मम भजनीयः अस्ति ॥५१॥

जो दृष्टि में दयालुता और हाथ में धनुषवाले और विश्वामित्र ऋषि के यज्ञ की रक्षा करनेवाले और राक्षस रूप कपास में उद्दण्ड वायु स्वरूप हैं, वे सर्वेश्वर मेरे पुरःस्थित श्रीरामचन्द्र जी ही एक मात्र मेरे सेव्य हैं ॥५१॥

वदने शबरीफलाभिलाषं
वचने सत्यधुराविराजमानम् ।
नयनेऽप्यनवेक्षितान्यदारं
चरणे जीवलमाश्रये नृपालम् ॥५२॥

अन्वय–वदने शबरीफलाभिलाषम् वचने सत्यधुराविराजमानम् नयने अपि अनवेक्षितान्यदारम् चरणे जीवलम् नृपालम् आश्रये ॥५२॥

मुख में शबरी के फलों की इच्छा करनेवाले, वचन में सत्य की धुरा सीमा विराजमान वाले तथा नेत्र से भी पर स्त्री का भी दर्शन नहीं करने वाले पांव में सभी जीवों को मुक्ति देने वाली अर्थात् धूली वाले सब भूपालों के रक्षक श्रीरामजी का आश्रय लेता हूँ ॥५२॥

नवनीरदनीलमात्तचापं
भवनीहाररविं शृणोतु लोकः ।
अवनीतनयासखं जगत्यां
स्तवनीयं मम दैवतमेकमेव ॥५३॥

अन्वय—लोकः शृणोतु नवनीरदनीलम् आत्तचापम् भवनीहार रविम् अवनीतनयासखम् एकम् एव दैवम् जगत्याम् मम तव च स्तवनीयम् अस्ति ॥५३॥

सब जन सुने कि नवीन मेघके समान नीलवर्ण वाले धनुष-धारण किये हुए संसाररूप कुहरे के मिटाने में सूर्यरूप श्रीरामजी जो कि श्रीसीताजी के अनन्य मित्र सहचर है वे ही एक देव पृथिवी में मेरे तथा आप सबके भी सेवनीय है। अर्थात् स्तुति करने योग्य हैं ॥५३॥

भरिता दयया दृशोः सुराणां
परितापक्षतये गृहीतचापा ।
दुरितानि धुनोतु काऽपि लीला
च्छुरिता भूमिसुताकुचाङ्गरागैः ॥५४॥

अन्वय—दृशोः दयया भरिता सुराणाम् परितापक्षतये गृहीतचापाम् भूमिसुता कुचांगरागैः छुरिता काऽपि लीला दुरितानि धुनोतु ॥५४॥

जिन की दृष्टियाँ दया से भरी हुई हैं देवों के परितापों के

नाश करने के लिये धनुष धारण करने वाली श्री सीताजी के स्तनों के अङ्गरागों से युक्त कोई विलक्षण लीला—क्रीड़ा पापों को दूर करे ॥५४॥

सुरचारणसिद्धवद्धसेवः
शरचापाभरणो नवाम्बुदश्रीः ।
अहिमांशुकुलार्णवेन्दुरेको
महिमान्तःकरणे ममाविरस्तु ॥५५॥

अन्वय—सुरचारणसिद्धवद्धसेवः शरचापाभरणः नवाम्बुदश्रीः अहिमांशुकुलार्णवेन्दुः एकः महिमा मम अन्तःकरणे आविः अस्तु ॥५५॥

देव चारण और सिद्धों से की गई सेवावाले बाण और धनुष रूप अलङ्कार वाले नये बादल की सी श्री-शोभा वाले अर्थात् नवीन मेघ के समान श्याम सूर्यवंश रूप सागर में उत्पन्न चन्द्रमा एक अर्थात् अद्वितीय महिमावाले श्रीराम मेरे हृदय में प्रकट हों ॥५५॥

धनुषा सह सायकं दधाने
जनुषा भूषितचण्डरश्मिवंशे ।
कुचनम्रमहीसुतानुरक्ते
क्वचन न्यस्तमिदं महिम्नि चेतः ॥५६॥

अन्वय—धनुषा सह सायकं दधाने जनुषा भूषितचण्डरश्मि-

वंशे कुचनम्रमहींसुताऽनुरक्ते क्वचन महिम्नि इदम् चेतः न्यस्तम् ॥५६॥

चाप के साथ बाण का धारण करनेवाले जन्म से सूर्यवंश को शोभित कर चुकनेवाले नम्रस्तनवाली श्रीसीताजी में अनुराग करने वाले किसी अपूर्व महिमा वाले श्रीरामजी के चरणों में यह मेरा मन न्यस्त है यानी लगा हुआ है ॥५६॥

भयकम्पितसागरप्रशस्ते
मयकन्यातनुमण्डनासहिष्णौ ।
नवगारुडरत्नभासुरे स्या-
दवगाढं हृदयं क्वचित् प्रभौ मे ॥५७॥

अन्वय–भयकम्पितसागरप्रशस्ते मयकन्या तनुमण्डनासहिष्णौ नवगारुडरत्नभासुरे क्वचित् प्रभौ मे हृदयम् अवगाढम् स्यात् ॥५७॥

भय से कँपाए हुए प्रकाण्ड समुद्र वाले मय राक्षस की पुत्री के शरीर के आभूषणों को नहीं सह सकने वाले अर्थात् रावण का वध कर मन्दोदरी को विधवा बनाने वाले नूतन गारुडरत्नों से चमकीले किसी प्रभु श्री रामजी में मेरा हृदय प्रविष्ट हो ॥५७॥

निजनामरसज्ञनीलकण्ठं
भजनाय प्लवगावृतोपकण्ठम् ।
वलयन्त्रितसिन्धुमन्तरेकं

कलयन्ननन्यमुपासितुं त्वरे कम् ? ॥५८॥

अन्वय–निजनामरसज्ञनीलकण्ठम् भजनाय प्लवगावृतोपकण्ठम् बलयन्त्रित सिन्धुम् एकम् अन्तः कलयन् अन्यम् कम् उपासितुम् त्वरे ? ॥५८॥

अपने नामरस के स्वरूप को शिवजी के द्वारा ज्ञापित कराने वाले सेवा के लिए वानरों से वेष्ठित समीप प्रदेशवाले बल से समुद्र यन्त्रित करनेवाले किसी एक आदि अन्त रहित अद्वितीय सम्पूर्ण विश्व को सर्वदा धारण करते हैं। उन सर्वेश्वर श्रीरामजी को छोडकर दूसरे किस की उपासना के लिये शीघ्रता करूं ॥५८॥

विकटभ्रुकुटिर्विलोकतेऽरीन्
विशिखान् मुञ्चति विग्रहान् विभिन्ते ।
अनुलिम्पति शोणितैर्धरित्रीं
रणरंगे रघुपुंगवः समिन्द्धे ॥५९॥

अन्वय–विकटभ्रुकुटिः अरीन विलोकते विशिखान् मुञ्चति विग्रहान् विभिन्ते शोणितैः धरित्रीन् अनुलिम्पति रघुपुङ्गवः रणरंगे समिन्द्धे ॥५९॥

भयानक भौंह वाले होकर शत्रुओं को देखते हैं, और बाण छोड़ते शरीरों को विदारित करते खूनों से पृथिवी को अनुलिप्त करतेहुये, रघुश्रेष्ठ श्रीरामजी युद्ध के आंगन में चमकते हैं, अर्थात्

शोभित हो रहे हैं ॥५९॥

स्मयमान मुखेन्दुरिन्द्रनील
द्युतिरम्भोजदलेक्षणो धनुष्मान् ।
तरलीकृतजानकीदृगन्त-
स्तरुणः कश्चन मे मनो धिनोति ॥६०॥

अन्वयः हसते हुए मुख रूप चन्द्र वाले इन्द्रनीलमणि के श्यामवर्णवाले, नीलकमल के समान नयनवाले धनुष वाले श्री सीताजी के नेत्र के अन्तः भाग को चञ्चल करने वाले कोई युवा पुरुष मेरे मन को खुश कर रहे हैं ॥६०॥

दलदुत्पलदामकोमलाङ्गी
दशकण्ठायुरपायकालभङ्गी ।
मनसे मम रोचतेऽभिरूपा
करुणा काचिदुपात्त बाणचापा ॥६१॥

अन्वय-दलदुत्पलदामकोमलांगी दशकण्ठायुरपाय-कालभङ्गी अभिरूपा उपात्तबाणचापा काचित् करुणा मम मनसे रोचते ॥६१॥

फूलते हुए कमल के पत्र समूह के समान कोमल अङ्ग वाली रावण को आयु के नाश में काल की भङ्गी अर्थात् छटा वाली सुन्दर बाण धनुष धरने वाली कोई श्रीरामचन्द्रजी की दया मेरे मनको पसन्द आती है ॥६१॥

मौलौ निधेहि मुकुटं त्यज बर्हिबर्हं
बाणं गृहाण धनुषा सह मुञ्च वेणुम् ।
शाखामृगैर्विहर संत्यज गोपबालान्
रामो यदूद्वह भव त्वमथाश्रये त्वाम् ॥६२॥

अन्वय–यदूद्वह त्वम् बर्हिबर्हम् त्यज मौलो मुकुटं निधेहि वेणुम् मुञ्च धनुषा सह बाणम् गृहाण गोपबालान् संत्यज शाखामृगैः विहर रामः भव अथ त्वाम् आश्रये ॥६२॥

यदुकुल के उन्नायक हे कृष्ण आप मयूर पुच्छ छोड दें और शिर में मुकुट धारण करें तथा वेणु को त्यागकर धनुष के साथ बाण को धारण करें और गोपबालकों को छोडकर के शाखामृग यानी बन्दरों से विहार–क्रीडा करें इस प्रकार आप श्रीराम स्वरूप हो जाय तो आपका आश्रय लूँ, हमारे आचार्य जी ने "भजामि सीतापतिमेव केवलं, रटामि सीतापतिमेव केवलम् । श्रयामि सीतापतिमेव केवलम्, प्रयामि सीतापतिमेव केवलम्" इत्यादि रूप से जगद्गुरु श्री गङ्गाधराचार्यजी के कथनानुरूप सर्वेश्वर श्रीरामजी में अनन्यता बतलायी जो एक परमैकान्तिक उपासक के लिए अतिआवश्यक है। उद्धृत श्लोक का रसानुभव अनन्यता वेदन प्रबन्ध के मेरे विवरण से करें । ६२॥

कृष्णैकसूतरथकेतनभूतदूतः
सोऽनूरुसारथिरथात्मजमित्रभूतः ।
वाणीशयन्तृकरथस्य शरासभंक्ता

कश्चिन्मनो हरति कार्मुकभूषणो मे ॥६३॥

अन्वय : कृष्णैकसूतरथकेतनभूतदूतः अनूरुसारथिरथात्मजमित्रभूतः स वाणीशयन्तृकरथस्य शरासभङ्क्ता कश्चित् कार्मुकभूषणः मे मनः हरति ।६३।

श्रीकृष्ण रूप प्रधान सारथिवाले अर्जुन के रथ के ध्वज बने हुए श्रीहनुमानजी रूप दूतवाले हैं जो अनूरु यानी जांघों से रहित अरुण रूप सारथि वाले रथ के स्वामी सूर्य के आत्मजों यानी अपत्यों अर्थात् सन्तानों के मित्र बने हुए है, वेही सरस्वती के ईश यानी स्वामी ब्रह्मा जी के सारथि से युक्त रथवाले श्री शिवजी के चाप कों तोडने वाले हैं ऐसा अति विलक्षण कोई धनुषरूप अलङ्कारवाले श्रीरामजी मेरा मन हर रहे है ! ॥६३॥

दृप्यद्दशाननकलत्रकठोरगर्भ-
विभ्रंशविभ्रमपरिस्फुटसाहसेन ।
घण्टा विलुण्ठयतु नः कलुषं रवेण
कोदण्डकोटिघटिता कुलदेवतायाः ॥६४॥

अन्वय : दृप्यद्दशाननकलत्रकठोरगर्भविभ्रंशविभ्रमपरिस्फुट साहसेन नः कुलदेवतायाः कोदण्डकोटिघटिता घण्टारवेण कलुषम् विलुण्ठयतु ॥६४॥

गर्भ करते हुये रावण की पत्नी के कठीन गर्भ के गिराने-नाश करने में विभ्रमणता शीघ्रता से व्यक्ततर अतिस्पष्ट

साहस वाले हमारे कुलदेवता-इष्टदेव श्रीरामचन्द्रजी के धनुष के अग्रभाग में लगी घण्टा के शब्द से आप सब भी कलुष अर्थात् पूर्व उपार्जित पाप विनष्ट करें ॥६४॥

देवद्विषां विजयि देहभृतां शरण्यं
कारुण्यभूषितकटाक्षमुदग्रचापम् ।
टङ्कत्रुटन्मरतकोमलरत्ननीलं
धाम स्मरामि धरणीतनयासहायम् ॥६५॥

अन्वय : देवद्विषाम् विजयि देहभृताम् शरण्यम् कारुण्य भूषितकटाक्षम् उदग्रचापम् टङ्कत्रुटन्मरतकोमलरत्ननीलम् धरणीत-नया सहायम् धाम स्मरामि ॥६५॥

देवताओं के शत्रुओं को सर्वतो भावसे जीतनेवाले देहधारी मात्र के एक मात्र शरण्य अर्थात् शरणमें आये हुये पापियों को भी अभय देनेवाले तथा दया से शोभित कटाक्ष दृष्टि वाले हाथ में धनुष उठाये हुये और छेनी से टूटते हुये--घडते हुये यानी परिस्कृत करते समय के मरकतमणि के समान श्याम वर्ण वाले तथा श्रीसीताजी सहाय वाले श्रीरामचन्द्रजी के दिव्य धाम तेज का मैं स्मरण करता हूं अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी के दिव्य तेज का मैं सदा ध्यान करता हूं ॥६५॥

आस्ते कृतान्त इति पापिषु दण्डका(?धा)री-
त्याकर्णितेऽपि मुहुराप्तपरम्परायाः ।
रक्षिष्यतीति रघुनन्दनमेव साक्षा-

द्विश्वस्य केवलमहं न विचिन्तयामि ॥६६॥

अन्वय : कृतान्तः पापिषु दण्डका(धा) री आस्ते इति आप्तपरम्परायाः मुहुः आकर्णिते अपि केवलम् रघुनन्दनः एव साक्षात् रक्षिष्यति इति विश्वस्य अहम् न विचिन्तयामि ॥६६॥

यमराज पापियों को दण्ड करने वाला हैं यह आप्तजनों के गणसे परंपरा से सुनने पर भी केवल श्रीराम ही रक्षा करेगें ऐसा उनमें विश्वासकर मैं चिन्ता नहीं करता हूं ॥

तिष्ठन्तु दारुणतरा निरयाः सहस्रं
तिष्ठन्तु घोरचरिता यमकिङ्करा वा।
पापात्मनोऽपि नियतं परिपालनाय
कोदण्डपाणिरिति कोऽपि ममास्ति नाथः ॥६७॥

अन्वय : दारुणतराः सहस्रम् निरयाः तिष्ठन्तु घोरचरिताः यमकिङ्कराः वा तिष्ठन्तु, पापात्मनोऽपि नियतम् परिपालनाय कोऽपि कोदण्डपाणिः मम नाथः अस्ति इति न विचिन्तयामि ॥६७॥

महाभयङ्कर हजारो नरक रहें और भयानक चरितवाले यमके नोकर रहें, परन्तु पापात्माओं को भी निश्चित रूप से परिपालन उद्धार करने के लिये कोईविलक्षणशक्तिवाले हाथ में धनुष लिये मेरे स्वामी सर्वेश्वर श्रीराम जी रक्षा के लिये नियत है अर्थात् सर्वदा तैयार है अतः कोई चिन्ता नहीं करता हूँ ॥६७॥

लीलोपात्तवलिप्रसूनमुकुलाः स्निग्धेन सौमित्रिणा

वैदेहीकरपल्लवात्तकलशीधाराम्बुसंवर्धिताः ।
दृष्टा वत्सलया दृशा रघुपतेः पुत्रा इव प्रत्यहं
प्राय: पञ्चवटीकुटीरतरवः प्रीणन्ति मे मानसम् ॥६८॥

अन्वय : लीलोपात्तबलिप्रसूनमुकुला: वैदेहीकरपल्लवाऽऽत्त कलशीधाराऽम्बुसंवर्धिता: स्निग्धेन सौमित्रिणा रघुपतेः वत्सलया दृशा प्राय: प्रत्यहम् पुत्रा इव दृष्टाः पञ्चवटीकुटीरतरवः मे मानसम् प्रीणन्ति ॥६८॥

पूजा के लिये फूलों की कलियों का अनायास ग्रहण करने वाली श्री सीताजी के हाथरूप पल्लवसे गृहीत घडे को जल धारा के जल से सींच कर बढाये हुये स्नेही श्री लक्ष्मण जी के साथ श्री राम जी की वत्सल दृष्टि से प्रतिदिन पुत्रवत् देखे गये पञ्चवटी की छोटी कुटीर के परितः स्थित वृक्ष मेरे मन को प्रसन्न कर रहे हैं ॥६८॥

सौवर्णीमवसक्थिकामधिवसन् पार्श्वस्थपृथ्वीसुता
हस्ताम्भोजयुगक्रमप्रसृतया जातिस्रजा दीर्घया ।
पाणिभ्यामधिवेष्टयन् कचभरं मौल्येकपार्श्वोचितं
देवो मे हृदि भाति दत्तनयनो दृश्ये तदेकस्तने ॥६९॥

अन्वयः–सौवर्णीम् अवसक्थिकाम् अधिवसन् पार्श्वस्थ पृथ्वी सुताहस्ताम्भोजयुगक्रमप्रसृतया दीर्घया जाति स्रजा मौल्येक पार्श्वोचितं कचभरम् पाणिभ्याम् अधिवेष्टयन् दृश्ये तदेकस्तने दत्त नयनः देवः मे हृदि भाति ॥ ६९॥

सोनेसे बनाए बिस्तरेके उपर बैठे श्रीसीताजी के पास में स्थित श्रीजानकी के दानो कर कमलों से पकड़ी हुई लम्बी मालती फूलों की माला से मस्तक के एक भाग मे बधी केश पाश को दोनो हाथो से ढंकते हुए दर्शनीय श्री सीताजी के एक स्तन पर नजर डाले श्रीरामजी मेरे हृदयमें विराजते हैं ।६९॥

चापसंहितशरं चरमाङ्गे

बद्धतूणमुपनीवि कृपाणम् ।

वञ्चनामृगवधाय वनान्ते

सञ्चरन्तमिनमन्तरुपासे ॥७०॥

अन्वयः चापसंहितशरम् चरमाङ्गे उपनीविबद्धतूणम् कृपाणम् वनान्ते वञ्चनामृगवधाय संचरन्तम् इनम् अन्तः उपासे ॥ ७० ॥

धनुष में स्थापित बाण वाले अन्तिम अङ्ग में कन्धे में बाण की थैली तरकस बांधे कमर के समीप में कृपाण यानी तलवार वाले वनके अभ्यन्तर प्रदेश में मायामृग के यानी मारीच के मारणार्थ विचरते हुए स्वामी श्री रामजी को मैं अन्तःकरण में उपासना करता हुं ॥७०॥

कौणपाधिपकदर्थितामरी-

कांक्षितप्रणयिबाणकार्मुकम् ।

कञ्चन श्रुतिकरण्डमौक्तिकं

काळिमानमवलोकयामहे ॥७१॥

अन्वयः कौणपाधिरकदर्थितामरी काङ्क्षितप्रणयिबाणकार्मुकम् श्रुतिकरण्डमौक्तिकम् कञ्चन कालिमानम् अवलोकयामहे ॥७१॥

राक्षसों के अधिपति से सताई हुई देवियों से अभिलषित स्नेह शाली शर धनुष वाले श्रुति रूप डब्बे की मोती कोई कालापन को अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी के चमकीले श्यामस्वरूप को सर्वदा हम देखा करते है ॥ ७१ ॥

जानकीस्तनतटान्तपालिका-
जातकुंकुमविभागपिञ्जरः ।
दृश्यते हृदि दयाधुरन्धरः
कोऽपि कोसलकुलीनकुञ्जरः ॥७२॥

अन्वय :- श्रीजानकी स्तनतटान्तपालिका जातकुङ्कुमविभागपिञ्जरः दयाधुरन्धरः कोऽपि कोसलकुलीनकुञ्जरः हृदि दृश्यते ॥७२॥

श्री जानकी जी के स्तनमण्डल में किये हुए कुङ्कुमके विभागसे पिञ्जर यानी पीतरक्त दया में प्रवीण कोई कोसल राज के कुल में उत्पनो में कुञ्जर हाथी अर्थात् श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी मेरे या उपासको के हृदय में दिखाई पड़ते हैं ॥ ७२ ॥

मामके हृदि महीकुमारिका-
कामकेलिकुतुकी नृपात्मजः ।

आतनोति पदमस्त्रबन्धुरो
नूतनोदयपयोदसुन्दरः ॥७३॥

अन्वय- मही कुमारिका कामकेलि कुतुकी नृपात्मजः अस्त्रबन्धुर नूतनोदयपयोदसुन्दरः मामके हृदि पदम् आतनोति ॥७३॥

श्री सीताजी के साथ कामदेव की क्रीड़ा में कुतुहल वाले दशरथ नरेश के पुत्र अस्त्र से शोभायमान नवीन उदित मेघ के समान श्यामवर्ण होने से अति सुन्दर मेरे हृदय में स्थान कर रहे हैं। अर्थात् विराजमान हो रहे हैं ॥७३॥

चन्द्रशेखरशरासनच्छिदा-
चातुरीचणकरारविन्दया ।
स्वीकृतं मम सुरानुकूलया
लीलया हृदयमभ्रनीलया ।७४॥

अन्वय–चन्द्रशेखरशरासनच्छिदा चातुरीचणकरारविन्दया सुरानुकूलया अभ्रनीलया लीलया मम हृदयम् स्वीकृतम् ॥७४॥

शिवजी के चाप के तोडन में पटुता से विख्यात करकमल वाली देवों की अनुकूल मेघ के समान श्यामवर्णवाली लीला ने मेरा हृदय अपनाया अर्थात् श्रीरामजी ने मेरा हृदय निवास के लिये पसन्द किया अतः वे मेरे हृदय में विराजमान हैं ।७४॥

कौणपालिकदलीविषाणिना
बाणचापपरिकर्मपाणिना ।

सर्वेश्वराभ्यां श्रीसीतारामाभ्यांनमः ।

आनन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।

जगद्गुरुश्रीटीलाचार्याय नमः । जगद्गुरुश्रीमङ्गलाचार्याय नमः ।

पण्डितसम्राट्श्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठाचार्यनिर्मिते

लघूपासनाङ्गचतुष्टयसङ्ग्रहे

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यलघूपासनाङ्ग-चतुष्टयम् ।

प्रस्थानत्रितयानन्दभाष्यकारं जगद्गुरुम् ।

श्रीयतिराजराजं श्रीरामानन्दं नमाम्यहम् ॥१॥

प्रकाशकः—पण्डितसम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य

त्रणदेरी श्रीराममन्दिर—शारंगपुर दर्वाजाबाहर

अहमदाबाद—२

प्रति	श्रीरामानन्दसप्तमशताब्दी	मूल्य
५००	सन् १९८३ ईसवी	७५ पैसे

पण्डितसम्राट् श्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता

श्रीसुशीलाकुमारपञ्चश्लोकी ।

नमस्ते नमस्तेऽज्ञताध्वंसकर्त्रे
नमस्ते नमस्ते प्रभो ! भाष्यकार ।
नमस्ते नमस्ते महानुग्रहाब्धे !
नमस्ते नमस्ते सुशीलाकुमार ॥१॥

नमस्ते नमस्ते श्रुतेस्तत्त्ववेत्रे
नमस्ते नमस्ते महादिग्विजेत्रे ।
नमस्ते नमस्ते महाभक्तिदात्रे
नमस्ते नमस्ते सुशीलाकुमार ॥२॥

नमस्ते नमस्ते यतीन्द्र ! त्रिदण्डिन् !
नमस्ते नमस्ते च रामावतार ! ।
नमस्ते नमस्ते श्रुतेर्धर्मरक्षिन् !
नमस्ते नमस्ते सुशीलाकुमार ! ॥३॥

नमस्ते नमस्ते महासिद्धिसिन्धो !
नमस्ते नमस्ते महादीनबन्धो ! ।
नमस्ते नमस्ते परब्रह्मवेत्रे
नमस्ते नमस्ते सुशीलाकुमार ! ॥४॥

नमस्ते नमस्ते महापूज्य ! विद्वन् !
नमस्ते नमस्ते परिव्राजकेन्द्र ! ।
नमस्ते नमस्ते महाचार्यसम्राड्
नमस्ते नमस्ते सुशीलाकुमार ! ॥५॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता ।
भवतात् पठनाच्चेयं पञ्चश्लोकी सुखप्रदा ॥६॥

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य प्रातःस्तवः ।

वन्दितं यद्धि लोकानां सर्वदुःखविनाशकम् ।
रामानन्दपदाब्जं तत् प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥१॥
छायां यस्य समाश्रित्य तापत्रयं विनश्यति ।
रामानन्दकराब्जं तत् प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥२॥
यस्मिन् स्थिता दया दिव्या धार्मिकाणां सुरक्षिका ।
रामानन्दहृदब्जं तत् प्रातःकाले स्मराम्यमहम् ॥३॥
भवेत् विकसितं यद्धि भक्तैश्वर्यविवस्वतः ।
रामानन्दमुखाब्जं तत् प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥४॥
मानवो येन दृष्टश्च रोगं शोकं च मुञ्चति ।
रामानन्दसुनेत्राब्जं प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥५॥
पुण्यसद्मात्मजो यश्च श्रीसुशीलासुतश्च यः ।
रामानन्दं तमाचार्यं प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥६॥
श्रीमद्वेदान्तपीठेश रामदासेन निर्मितम् ।
स्तवोऽयं पठितो भूयाद् भक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥७॥

इष्टाचार्यस्तोत्रम्

दिव्यदेहगुणास्त्राय साञ्जनेयाय शेषिणे ।
सानुजाय सशेषाय रामाय ब्रह्मणे नमः ।१॥
ब्रह्मसूत्रविधातारं महर्षिं ज्ञानवारिधिम् ।
पाराशर्यमहं वन्दे वेदव्यासं जगद्गुरुम् ॥२॥

पुरुषोत्तमनामानं महर्षिं राममन्त्रदम् ।
श्रीमद्बोधायनं वन्दे वृत्तिकारं जगद्गुरुम् ॥३॥
आनन्दभाष्यकर्त्तारमानन्दपथदर्शकम् ।
आनन्दनिलयं वन्दे रामानन्दं जगद्गुरुम् ॥४॥
विशिष्टाद्वैततत्त्वज्ञं वैष्णवधर्मरक्षकम् ।
रामानन्दानुगं वन्दे द्वाराचार्यं जगद्गुरुम् ॥५॥
रामसीतासमारब्धां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
निजाचार्यान्तिमां वन्दे निजाचार्यपरम्पराम् ॥६॥
ज्ञानदं पूज्यवर्यं च वन्द्यवर्यं तथैव च ।
राममन्त्रप्रदं श्रीमद्गुरुदेवं नमाम्यहम् ॥७॥

जगदगुरुश्रीरामानन्दाचार्यमङ्गलम् ।

श्रीपद्मजावतारस्यानन्तानन्दस्य यो गुरुः ।
तस्मै जगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥१॥
यः श्रीसुरसुरानन्दनारदस्य च सद्गुरु : ।
तस्मै जगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥२॥
श्रीजनकावतारश्रीभावानन्दगुरुश्च यः ।
तस्मै जगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥३॥
श्रीशङ्करावतारश्रीसुखानन्दगुरुश्च यः ।
तस्मै जगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥४॥
मनुदेवावतारश्रीपीपाचार्यगुरुश्च यः ।
तस्मै जगद्गुरुश्रीमद्रामनन्दाय मङ्गलम् ॥५॥

श्रीकपिलावतारश्रीयोगानन्दगुरुश्च यः ।
तस्मै जगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥६॥
यः श्रीसनतकुमारश्रीनृहर्यानन्दसद्गुरुः ।
तस्मै जगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥७॥
यः श्रीशुकावतारश्रीगालवानन्दसद्गुरुः ।
तस्मै जगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥८॥
श्रीप्रह्लादावतारश्रीकबीरस्य च सद्गुरुः ।
तस्मै जगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥९॥
यो बलेरवतार श्री धनादास्य सद्गुरुः ।
तस्मै जगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥१०॥
धर्मराजावतारश्रीरविदासस्य सद्गुरुः ।
तस्मै जगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥११॥
यश्च भीष्मावतारश्रीसेनादासस्य सद्गुरुः ।
तस्मै जगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दाय मङ्गलम् ॥१२॥
श्रीवेदान्तपीठेशरामपद्मतिनिर्मितम् ।
मङ्गलं भवतादेतत् पाठकानां सुखप्रदम् ॥१३॥

श्रीआनन्दभाष्यप्रशस्तिः ।

रामब्रह्मनिवेदकं भगवतो रामस्य सद्भक्तिदं
संसारार्णवतारकं सुमतिदं सत्तर्ककल्पद्रुमम् ।
सन्मार्गप्रतिपादकं तनुभृतामन्तस्तमोनाशकं
रामानन्दकृतं सदा विजयतामानन्दभाष्यत्रयम् ॥१॥

गीताकारमताविलम्बनपरं वेदान्ततत्त्वप्रदं
श्रीबोधायनवृत्तिकारपथगं श्रीब्रह्मसूत्रानुगम् ।
तत्तद्वादिकुतर्कचक्ररचनावाक्याद्रिवज्रं दृढं
रामानन्दकृतं सदा विजयतामानन्द भाष्यत्रयम् ॥२॥
सद्ब्रह्मप्रतिबोधदृष्टिसुखदं सिद्धान्तसिद्धाञ्जनं
निर्दोषं गुणसागरं रघुपतेः पादप्रपत्तिप्रदम् ।
लोकानां निजबोधिनां यमभयप्रध्वंसकं धर्मपं
रामनन्दकृतं सदा विजयतामानन्दभाष्यत्रयम् ॥३॥
भेदाभेदवचःसमन्वयकरं वेदेतिहासादिके
सायुज्यस्य च दायकं किल विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तदम् ।
सद्विद्यादिसुबोधकं कुमतिहन्मोक्षाध्वनो ज्ञापकं
रामानन्दकृतं सदा विजयतामानन्दभाष्यत्रयम् ॥४॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता ।
भूयात् प्रशस्तिरेषा हि सन्मतेश्च प्रदायिनी ॥५॥

—०—

श्रीगीतानन्दभाष्ये श्रीरामानन्दाचार्यपरम्परा ।
श्रीराम जनकात्मजामनिलजं वेधोवशिष्ठावृषी
योगीशं च पराशरं श्रुतिविदं व्यासं जिताक्षं शुकम् ।
श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गधराद्यान् यतीन्
श्रीमद्राघवदेशिकं च वरदं स्वाचार्यवर्यं श्रये ॥१॥

पण्डितसम्राट्स्वामिश्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठाचार्यप्रणीता

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपूजापद्धतिः ।

आनन्दभाष्यकर्त्तारमानन्दपथदर्शकम् ।
आनन्दनिलयं वन्दे रामानन्दं जगद्गुरुम् ॥ध्यानम् ।
दिव्यदेहगुणाब्धे ! श्रीरामानन्द ! यतीश्वर ! ।
इहागच्छ महाचार्य ! करिष्याम्यर्चनं तव ॥१॥ आवाहनम् ।
वादिवारणशार्दूल ! रामानन्द ! जगद्गुरो ! ।
दिव्यासने मया दत्ते स्थितो भव मुनीश्वर ! ॥२॥ आसनम् ।
सिद्धैर्देवैर्नृपालैश्चार्चितस्त्वं भक्तवत्सल ! ।
इदं पाद्यं मयादत्तं गृहाण यतिभूपते ! ॥३॥ पाद्यम् ।
दिव्यौषधिरसोपेतं दिव्यगन्धेन संयुतम् ।
मया दत्तं गृहाणार्घ्यं श्रितानन्दविधायक ! ॥४॥ अर्घ्यम् ।
वासितं हि सुगन्धेन पूतोदकं च निर्मलम् ।
गृहाणाचमनं स्वामिन् तापत्रयविनाशक ! ॥५॥ आचमनम् ।
ज्ञानाम्बुधे नमस्तुभ्यं यतीन्द्र ! करुणानिधे ! ।
मधुपर्कं मया दत्तं गृहाण त्वं त्रिदण्डधृत् ! ॥६॥ मधुपर्कः ।
आनीतं पुण्यतीर्थानां दिव्यौषधिसमन्वितम् ।
स्नातुं शुद्धं जलं दत्तं स्वीकुरु धर्मरक्षक ! ॥७॥ स्नानम् ।
परिव्राजकभूभृच्चानन्दभाष्यविधायक ! ।
वस्त्रं काषायवर्णं च गृहाण त्वं महाप्रभो ! ॥८॥ वस्त्रम् ।

मन्त्रद्रष्ट्रृक्ववशिष्टर्षिगोत्रोत्पन्न ! द्विजोत्तम ! ।
उपवीतं गृहाणेदं ब्रह्मविद्यानिधे ! प्रभो ॥९॥ उपवीतम् ।
सुशीलानन्दन ! श्रीमल्लोकानां तापनाशक ! ।
मलयाचलसम्भूतं गृहाण चन्दनं शुभम् ॥१०॥ चन्दनम् ।
धर्मशास्त्रोपदेशैश्च धर्माचारविवर्धक ! ।
दिव्यपुष्पैः कृतं हारं स्वीकुरुष्व दयाम्बुधे ! ॥११॥ हारार्पणम् ।
रामब्रह्मावतार ! श्रीरामब्रह्मोपदेशक ! ।
यशस्विन् ! गृह्यतां धूपं दिव्यगन्धं मनोहरम् ॥१२॥ धूपम् ।
घृतवर्त्तिसमायुक्तं दिव्यप्रकाशसंयुतम् ।
प्रदत्तं गृह्यतां दीपं श्रौततत्त्वाब्जभास्कर ! ॥१३॥ दीपम् ।
घृतपक्वं च पूपादि पायसं मधुरं तथा ।
नैवेद्यं गृह्यतां देव ! नानाव्यञ्जनसंयुतम् ॥१४॥ नैवेद्यम् ।
पीयूषसदृशं स्वादु शीतलं हिमवज्जलम् ।
गृहाण करुणासिन्धो ! यशोभिर्दिक्षु विश्रुत ! ॥१५॥ जलम् ।
दिव्यौषधिरसोपेतं दिव्यगन्धयुतं जलम् ।
दिव्यमाचमनं दत्तं गृहाण मुनिसत्तम ! ॥१६॥ आचमनम् ।
छत्रचामरसुस्तोत्रपुराणपठनादिभिः ।
सर्वैराजोपचारैश्च तुष्यतां यतिभूपते ॥१७॥ राजोपचाराः ।
घृताक्तवर्त्तिकर्पूरज्वालासमन्वितं मया ।
कृतं नीराजनं चेदं स्वीकुरु कृपया प्रभो ! ॥१८॥ नीराजनम् ।
सुशीलानन्दन ! स्वामिन् ! पुण्यसद्मसुत ! प्रभो ! ।
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तिन् ! पुष्पाञ्जलिं गृहाण मे ॥१९॥ पुष्पाञ्जलिः

मया कृतानि पापानि ज्ञानादज्ञानतोऽथवा ।
भवन्तु तानि नष्टानि यतिराजप्रदक्षिणात् ॥२०॥ प्रदक्षिणम् ।
रक्षक ! वेदवादस्य दुर्वादध्वान्तभास्कर ! ।
दत्तं च श्रीफलं स्वादु गृहाण भक्तिदायक ! ॥२१॥ श्रीफलम् ।
भक्तिप्रद ! नमस्तुभ्यं नमस्ते मुक्तिद ! प्रभो ! ।
भूयोभूयोनमस्तुभ्यं रामानन्द ! जगद्गुरो ! ॥२२॥ नमस्कार ।
उपलब्धोपचारैस्ते कृतापूजा जगद्गुरो ! ।
सा सर्वा पूर्णतां यातु ह्यपराधं क्षमस्व मे ॥२३॥ क्षमापनम् ।
श्रितानां रक्षक ! स्वामिन् ! महाचार्यशिरोमणे !
सुखदां देहि ते भक्तिं रामानन्द ! जगद्गुरो ॥२४॥ विसर्जनम् ।
रामब्रह्मसमारब्धां रामानन्दार्यमध्यमाम्
निजाचार्यान्तिमां वन्दे निजाचार्यपरम्पराम् ॥३०॥

८– श्रीयतीन्द्रकवचरत्नम्

प्रातः सायं दिवारात्रौ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
रोगे शोके तथा युद्धे यतीन्द्रः पातु सर्वथा ॥१॥
प्राच्यां यतीश्वरः पातु प्रतीच्यां च त्रिदण्डधृत् ।
अवाच्यामथ चोदीच्यां पातु दिग्विजयी महान् ॥२॥
मुनीन्द्रः पातु चैशान्यामाग्नेय्यां देशिकेश्वरः ।
योगीन्द्रः पातु नैऋत्यां वायव्यां दुःखहारकः ॥३॥
अग्रे च दक्षिणे वामे पृष्ठे पातु जगद्गुरुः ।
वादाहवे सदा पातु वादिवारणकेसरी ॥४॥

कीर्त्तिं पातु महाकर्त्तिस्तनुं दिव्यतनुस्तथा ।
धर्माचार्यो हि धर्मं च मतिंपातु महामतिः ॥५॥
दयाब्धिर्दीनबन्धुश्च श्रीरामो भगवान् स्वयम् ।
आनन्दभाष्यकृत् पातु रामानन्दः सदैव माम् ॥६॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
पठनाद् धारणाद् वास्तु कवचं विघ्नघातकम् ॥७॥

पंडितसम्राट् स्वामिश्रीवैष्णवाचार्यकृतं

श्रीरामानन्दमतम्

अद्वैतं हि विशिष्टयोरभिमतं चाकार्यकार्येशयो ।
अद्वैतं तु मतं न जीवपरयोजीवाश्च भिन्ना मिथः ।
सद् विश्वं च परेश्वरो रघुपतिर्भक्त्यैव मुक्तिस्तथा
रामानन्द जगद्गुरोरभिहितं चैतन्मतं वैदिकम् ॥१॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यदर्शितम् ।
रामानन्दमतं भूयात् सर्वकल्याणकरकम् ॥

पण्डितसम्राट् श्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता

ज०गु० श्रीरामानन्दाचार्य नमस्कार माला

रामानन्द ! नमस्तुभ्यं पुण्यसद्मज ते नमः ।
यतीन्द्राय नमस्तुभ्यं नमो वेदान्तबोधक ! ॥१॥
नमो ब्रह्मपदेन्द्रे ते सुशीलात्मज ! ते नमः
नमो रामावताराय नमस्तुभ्यं जगद्गुरो ! ॥२॥

देशिकेन्द्र ! नमस्तुभ्यं नमो धर्माब्जभास्कर ! ।
यतिराज ! नमस्तुभ्यं नमः सद्धर्मरक्षक ! ॥३॥
नमो वादीभसिंहाय नमो वादिभयंकर ! ।
नमोऽस्तु दिग्विजेत्रे ते नमस्ते वादिसंस्तुत ! ॥४॥
भाष्यकार ! नमस्तेऽस्तु नमस्ते भाष्यपाठक ॥५॥
सदाचारिन् ! नमस्तेऽस्तु सदाचारविदे नमः ।
सुधीन्द्राय नमस्तेऽस्तु मुनीन्द्राय नमोऽस्तु ते ॥६॥
महाचार्य ! नमस्तुभ्यं महाज्ञानाम्बुधये नमः ।
नमोऽवगुणशून्याय सद्गुणाम्बुधये नमः ॥७॥
महासिद्ध ! नमस्तुभ्यं नमः सिद्धेन्द्रपूजित ! ।
नमः सिद्धिनिधानाय नमः सिद्धिप्रदाय ते ॥८॥
नमः शिक्षाम्बुधे ! तुभ्यं शिक्षाप्रद ! नमोऽस्तु ते ।
नमो मङ्गलकर्त्रे ते मङ्गलाम्बुधये नमः ॥९॥
ज्ञाननिधे ! नमस्तुभ्यं ज्ञानप्रद ! नमोऽस्तु ते ।
नमः साधितसिद्धान्त ! नमः सिद्धान्तरक्षक ! ॥१०॥
भुक्तिप्रद ! नमस्तुभ्यं शक्तिप्रद ! नमोऽस्तुते ।
भक्तिप्रद ! नमस्तुभ्यं मुक्तिप्रद ! नमोऽस्तु ते ॥११॥
कर्मच्छिदे नमस्तुभ्यं नमः संशयनाशिने ।
तत्त्ववेत्रे नमस्तुभ्यं नमस्तत्त्वप्रबोधक ! ॥१२॥
नमो ब्रह्मविदे तुभ्यं ब्रह्मबोधक ! ते नमः ।
नमस्ते वेदमर्मज्ञ ! नमो वेदान्तवेदिने ॥१३॥

नमो रहस्यवेत्रे ते रहस्यप्रद ! ते नमः ।
नमस्ते भक्तितत्त्वज्ञ ! भक्तितत्त्वनिधे ! नमः ॥१४॥
नमस्तारकदात्रे ते लब्धतारक ! ते नमः ।
नमो रामप्रपत्तिज्ञ ! नमो रामप्रपन्न ! ते ॥१५॥
ज्ञानसिन्धो ! नमस्तुभ्यं भक्तिसिन्धो ! नमोऽस्तु ते ।
दीनबन्धो ! नमस्तुभ्यं भक्तबन्धो ! नमोऽस्तु ते ॥१६॥
नमस्ते गुरुतत्त्वज्ञ ! गुरुनिष्ठाय ते नमः ।
नमो गुरुकृपापात्र ! नमस्ते गुरुसेविने ॥१७॥
नमो रामानुरक्ताय रामभक्ताय ते नमः ।
नमः पूजितरामाय स्तुतरामाय ते नमः ॥१८॥
नमः कीर्तितरामाय श्रितरामाय ते नमः ।
नमो वन्दितरामाय रामासक्त ! नमोऽस्तु ते ॥१९॥
नमो वैष्णववर्याय वैष्णवाचार्य ! ते नमः ।
नमो वैष्णवतत्त्वज्ञ ! वैष्णवतोषिणे नमः ॥२०॥
नमस्ते श्रवणीयाय कीर्तनीयाय ते नमः ।
नमस्ते स्मरणीयाय सेव्यपादाय ते नमः ॥२१॥
नमस्ते चार्चनीयाय वन्दनीयाय ते नमः ।
नमस्ते सर्वमित्राय सर्वेषां स्वामिने नमः ॥२२॥
नमस्तेऽस्तु शरण्याय भजनीय ! नमोऽस्तु ते ।
भक्तिकृते नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽनन्तशक्तये ॥२३॥
दुःखहर्त्रे नमस्तुभ्यं सुखकर्त्रे नमोऽस्तु ते ।
नमो भक्तारिहन्त्रे ते नमस्ते भक्तरक्षक ! ॥२४॥

नमः सज्जनबन्धो ! ते नमः सज्जनरक्षक ! ।
नमो रक्षितधर्माय नाशिताधर्म ते नमः ॥२५॥
नमस्ते वेदरक्षित्रे नमस्ते वेदबोधक ! ।
नमस्ते दिव्यदेहाय दिव्यरूप ! नमोऽस्तु ते ॥२६॥
नमश्चाचार्य सम्राजे नमस्ते सर्ववेदिने ।
नमो धर्मस्वरूपाय रामरूप ! नमोऽस्तु ते ॥२७॥
वैष्णवभाष्यकार श्रीवैष्णवाचार्य निर्मिता ।
रामानन्द नमस्कारमाला स्तान्मङ्गलप्रदा ॥२८॥

श्री रामानन्द पञ्चाशिका ।

सुशीलानन्दनः श्रीमद्रामानन्दा जगद्गुरुः ।
पुण्यसद्मात्मजः श्रीमद् ,, ॥१॥
राघवानन्दशिष्यः श्री ,, ,, ।
सद्धर्मरक्षकः श्रीमद् ,, ,, ॥२॥
जगतः सत्यतावादी ,, ,, ।
जीवेशभिन्नतावादी ,, ,, ॥३॥
श्रीरामब्रह्मतावादी ,, ,, ।
भक्त्यैव मुक्तितावादी ,, ,, ॥४॥
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्ती ,, ,, ।
प्रसिद्धदिग्विजेता श्री ,, ,, ॥५॥
आनन्दभाष्यकर्ता ,, ,, ,, ।
राममन्त्रप्रदः श्रीमद् ,, ,, ॥६॥

पञ्चसंकारकर्ता श्री ,, ,, ।
रक्षको वैष्णवानां च ,, ,, ॥७॥
त्रिदण्डी च महाचार्यो ,, ,, ।
श्रीरामो मोक्षदाचार्यो ,, ,, ॥८॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्य निर्मिता ।
भूयात् पञ्चाशिका चेयं पाठात् सर्वसुखप्रदा ॥९॥

श्रीरामानन्दपादुकाष्टकम्

पूजनात् क्षीयते यस्या जनानां कर्मबन्धनम् ।
तां सुमुक्तिप्रदां वन्दे रामानन्दार्यपादुकाम् ॥१॥
वन्दनाद् दर्शनाद् यस्या पापी निष्पापतामियात् ।
तां हि पापहरीं वन्दे रामानन्दार्यपादुकाम् ॥२॥
लभन्ते ब्रह्मविद्यां च जना यस्या उपासनात् ।
तां सुविद्याप्रदां वन्दे रामानन्दार्यपादुकाम् ॥३॥
तरणिं प्राप्य लोका यां तरन्ति भववारिधिम् ।
तां भवतारिणीं वन्दे रामानन्दार्यपादुकाम् ॥४॥
यद्भक्त्या जायते लोके भक्तिः श्रीरामपादयोः ।
तां सुभक्तिप्रदां वन्दे रामानन्दार्यपादुकाम् ॥५॥
निराधारोऽपि चाधारं लब्ध्वा यां निर्भयो भवेत् ।
तां निर्भयकरीं वन्दे रामानन्दार्यपादुकाम् ॥६॥
या लोकमङ्गलं धत्ते पञ्चगङ्गातटे स्थिता ।
तां च मङ्गलदां वन्दे रामानन्दार्यपादुकाम् ॥७॥

सकलाराध्यतां याति यां समाराध्य मानवः ।
तमाराध्यतमां वन्दे रामानन्दार्यपादुकाम् ।८॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
पादुकाष्टकमेतद्धि सर्वकल्याणकारकम् ।९॥

श्रीयतीन्द्राष्टाक्षरस्तोत्रम्

पुण्यसद्मसुतः पुण्यः सुशीलानन्दवर्धनः ।
यः श्रीरामावतारः स यतीन्द्रः शरणं मम ॥१॥
यः श्रीमद्राघवानन्दाचार्यशिष्यो जगद्गुरुः ।
रामब्रह्मोपदेष्टा स यतीन्द्रः शरणं मम ॥२॥
वेदान्तशिक्षको यः श्रीवैष्णवधर्मरक्षकः ।
सम्प्रदायाब्धिचन्द्रः स यतीन्द्रः शरणं मम ॥३॥
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तरक्षादक्षः सुदेशिकः ।
बोधायनानुयायी स यतीन्द्रः शरणं मम ॥४॥
वादिवारणशार्दूलः सुधीर्दिग्विजयो महान् ।
आनन्दभाष्यकर्त्ता स यतीन्द्रः शरणं मम ॥५॥
सिद्धैर्देवैर्नृपालैर्यः पण्डितेन्द्रैश्च पूजितः ।
सिद्धयष्टिधिर्दिव्यदेहः स यतीन्द्रः शरणं मम ॥६॥
रामभक्तिप्रदानेन सद्भुक्तिमुक्तिदश्च यः ।
रामानन्दो महाचार्यो यतीन्द्रः शरणं मम ॥७॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
यतीन्द्राष्टाक्षरस्तोत्रं सर्वभीतिविनाशकम् ॥८॥

श्रीसाम्प्रदायिकाचार्याष्टकम्

सदाचाररता ये च ये सदाचारबोधकाः ।
श्रीसाम्प्रदायिकाचार्यान् तान्नमामि जगद्गुरून् ॥१॥
दीक्षया राममन्त्रस्य मोक्षदाः शिक्षया च ये ।
श्रीसाम्प्रदायिकाचार्यान् तान्नमामि जगद्गुरून् ॥२॥
ये च वेदान्ततत्त्वज्ञाः सत्प्रबन्धविधायकाः ।
श्रीसाम्प्रदायिकाचार्यान् तान्नमामि जगद्गुरून् ॥३॥
श्रीमद्रामस्य भक्ता ये गुरुभक्ताश्च वैष्णवाः ।
श्रीसम्प्रदायिकाचार्यान् तान्नमामि जगद्गुरून् ॥४॥
श्रीसम्प्रदायधर्माब्धेवर्धका ये सुधाकराः ।
श्रीसाम्प्रदायिकाचार्यान् तान्नमामि जगद्गुरून् ॥५॥
निरासकाः कुदृष्टीनां भक्तितत्त्वावभासकाः ।
श्रीसम्प्रदायिकाचार्यान् तान् नमामि जगद्गुरून् ॥६॥
ये दिग्विजयकर्त्तारस्तथा वादिभयंङ्कराः ।
श्रीसाम्प्रदायिकाचार्यान् तान्नमामि जगद्गुरून् ॥७॥
आचार्यसार्वभौमा ये सत्कीर्त्या दिक्षु विश्रुताः ।
श्रीसाम्प्रदायिकाचार्यान् तान्नमामि जगद्गुरून् ॥८॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
अष्टकं भवतादेतत् सर्वकल्याणकारकम् ॥९॥

मुद्रक- श्रीरामानन्द प्रिन्टिगप्रेस कांकरियारोड अहमदावाद-२२

मोक्ष का भागी होकर उस निरवधिक असांख्येयकल्याण गुणसागर परमात्मा को प्राप्त होता है। समय थोड़ा है और ज्ञान के बोधक शास्त्र बहुत हैं उनमें भी परस्पर वैमत्य है एक से दूसरे के मत में भेद है। इस कारण समस्त निगमाचार्य श्री हनुमान जी के बताये हुए इस मार्ग पर हम सब कुतर्कों को छोड़कर आरुढ़ हो जाय और अपने वास्तविक सुख का लाभ उठा सकें इसी वास्ते यह अर्थ पंचक नामक छोटा सा ग्रन्थ सब का सार अनन्त सुख प्रद मुक्ति का प्रधान मार्ग प्रकाशित कर सज्जन हरि भक्तों के सामने उपस्थित करता हूँ जो त्रुटि हो सुधार लें और अपना जानकर अनुग्रहीत करैं। इति पं० श्रीरामवल्लभाशरण जी जानकीघाट

रामं स्वादि गुरुं नत्वा परं ब्रह्म सनातनम्। द्विभुजं जानकीनाथं सच्चिदानन्द वग्रहम् ॥१॥ परात्परतरं तत्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम्। ज्ञेयं ध्येयं गतिं गम्यं प्रपन्नानां परां गतिम् ॥२॥ स्व प्राप्यं प्रापकं चैव योगक्षेमकरं तथा। विहरन्तं सीतया सार्द्ध विभूतिद्वयस्वामिनम् ॥३॥ सर्वकारणकर्तारं निदानं प्रकृतेः परम्। अक्षरं परमं ज्योतिः स्वरूपं पुरुषोत्तमम् ॥४॥ नारायणादि रूपत्वात्सर्वावतारिणं हरिम्। चिदचित्सर्वव्याप्यत्वात्सर्वरूपंच निर्मलम् ॥५॥ सीतां चादि गुरुं नत्वा चिन्द्रूपां रामवल्लभाम्। श्रीरामसन्नध्यवसात्सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम् ॥६॥ समस्तनिगमर्यं सीताशिष्यं गरोर्गुरुम्। श्रीसर्वविद्याधिनाथं हि हनुमन्तं प्रणम्य च ॥७॥ ये ७ श्लोक आचार्य श्रीहरिदासजी महाराज के बताये हुये हैं।

Rcgd. N. GAMC 451

ज्ञातव्य— गीता-आनन्दभाष्य का प्रवचन

पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दपीठ श्रीकोसलेन्द्रमठ में चातुर्मासानुष्ठान प्रसंग में पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दपीठाधीश्वर स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य जी का गीता के आनन्दभाष्य पर अत्यन्त रहस्य पूर्ण विवेचनात्मक प्रवचन भक्तियोगाध्यायमें दि० २५ १।८३ से हो रहा है। समय सांय ६ से ७ का है । आचार्य जी का भक्ति रस प्रवाही शैली से प्रवाहित भक्तिरस का सैकड़ों श्रोता जन मन्त्र मुग्ध से एक चित्त होकर पान कर रहे हैं । आनन्द भाष्य प्रवचन में जगद्विजयी महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी दर्शन केशरी कृत गीता अर्थचन्द्रिका का सम्पुट सोने में सुगन्ध का सा योग बन चमत्कृत हो उठता है। यह व्याख्याता आचार्यश्री का विशेष शैली का परिचायक हैं। ऐसा अपूर्व लाभ से आप सब वञ्चित न हों।

मुद्रकः—श्रीरामानन्द प्रिंटिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद–२२
त्रिदण्डि संस्थान श्रीशेषमठ–धर्मप्रचार विभागसे धर्मप्रचार्थ प्रकाशित

प्रेषक-श्री कोसलेन्द्र मठ सरखेज रोड
पो०पालड़ी, अहमदाबाद–३८०००७

ग्राहक नं.

प्रति श्री ....

१७७ रजिस्ट्रार
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार (यु. पी.)

[illegible] आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्री [illegible]

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य - सम प्रपन्नाचार्य

योगीन्द्र प्रवर्तित विश्राम द्वारकास्थ श्री [illegible]मठ संचालित,

ज.गु. श्री रामानन्दाचार्य-पीठ

सचित्र धार्मिक मासिक

संरक्षक— शेठ श्री अमरशी कुरजी मजिठिया 15-9-83

सम्पादक— स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य FREE

सहसम्पादक पं. शरच्चन्द्र शास्त्री

भाद्रेऽसिते निशीथेऽथरोहिण्यामष्टमीतिथौ ।
सिंहमर्केगतेसौम्ये कृष्णोजातोविधूदये ।।
कृष्णजन्माष्टमीसोक्ता तस्यां कृष्णव्रतोत्सवम
कुर्वीतविधिसंयुक्तं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।।
(जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याः)

कार्यालय: श्री कोसलेन्द्र मठ, सरखेज रोड. पालडी.

अहमदाबाद- ३८०००७

वर्ष ५ विक्रमाब्द २०४० अंक ७

गुजराती [illegible] १९८३

श्रीरामानन्दाब्द ६८३

प्रार्थयामि महादीनो दीनोद्धर कृपानिधे ।
एतद्देहावमाने मां सम्प्रापय दयाकर ॥९॥
न मे पापविनिर्मोचे न च त्वत्प्राप्ति साधने ।
शक्तस्तत्र समर्थस्त्वं स्वप्राप्तेः साधनं भव ॥१०॥
यही सभी भाव उक्त वेदमन्त्र में सूत्र रूप से निरूपित है।

—०—

गीता–आनन्दभाष्य १२वाँ अध्याय का-प्रवचन

श्रीरमानन्दाचार्यपीठ–श्रीकोसलेन्द्रमठ में यों तो अन्य समय में भी उपनिषद, रामायण भागवत, गीता आदि विविध विषयो पर प्रवचन का कायोजन प्रायः रहता ही है पर चातुर्मास में नियतरूप से स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्यजी का प्रवचन विशेष आकर्षक होता है। इस वर्ष अनेक तत्वजिज्ञासुओं के आग्रह पर गीता-आनन्दभाष्य १२वाँ अध्याय भक्ति योग पर प्रवचन हो रहा है। यह सर्व विदितही है कि आनन्दभाष्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जो यतिसम्राट् की प्रस्थानान्यतम सर्वोत्कृष्ट कृति है। श्रीवैष्णवरहस्यों को कूट–कूट कर भर दिया गया है गीता के गहन ग्रन्थियों को अतिसरलतया सुलझाया गया है जो अन्यत्र कहीं भी तथा किसी भी व्याख्याकार द्वारा उस ओर ध्याननहीं दियागया है। गीतारहस्य को सही रूप से जानने के लिये यह अतिउत्तमसिद्ध हुआ है। भाषा अतिमधुर प्रसाद गंभीर है।भाष्य का हिन्दी भाषा में पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्य पीठाधीश्वर स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य जी ने विवरणात्मक अनुवादकिया है जो

(शेष भाग टाइटल नं. ३ पर)

पश्चिमाम्नाय श्री रामानन्दार्य पीठ

श्रीविश्रामद्वारका का

ऐतिहासिक मेला सम्पन्न

भारतवर्ष की संस्कृति व परम्परा ही ऐसी है कि एक विचित्र ढंग से अनायास ही सब मानवों को धार्मिक व पारमार्थिक शिक्षा दी जाती है। समय समय के उत्सव मेले व कुम्भ मेले इसके निदर्शन हैं। इसी परम्परा का वाहक भारत के पश्चिम छोर में श्रीविश्रामद्वारका नामक पुण्य तीर्थ है मुक्ति देनेवाली सात पुरीओं में इस का गणना है इतना ही नहीं भगवान् श्री कृष्ण जी ने अपने दर्शन हेतु आये मुनीश्वर श्रीशृङ्गिको

मध्ये मार्गपरिश्रान्तो विश्रामं प्राप्य शृङ्गिणः ।
आश्रमे परमारामे कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥
त्वया संस्थापितां मूर्तिं विश्रामद्वारकापतेः ।
अदृष्ट्वा द्वारका यात्रा नराणां निष्फला भवेत् ॥
यथा व्यासमनालोक्य काशीयात्रा हि निष्फला ।
तथैव द्वारका यात्रा ऋतेऽत्रागमनाद् भवेत ॥

ऐसा वरदानात्मक आशीर्वाद देकर जैसे व्यासेश्वर के दर्शन बिना काशी यात्रा निष्फल होती है वैसे ही श्रीविश्राम-द्वारकाधीश जी के दर्शन बिना द्वारका यात्रा निष्फल हो जाती है ऐसा उद्घोष किया है। लग भग आज से पांच

हजार वर्ष पूर्व की यह घटना है । श्रृङ्गि ऋषि तथा भगवान् श्रीकृष्ण के संगम में जो भीड़ लगी थी तथा उस से सामान्य लोगों ने जो शिक्षा पाई थी उस स्मृति में आज भी श्रीविश्रामद्वारका (श्री रामानन्दाचार्य पीठ) श्रीशेषमठ में जन्माष्टमी के पुण्यपर्व में दो दिन का मेला लगता है। हजारों की संख्या में दूर-दूर के चारों तरफ के गावों से शहरों से मनुष्य आते हैं भगवद्दर्शन तथा आचार्य पीठ के आचार्य से सत् शिक्षा प्राप्त कर कृत-कृत्यता का अनुभव कर वापस जाते है। विगत वर्षों के अपेक्षा इस वर्ष में विशेष जमावट था इस का मुख्य कारण विगत १९८० माघ मास में प्रतिष्ठित सर्वेश्वर श्रीसीताराम जी भगवान् श्री राधेश्याम जी तथा आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरानन्दाचार्यजी हैं। इन नव प्रतिष्ठित भगवद् श्री विग्रहोंने तीर्थ के वैभव में चार चांद लगा दिये वर्तमान में आम दिनों मे भी अनेकों दर्शनार्थि आते रहते है तो पर्व में विशेष होना स्वाभाविक ही है। आतीशवाज व कलाकारों का जमाघट प्रसंशनीय था। श्रीगोपाल सत्संग मण्डल का भजन कीर्तन व अन्य सामाजिक कार्य क्रम प्रसंशा पात्र था। राज्यसरकार द्वारा सुरक्षा की व्यवस्था सुन्दर थी अतः कोई अप्रिय घटना नहीं घटी सानन्द मेला सम्पन्न हुआ ।

आचार्यपीठ में जन्माष्टमी उत्सव

प्रधान आचार्यपीठ आनन्द भाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ वाराणसी में विशेष आयोजन के साथ जन्माष्टमी

उत्सव मनाया गया। इस वर्ष श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के प्रधान आचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र के तत्त्वावधान में उत्सव सम्पन्न होने से जनता में विशेष उत्साह था। भाविक दर्शनार्थियों की उपस्थिति पर्याप्त थी।

श्रीजानकीमठ में श्रीकृष्णोत्सव

पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्यपीठ विश्रामद्वारका श्रीशेषमठ की शाखा पोरबन्दर शहर में हैं। वहाँ प्रायः सभी उत्सव-समैये का आयोजन बडे रोचक रूप से होता हैं। उनमें श्रीरामनवमी तथा श्रीकृष्णाष्टमी के उत्सव मुख्यत्वेन आयोजित होते हैं। वहाँ की भावक जनता बडे मनोयोग से भाग लेती है। इस वर्ष भी श्रीकृष्णाष्टमी का उत्सव बडे समाररोह के साथ आयोजित था, भगवद्दर्शकों की भीड़ जमी थी, सानन्द उत्सव सम्पन्न हुआ।

श्रीरामानन्दाचार्यपीठों में

दोलोत्सव

भारतीय उपासना पद्धति का एक अंग है झूलनोत्सव प्रायः सभी मन्दिरों में यह उत्सव मनाया जाता है। तथापि वृन्दावन अयोध्या जनकपुर आदि का यह पर्व विशेष महत्व रखता है। ऐसे तो प्रत्येक वर्ग के लोग इस वर्ष को बडे मनो योग से मनाते हैं तथापि वैष्णव वर्ग इस उत्सव में विशेष व्यापृत रहता है। उस में भी गुजरात प्रान्त

पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्य पीठ विश्राम द्वारिका

इस पर्व का विशिष्ट आकर्षक केन्द्र रहा रहता है। जहाँ गोपाललाल जी (श्री विश्राम द्वारिकाधीश) को झूलाने के लिये रजत का अति विशाल चित्ताकर्षक झूला जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्य जी वेदान्त केशरी ने बनवाया है। झूला की कारीगरी देखते ही बनता है, इस प्रान्त में तो ऐसा खूबसूरत झूला कहीं देखा नहीं जाता अन्य प्रान्तों में भी दुर्लभ ही होगा। आचार्य पीठ में भगवान् श्रावण शुक्ल द्वितीया को दोलासीन हो जाते हैं। विविध प्रकार का प्रतिदिन का भिन्न-भिन्न शृङ्गार दर्शक मनमोहक होता है। दूर-दूर से दर्शनार्थी का तांता लगा रहता है। एक अच्छा मेला सा लग जाता है। तीर्थस्थल के भजन-कीर्तन मण्डली वालों का कीर्तनादि कार्य क्रम जन मन रंजक होता है। सभी वर्ग के लोग सानन्द भाग लेते हैं।

श्रीरामानन्दाचार्य पीठ श्रीकोसलेन्द्रमठ—की झूलनोत्सव प्रणाली एक अपने ही ढंग की है। यहाँ के श्रीरामललाजी वात्सल्य प्रधान से लमते हैं, क्योंकि वात्सल्य भाव प्रधान श्री कोसलेन्द्र सत्संग मण्डल की माताएँ बढे मनोयोग से प्रतिदिन भिन्न-भिन्न शृङ्गार फूल व फलों से करती हैं प्रतिदिन की झाँकी एक भिन्न लोग की झाँकी सी ही बन जाती है। हजारों दर्शकों की भीड़ जमती है। दर्शकों का मन एक विचित्रानन्द का ही अनुभव करने लग जाता है सहसा मुह से वाणी निकल पड़ती है ऐसी झांखी तो अन्यत्र नहीं देखी ?

वात्सल्यरस प्रोता माताएँ अनेक प्रकार की गाना गाते हुए सर्वेश्वर श्रीरामलला जी को झूलाती हैं तो अनायास वह प्रसंग याद आ जाता है जो वत्सला माता श्रीकौशल्याजी अपने हृदय के लाल श्रीरामलला जी को झूलाती थीं। जिसका सजीव चित्र श्रीसम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु श्रीगंगाधराचार्य जी ने निम्न प्रकार से खींचा है, बड़ा ही मार्मिक तथा रहस्यमय वर्णन है। आप भी उस रहस्य का रसास्वाद लें एतदर्थ पूरा अष्टक ही पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्य पीठाधीश्वर स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य जी के भावार्थ के साथ उधृत है। तो आस्वाद्यतां तावत्--

श्रीरामदोलिकाशयनाऽष्टकम्

माता गीत्वा स्वपुत्रं यदि शयनगतं संविधत्तेऽथ शेषिन्!
शेषत्वात्सात्म्यतत्वं गतवत इह मे कोशलाधीशजायाः।
वात्सल्यातुल्यपात्रं स्वर्पिह गुणगणोदारगीतेन गीतो
देहे सौधेऽतिशुद्धे भजनकलनतः स्वान्तदोलाऽधिशायी।१॥

भावार्थ —पालने में बालक माता का गीत सुनते सुनते सो जाते हैं अथवा गीत गाकर माता बच्चे को सुलाती है ऐसा अनुभव है। इसलिये समस्त जगत का प्रयोजन होने के कारण हे शेषिन्! मैं तथा श्रीकौशल्याजी दोनों का एक मात्र आपके अधीन होनेसे शेष रूप से अभेद होने के कारण मेरे तथा श्रीकौशल्या जी के अनुपम दुलारे श्रीरामजी! भजन के कारण अत्यन्त निर्मल सुधा धवल प्रासाद रूपी मेरे देह में मेरे मन रूपी दोला पर लेटे

हुये तथा गुण गण कीर्तन के गीत सुनते सुनते सो जाये-मेरे मन में स्थिर रूप से वास करें । १॥

कौशल्या कीर्तिधन्या यदुदरजनिमागाज्जगद्यत्तनुः स
श्रीरामो रावणास्याऽप्युपनवशिरसां कर्तितेषुणा द्राक् ।
जामाताऽन्वथनाम्नो नृपतिकुलमणेर्यो विदेहस्य कुर्यात्
स्वापं दोलां श्रितो हृन्मम-दशरथसूर्भक्ति गङ्गाम्बुधौतम् ॥

भावार्थ-वह कौशल्या अपनी कीर्ति से धन्यवाद का पात्र हैं, क्योंकि स्थूल सूक्ष्मचिदाचिदात्मक यह संसार जिसकी शरीर है ऐसे श्रीरामजी ने जिसके उदर से अवतार-जन्म प्राप्त किया था। इससे बड़ी कीर्ति और क्या हो सकती है? वह श्रीरामजी जिन्होंने एक ही बाण से-अत्यन्त लघुता से रावण के दश मस्तकों को काट दिया था तथा विदेह कहे जाने वाले राजाओं के कुल श्रेष्ठ ऐसे विदेह के जो जामाता हैं। ऐसे श्रीराम जी श्रीदशरथ के पुत्र मेरे भक्ति रूपी गंगा जल से पवित्र ऐसे हृदय रूपी दोला पर रहने वाले निद्रा को प्राप्त करें अर्थात् भक्ति से भरे हुए मेरे मन में सदावास करें । २॥

नीलाभो नीलापद्मोद्भवकृतजगतो नाथ ! सीताधिनाथः
सद्भिर्भोग्योऽपि भोग्यं ननु निखिलमिदं यस्य लीलाधृताङ्गः
धन्वोन्मुक्तेषुणाऽब्जच्छदमिव सितवान् स्तात्कोरः परेशो
भक्तिक्षीराब्धिशेषं सदपि मम मनो दोलिकां सोऽधिशेताम्

भावार्थ-अपने नाभिकमल से उत्पन्न हुए ब्रह्मा जी के द्वारा उत्पन्न किये गये जगत के स्वामी हे श्रीरामजी नीलकान्ति वाले

तथा श्र सीताजी के प्राणेश्वर आप सज्जनों के सेवनिय हैं पुनश्च यह संपूर्ण संसार आपकी लीला का विषय होने से आपका भोग्य है। आपने ताटका की छाती को धनुष से छोडे गये वाण से कमल के पत्ते के सदृश सरलता से ही काटा था। आप ही परमेश्वर हैं, इस प्रकार जगत के कर्त्ता तथा पालक एवं दुष्ट का निग्रह करने वाले आप भक्ति रूपी क्षीर सागर में शेषनागरूपी मेरे मन की दोला पर शीघ्र हा सो जाँय ऐसी मेरी प्रार्थना है—आप शेष शय्या के समान हा मेरे मन में सदा निवास करें ।३॥

राज्यं दत्त्वाऽनुजायाऽतिविपुलविलसच्छ्रीसमिद्धं निरीहो
वक्षस्वीवीरलक्ष्मी वसतिरनुपमोदारकीर्तिर्निर्गतिः ।
अव्राजीलक्ष्मणेनाऽतिगहनविपिनं भक्तिभाजाऽनुजेना-
ऽऽशेतां दोलां वरेण्यो मम हृदयकृतां सज्जनानां शरण्यः ॥

भावार्थ—विशाल छाती वाले तथा वीर के सभी गुणों से युक्त श्री रामजी निष्काम होने के कारण विशाल एवं समृद्ध राज्य अपने छोटे भाई श्री भरतजी को देकर अतुल्य एवं महान् किर्ति से शोभित तथा किसी प्रकार की पीडा को मन में नहीं रखते हुये छोटे भाई तथा परम भक्त ऐसे श्रीलक्ष्मणजी के साथ अत्यन्त भयंकर वन में गये वे सज्जनों के रक्षक पुरुषोत्तम श्रीरामजी मेरे मन से बनाये पालना में ही रहने का विचार करें ऐसी मेरी उनसे प्रार्थना है—ऐसे पुरुषोत्तम श्रीरामजी में ही मेरा मन सदा लगा रहे ॥४॥

साकेतेशो विमातुर्वचनकरवरो ज्ञानिनामग्रभूमिः
पौरैर्मित्रैस्तथान्यैरनुगमनकरै दण्डकां साक्रमाप्तः ।
शेषाणां तन्मुनिनां परमहितकृते दिव्यभैषज्यतुल्यो
दोलायां स्वापमेयाद्रघुकुलतिलकोमानसे मे सरामः ॥५॥

भावार्थ—रघुकुल के तिलक समान साकेतपुर के स्वामी तथा ज्ञानियों का आलम्बन स्वरूप तथा विमाता के आज्ञाकारियों में श्रेष्ठ होने के कारण विमाता की आज्ञा से दण्डक नाम के बन में वहाँ के परम भक्त मुनियों के परम कल्याण का साधन करने के लिये दिव्य औषध के तुल्य ऐसे श्रीरामजी अनुगमन करते हुए नगर के मित्र तथा अन्य जनों के साथ ही पहुंचे थे। ऐसे अलौकिक विनय से सम्पन्न तथा अप्रतिमभक्तवत्सल श्रीरामजी मेरे मन रूपी पालने में शयन करें और मेरा मन सर्वदा उनके ध्यान में ही मग्न रहे ॥५॥

सुग्रीवायाऽधिराज्यं ददद भिनवकाऽब्दच्छविर्बालिकालः
पारावारेऽप्यारे गिरिवरनिरैर्बद्धसेतुर्विभुर्यः ।
प्राकारैः प्रावृतां तां दशमुखनगरीं ध्वंसिता ध्यानगम्यो
दोलां चेतोऽधिशेतां मम सकलकलोध्वन्विनां ग्रामणीः सः ॥

भावार्थः—जोश्रीरामजी नवीन मेघ के समान कान्ति वाले हैं, धनुर्धरों में मुख्य हैं, जो वालि के लिये यमराज समान हैं तथा सुग्रीव को विशाल राज्य देने वाले हैं । तथा जिन्होने पर्वतों के समूहो से अपार समुद्र में सेतु बांधां था, तथा जिन्होने कोटों से सुरक्षित ऐसी रावण की राजधानी लंका का नाश किया

था, ध्यान से जानने योग्य सभी कलाओं से युक्त एवं सर्वत्र व्यापक ऐसे वह श्रीरामजी मेरे मन रूपी पालने में शयन करें ॥६॥

लोकाक्ष्या सेचनाढ्यातुलबलवपुषा राजमानोविमानः
श्रोन्मीलन्नीलपङ्केरुहवदनघनश्यामधामाभिरामः ।
कोदण्डेनेषुणा चोल्लसितकरकजः श्रीविशालःसुमाल-
श्चित्ते स्वापं समेयादहितविहतिकृद्दोलिकायां स रामः ॥७॥

भावार्थः—जिसके दर्शन में लोगों के नेत्र कभी तृप्त नहीं होते ऐसे तथा अतुल बल से युक्त शरीरवाले, निरभिमानी, विकसित नीलकमल के समान श्याम वर्ण से मनोहर धनुष तथा बाण से शोभित करकमल वाले, उत्तममाला से विभूषित सभी प्रकार के अतिशयों से युक्त्त, दुष्टों के निग्रह करने वाले श्रीरामजी मेरे चित्त रूपी पालने में शयन करें ॥७॥

वीराणामग्रगीर्यः सुरदनुजनृणां जन्मिनां वेतरेषां
कर्त्तापाताऽथहर्त्ता समविरुदयुतो हेयहीनोऽप्यहीनः ।
स्तुत्यो नम्यश्च गम्यश्चिदचिदुभयव्यापिवर्ष्मानिरूष्मा
रामः स्वापं स एयादसितमणिगुर्दोलिकायां स चित्ते ॥

भावार्थः—जो श्रीरामजी वीरों के अग्रसर हैं तथा जो देव, दानव, मनुष्य तथा अन्य प्राणियों के कर्ता रक्षक तथा नाश करने वाले भी है, सभी प्रशस्तियों से युक्त है हेयगुणों के स्पर्श से भी रहित है। तथा जो परात्पर हैं, स्थूल एवं सूक्ष्म चेतन

तथा अचेतन को अपने शरीर में समाये हुये है तथा सर्वोत्कृष्ट विनय निरभिमानता आदि गुणो से सम्पन्न है ऐसे इसलिये केवल वे ही स्तुति के प्रणाम के तथा ध्यान के योग्य हैं ऐसे नीलमणि के समान कान्ति से युक्त शरीरवाले श्रीरामजी मेरे मन रूपी पालने में शयन करें मेरा मन सदा ही उनमें लगा रहे ॥८॥

बोधायनार्यसच्छिष्यगङ्गाधरार्यनिर्मितम् ।
पठतां ध्वान्तहृद्भूयाच्छ्रीरामदोलिकाष्टकम् ॥

भावार्थ–भगवान् श्री पुरुषोत्तमाचार्य बोधायन महर्षि के शिष्य श्री गङ्गाधराचार्यजी का बनाया हुआ श्रीरामदोलिकाशयनाष्टक (श्रीरामदोलिकाष्टक) पाठ करने वाले के हृदयान्धकार को दूर करे ॥

वेदोंमें श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का चरममन्त्र

(ले. वैदेहीकान्तशरण–तुरकी)

'मननात्त्रायते इति मन्त्रः'–इस निर्वचन के अनुसार 'जो मनन (चिन्तन) करने से रक्षा करता है वह मन्त्र है'– यही मन्त्र का लक्षण है। दूसरे शब्दों में मन्त्र रक्षक अथवा रक्षा का उपाय (साधन) है। यही मन्त्र का मन्त्रत्व है। श्री रामानन्द सम्प्रदाय में भगवान् के शरणग्रहण को ही प्रथम एवं अन्तिम उपाय माना गया है। अतएव शरणगति ही

अन्तिम (चरम) मन्त्र (त्राण का साधन) है एवं इस सम्प्रदाय का चरममन्त्र शरणागतरक्षणव्रती भगवद्वाक्य है–

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।।"

इसी प्रकार इस सम्प्रदाय का द्वय मन्त्र भी शरणागति मन्त्र ही है–"श्रीमद्रामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये । श्रीमते रामचन्द्राय नमः ।" एवं मूल मन्त्र भी शरणागति मन्त्र ही है–रां रामाय नमः ।" इनमें चरम मन्त्र अज्ञातार्थ ज्ञापक भगवद्वाक्य विधिवाक्य है, जिसे उपाय निर्देशक का साधनज्ञान बोधकवाक्य भी कह सकते हैं । जिससे 'प्रथमतः फलज्ञानम् ततः फलेच्छा । ततः इष्टसाधनता ज्ञानम् उपाये । ततः उपायेच्छा । ततः प्रवृत्तिरुत्पद्यते ।"–इस क्रम से भगवच्छरणागति की प्रवृत्ति (चिकीर्षाजन्यो यत्नःप्रवृत्तिः) उत्पन्न होती है । क्योंकि 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न हि मन्दो प्रवर्तते" के अनुसार बिना किसी प्रयोजन के प्रवृत्ति होती ही नहीं है । अतः चरममन्त्रज्ञान से प्रवृत्ति की इच्छा उत्पन्न होती है । द्वयमन्त्र उस प्रवृत्ति के अनुकूल व्यापार परक क्रिया वाक्य है । दूसरे शब्दों में चरम मन्त्र ज्ञान (बोधक) वाक्य और द्वयमन्त्र क्रिया वाक्य है । मूल मन्त्र इन दोनों का ही मूल है । इसमें दोनों (ज्ञान और क्रिया) का समन्वय और एकत्रस्थिति है । इस प्रकारक तीनों मन्त्रों का तात्पर्य शरणागति योग में ही है ।

वेदों में इस चरममन्त्र का वैदिक प्रक्रिया से निरूपण है—

"अग्ने व्रत पते व्रतं चरिष्यामि'
तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ।। शु. य. ।।१५।।"

अग्ने [हे राम ! (अङ्गति सर्वत्र गच्छतीति अग्निः—रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च इति रामः)] व्रतपते [अपने 'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च यायते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।।"—इस व्रत के पालन करने वाले] (मैं) व्रतं [आपके शरण में जाने के व्रत को] चरिष्यामि [अनुष्ठान करूंगा] अर्थात् मैं आपके शरण का ग्रहण करूंगा । तच्छकेयं [उस शरणागति ग्रहण में मैं सक्षम होऊँ] तन्मे [उस शरणागति को मेरे निमित्त ('निमित्त पर्याय प्रयोगे (कारण—हेतु—प्रयोजन) सर्वाश्च प्रायदर्शनम्—वा.' के अनुसार निमित्तार्थ षष्ठि) राध्यताम् [सिद्ध करें] । इदम् [इस प्रकार यह] अहम [मैं] अनृतात्सत्यमुपैमि [असत्य से छुटकारा पाकर सत्य को प्राप्त करता हूँ—'यतो विश्लेषो अपादानम्', अपादाने पञ्चमी] ।

इसमन्त्र की विशेष व्याख्या पीछे की जायगी, यहाँ इस मन्त्र में 'सत्य' पद बहुत ही महत्त्व पूर्ण एवं शरणागति के प्रकरण में अभीष्ट है । श्रीमद्भागवत में भी इसी मन्त्र के आश्रय से 'सत्य' पद से ही शरणागति का उपदेश है—

"सत्यव्रतं सत्य परं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये,
सत्यस्य सत्यामृत सत्य नेत्र
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना : ॥ श्रीमद्भ १०।२।२६।

वेद आगे कहते हैं कि भगवान् के इसी सत्यव्रत (शरणागत रक्षण व्रत) से प्रेरित होकर लोग दीक्षा को प्राप्ति (मन्त्र ग्रहण) करते हैं, उस दीक्षा से दक्षिणा (ऋजुता–तरलता–उदारता–गति–शीघ्रता–प्राप्ति–निपुणता, सक्षमता–ज्ञानादि) का प्राप्ति करता है, उस दक्षिणा से श्रद्धा (आस्तिक्य बुद्धि–ईश्वर दर्शन के साधन (याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्) की प्राप्ति करता है एवं उस श्रद्धा से सत्य (श्रीराम) की प्राप्ति करता है–

"व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोतिश्रद्धया सत्यमाप्यते शु ॥.य.१९।३०॥

अतएव वेद कहते हैं कि उस परमात्मा के सामीप्य प्राप्त करने के लिये जाते हुए हमलोगोंको मन्त्र (मूलमन्त्र द्वयमन्त्र–चरम मन्त्र) को परमात्मा की प्रसन्नता एवं उनकी अनुकूलता के लिये बोलना चाहिए। वे दूर से ही हमलोगों को सुनते (स्वीकार) करते हैं–

'उप प्रयन्तो अध्वरं मन्त्र वोचेमाग्नये ।
आरे अस्मे च शृण्वते ॥शु. य. ३।११॥"
=ऋ. १।७४।१=सा. १४७९

इस प्रकार वेदों में श्रीरामानन्द सम्प्रदायोपदिष्ट मन्त्रों का स्पष्ट प्रतिपादन है। उक्त चरममन्त्र का तात्पर्यार्थ–शरण्यरुचि संश्रयः है, जो उक्त 'अनृतात्सत्यमुपैमि' से सिद्ध है; वाक्यार्थ-'प्रापक स्वरूप निरूपण' है, जो 'अहम् शकेयं' से सिद्ध है; प्रधानार्थ-ईश्वरस्य स्वरूप निरूपण' है, जो 'अग्ने व्रतपते' से सिद्ध है; एवं, अनुसन्धानार्थ–'निर्भरानुसन्धान' है, जो 'व्रतं चरिष्यामि से सिद्ध है। इसप्रकार उक्त वेद मन्त्र एवं चरममन्त्र की एक रूपता एवं एक विषयता है ।

उपर कहा जा चुका है कि किसप्रकार उक्त भगवत्प्रतिज्ञा (व्रत) वाक्य श्रवण से प्रापक जीव की शरणागति व्रत में प्रवृत्ति किस प्रकार होती है ? अब यहाँ इसी प्रकार का प्रश्न ईश्वर के सम्बन्ध में भी हो सकता है कि प्राप्य (ईश्वर) की इस प्रतिज्ञा (व्रत) में प्रवृत्ति किस प्रकार हुई ! तो स्वार्थ की अनपेक्षा से दूसरों के दुःख दूर करने की इच्छा को कारुण्य कहते है–'स्वार्थमनपेक्ष्य परदुःखप्रहाणेच्छा हि कारुण्यम् ।' एवं इसी करुणा भाव से ईश्वर की प्रवृत्ति होती है–"करुणया प्रवृत्तिरीश्वरस्य ।" पुनः प्रश्न हो सकता है कि उसको ऐसी करुणा क्यों होती है ! तो ईश्वर सभों का पिता है–"पितासि लोकस्य चराचरस्य–गी. ।" एवं पिता का पाँच लक्षण शास्त्रों में उपदिष्ट है–

"जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति,
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृता ॥"

इसप्रकार भय से त्राण करना पिता का नैसर्गिक कर्तव्य है। इसी स्वभाव वश वह "अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम" का व्रती है। अतएव जीव उन्हें उनके उक्त व्रत का स्मरण करता है—अग्ने व्रतपते।

श्रीरामचरित मानस में श्रीरामजी अपने उक्त व्रत की घोषणा करते है—

"मम पन शरणागत भयहारी ॥"
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय शरणतकि मोही ॥
तजि मदमोह कपट छल नाना।
करउ सद्य तेहि साधु समाना।"

उक्त वेदमन्त्र में अनृतात्सत्यमुपैमि' कहा गया है, वह महत्त्वपूर्ण है 'अनृत' को पुरुष का मल कहा गया है—'पुरुषस्यानृतं मलम्—महाभारत।" एवं सत्य से अनृत पर विजय प्राप्त करे-"जयेत् सत्येनचानृतम्—महा.।' इसी मल रूपी अनृत को उक्त 'तजि मदमोह कपट छल नाना' चौपाई में कहा गया हैं एवं सत्य को 'करउँ सद्य तेहि साधु समान' कहा गया है।

उपरोक्त वेदमन्त्र में शरणागति के षडङ्ग—

"आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्व वरणं तथा ॥
आत्मनिक्षेपाकर्पण्यं षड्विधाशरणागतिः।"

की भी व्यवस्था है।

यही वेदमन्त्र पुनः दूसरे रूप में पठित है—

"अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेराधीदमहं य एवास्मि सोऽस्मि ॥शु. य. २।२८॥"

श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में इस चरेम मन्त्र के परिप्रेक्ष्य में प्रपत्ति प्रार्थना इसप्रकार की गयी है—

"संसार सागरान्नाथौ पुत्रमित्र गृहाकुलात् ।
गोप्तारौ मे दयासिन्धू प्रपन्नभयभञ्जनौ ॥१॥
योऽहं ममास्ति यत्किञ्चिदिह लोके परत्र च ।
तत्सर्वं भवतोरेव चरणेषु समर्पितम् ॥२॥
अहमस्म्यपराधानामालयस्त्यक्तसाधनः ।
अगतिश्च ततो नाथौ भवन्तावेव मे गतिः ॥३॥
तवास्मि जानकीकान्त कर्मणा मनसा गिरा ।
रामकान्ते तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम ॥४॥
शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणा निकराकरौ ।
प्रसादं कुरुतां दासे मयि दुष्टेऽपराधिनी ॥५॥
मत्समो नास्ति पापात्मा त्वत्समो नास्ति पापहा ।
इ तसञ्चिन्त्य देवेश यथेच्छसि तथा कुरु ॥६॥
अन्यथाहि गतिर्नास्ति भवन्तौ हि गतिर्मम ।
तस्मात्कारुण्य भावेन कृपां कुरु दयानिधे ॥७॥
दासोऽहं शेषभूतोऽहं तवैव शरणागतः ।
अपराधतोऽहं दानोऽहं पाहिमां करुणाकर ॥८॥

(शेष भाग टाइटल नं. २ पर)

चण्डिकारमणचापखण्डने
पण्डितेन मम मण्डितं मनः ॥७५॥

अन्वय–कौणपालिकदली विषाणिना बाणचापपरिकर्म पाणिना चण्डिकारमणचापखण्डने पण्डितेन मम मनः मण्डितम् अस्ति ॥७५॥

राक्षस के समूह रूप केले के स्तम्भ तोडने में शींग वाले अर्थात् अति चतुर शर धनुष से युक्त हाथ वाले शिवजी के धनुष के तोडने में निपुण श्रीरामचन्द्रजी ने मेरा मन भूषित किया है ॥७५॥

कृत्तकीर्णकुटिलक्षपाचरे
कृत्रिमेतरगिरामगोचरे ।
धावते हि कुलदेवतेति मे
चित्तमेवमिदमुत्तमे नृणाम् ॥७६॥

अन्वय–कृत्तकीर्णकुटिलक्षपाचरे कृत्रिमेतरगिराम् अगोचरे नृणाम् उत्तमे मे कुलदेवता इति एवम् इदम् चितम् हि धावते ॥७६॥

क्षिप्त और कुटिल यानी खल राक्षसों को संछिन्न कर चुकने वाले अकृत्रिम वाणियों के अविषय अर्थात 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इस श्रुति के कथनानुसार सत् कथन या वा आदि से भी दुःप्राप्य पर ऐकान्तिक निश्छल प्रयत्न जन ग्र रामजी के तरफ और पुरुषों में श्रेष्ठ अर्थात् पुरुषोत्तम

वे कुल देवता हैं इस लिये यह मेरा मन निश्चयरूप से उनकी ओर दौडता है ॥७६॥

कालिकानिभरुचिः कनीयसा
कान्तया च सह कल्पिताऽऽसिका ।
कार्मुकाशुगलसत्कराम्बुजा
काचिदस्ति करुणा गतिर्मम ॥७७॥

अन्वय–कालिकानिभरुचिः कनीयसा कान्तया च सह कल्पिता ऽऽसिका कार्मुका ऽऽशुगलसत्कराम्बुजा काचित् करुणा मम गतिः अस्ति ॥७७॥

कालिका के समान कान्तिवाली अतिकनिष्ठ यानी श्रीलक्ष्मणजी और श्री सीताजी के साथ आसन करने वाले यानी विराजमान चाप और बाणों से शोभायमान हस्त कमल वाली कोई यानी विलक्षण श्री रामचन्द्रजी की करुणा ही एक मात्र मेरी गति है ॥७७॥

मामके मनसि धान्यमालिनी
भूषणा सह भुजोष्मशालिनी ।
सा चकास्ति शरचापधारिणी
भानुमालिकुलभाग्यधोरणी ॥ ७८ ॥

अन्वय–या धान्यमालिनी भूषणा सह भुजोष्मशालिनी शर चाप धारिणी भानुमालि कुलभाग्यधोरणी, सा मामके मनसि चकास्ति ॥ ७८ ॥

जो धान्य मालिनी के यानी पृथिवी के भूषणा अर्थात् अपने जन्म से शोभित करने वाली श्री सीताजी और सह यानी समर्थ भुजों का उष्म अर्थात् प्रताप इन दोनों से शोभायमान, बाण धनुष को धरनेवाली और सूर्यवंश के भाग्य को पताका हैं वे श्रीरामजी मेरे मन में विराजमान हैं ।। ७८ ।।

याति तेजसि मनः सनातने
दूतभूषितकिरीटकेतने ।
यामिनीचरे चमूभयङ्करे
जानकीनयनकेलिकिङ्करे ।। ७९ ।।

अन्वय–सनातने दूतभूषित किरीट केतने यामिनीचरे चमूभयङ्करे जानकी नयनकेलिकिङ्करे तेजसि मनः याति ।। ७९ ।।

सनातन यानी नित्य दूत से यानी श्री हनुमान् जी से अर्जुन के रथ को शोभित करने वाले राक्षसों की सेना के लिये कराल ऐसे अति विचित्र शरणापन्न जन रक्षक श्री रामचन्द्रजी के तेज की ओर मेरा मन जाता है ।। ७९ ।।

चङ्क्रमानुगतगन्धसिन्धुरा
सिन्धुराजकृतसेतुबन्धना ।
चासनाधृतशरासनाशुगा
मेचका मनसि मे चकास्तिसा ।। ८० ।।

अन्वय–चङ्क्रमानुगतगन्धसिन्धुरा सिन्धुराजकृतसेतु

वन्धना धृतशरासना ऽऽशुगा मेचका सा वासना मे मनसि चकास्ति ॥ ८० ॥

गन्धहस्ती का मन्दगमन से अनुकरण करने वाली महा सागर में सेतु बन्धन करने वाली और चापशरका धारण करनेवाली श्यामबर्णवाली प्रसिद्ध वासना मेरे मनमें विराजती है अर्थात् श्री रामचन्द्रजी की लोकमोहक श्यामता मेरे हृदय में प्रकाशित हो रही है ॥ ८० ॥

वानरक्षपितराक्षसव्रजं
दीनरक्षणविचक्षणं प्रभुम् ।
श्री मदग्र्यशरचापमेति मे
जामदग्न्यमदनिग्रहं मनः ॥ ८१ ॥

अन्वय—वानरक्षपितराक्षसव्रजम् दीनरक्षणविचक्षणम् श्री मदग्र्यशरचापम् जामदग्न्यमदनिग्रहम् प्रभुम् मे मनः एति ॥ ८१ ॥

राक्षस समूह को वानरों के द्वारा नष्ट कर चुकने वाले दीनजनों की रक्षा में निपुण श्री मान् अग्रेसर यानी श्रेष्ठ बाण धनुष वाले परशुरामजी के मद का निरोध नष्ट करने वाले प्रभु श्री रामजी के प्रति मेरा मन जाता है ॥ ८१ ॥

कण्ठेकालशरासभञ्जनचणकल्याणनानागुणं
कारुण्याभरणं खरान्तकरणं कञ्जाभिरामेक्षणम् ।

पाणिद्वन्दगृहीतबाणधनुषं पाथोदनीलत्विषं
पौलस्त्यासुमुषं भजामि पुरुषं पार्श्वं वधूटीजुषम् ॥८२॥

अन्वय—कण्ठेकालशरासभञ्जनचणं कल्याणनानागुणम् कारुण्याभरणम् खरान्तकरणम् कञ्जाभिरामेक्षणम् पाणिद्वन्द्व गृहीतवाणधनुषम् पाथोदनीलत्विषम् पौलस्त्याऽऽसुमुषम् पार्श्वे वधूटीजुषम् पुरुषम् भजामि ॥ ८५ ॥

शिवजी के चाप के खण्डनमें चतुर या प्रख्यात कल्याण कारक अनेक अनन्तगुण वाले दयारूपभूषण वाले खरनामक राक्षस को मारने वाले कमलके समान सुन्दर नेत्रवाले दोनों हाथो में वाण चापधारी मेघ के समान श्यामकान्ति वाले रावण के प्राणो को हरण करने वाले वामपार्श्व में नित्ययुवति स्वरूपा सीताजी से युक्त सर्वेश्वर पर पुरुष श्री राम जी की में सेवा करता हुं ॥ ८२ ॥

कुवलयदलनीलश्रीभृतां भूकुमारी
कुचकलशविराजत्कुङ्कुमैरङ्किताानाम् ।
दशमुखभुजतेजोदर्पतुलानिलानां
दशरथसुकृतानां दासभावं भजामः ॥८३ ॥

अन्वयः—स्पष्टः ॥ ८३ ॥

कमल पत्र के समान श्याम वर्ण कान्ति के धारण करने वाले श्री सीताजी के स्तनरूप घट पर विराजमान कुङ्कुमो से युक्त

यानी चिह्नित रावण के बाहुओं के तेज अहङ्कार रूप कपास के लिए हवा के समान श्री दशरथजी के पुण्यों के फल स्वरूप मानवावतार स्वीकृत सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की दास भावना से हम सेवा करते हैं।

करधृतशरचापः कान्तिमत्पङ्कजाक्षो
निहितशरधिरंसे नीरदस्निग्धनीलः ।
वनमृगपरिवारो वन्दनीयो मुनीनां
मदयति हृदयं मे मैथिली प्राणनाथः ॥८४॥

अन्वय- करधृतशरचापः कान्तिमत्पङ्कजाक्षः अंसे निहित शरधिः नीरदस्निग्धनीलः वनमृगपरिवारः मुनीनाम् वन्दनीयः मैथिलीप्राणनाथः मे हृदयम् मदयति ॥ ८४ ॥

बाण धनुष हाथों में धरने वाले कान्ति वाले कमलों के समान नेत्रवाले कंधे पर बाण के थैली यानो तरकस रखने वाले मेघ के समान चिक्कण यानी चीकने श्यामवर्ण वाले बन के हरिण रूप परिवार वाले मुनिजनों से वन्दनीय श्री सीता जी के प्राणपति श्री रामचन्द्रजी मेरे हृदय को मत वाला कर रहे हैं ॥ अर्थात मेरामन को अपनो ओर खींच रहें हैं ॥८४ ॥

मघवदुपलनीले मण्डलीकृत्यचापं
मुहुरभिदशकण्टं मुञ्चतीषु प्रपञ्चम् ।
रणधरणिरजोभिर्धूसरे वासरेश
प्रभवकुलभवानामुत्तमे चित्तमेति ॥ ८५ ।

अन्वय–मघवदुपलनीले चापम् मण्डलीकृत्य अभि दशकण्ठम्

इषु प्रपञ्चम् मुहुः मुञ्चति रणधरणिरजोभिः धूसरे वासरेश प्रभवकुलभवानाम् उत्तमे चित्तम् एति ॥ ८५ ॥

इन्द्रनीलमणि के समान श्याम वर्ण वाले धनुष को गोलाकार कर रावण के अभिमुख बार-बार बाण समूहों को छोडते हुए युद्ध भूमि की धूलियों से धूसर वर्ण वाले सूर्यवंश में उत्पन्नो-के मध्य में उत्कृष्ट श्री रामजी में मेरा मन जाता है अर्थात् उनके चरणों में मन लगता है ॥८५ ॥

शुभगुणकलकण्ठस्तोममाकन्दशाखा
नियमिनिवहचेतोनीलकण्ठाभ्ररेखा ।
दशवदनवधूटीचक्रवाकीत्रियामा
जनयति कुतुकं मे जानकीप्रेमभूमा ॥ ८६॥

अन्वय—शुभगुणकलकण्ठस्तोममाकन्दशाखा नियमिनिवहचेतोनीलकण्ठाभ्ररेखा दशवदनवधूटी चक्रवाकीत्रियामा जानकीप्रेमभूमा सीमा मे कुतुकम् जनयति ॥ ८६ ॥

कल्याण गुण रूप कोकिल समूह के लिए मधु वृक्ष की डाल के समान नियमवालो के समूह रूप मन मोर के लिये मेघ मण्डली के समान रावण की तरुणी रूप चकवियों के लिये रात जैसे श्री जानकी जी के प्रेमास्पद प्रेमके एक मात्र अवलम्ब स्वरूप श्री रामचन्द्रजी मेरे लिये कुतूहल उत्पन्न कर रहे हैं ॥ ८६ ॥

कल्याणमावहतु दाशरथेः कटाक्षः
शाखामृगे शतमखादपि सानुकम्पः ।
आभाति भूमितनयाधरबिम्बलोभ
संपातसंक्रमितलाक्ष इवारुणो यः ॥८७॥

अन्वय–शाखामृगे शतमखात् अपि सानुकम्पः दाशरथेः कटाक्षः कल्याणम् आवहतु यः भुमितनयाऽधरविम्बलोभ संपातसंक्रमितलाक्षः इव अरूणः आभाति ॥ ८७ ॥

वानरों पर इन्द्र से भी अधिक दया करने वाले श्री दशरथनन्दन जी का कटाक्ष कल्याण प्राप्त करावे जो श्री सीता जी के अधर रूप विम्ब फल के संपात से संक्रमित यानी संचारित लाक्षा के समान लालवर्ण भासमान हो रहा है ॥ ८७ ॥

तारुण्यदर्पतरलीकृतगोपकन्या-
दृष्टिप्रियं तव यदस्ति वपुस्तदास्ताम् ।
काकुत्स्थवीर ! कमलानयनाभिरामं
गात्रं त्विदं तव करोति मुदं मदन्तः ॥८८॥

हे काकुत्स्थवीर ! यत् तव वपुः तारुण्यदर्पतरलीकृतगोपकन्या दृष्टिप्रियम् अस्ति तत् आस्ताम् मम तु कमलानयनाभिरामम् इदम् तव गात्रम् मदन्तः मुदम् करोति ॥ ८८ ॥

हे काकुत्स्थवीर श्री रामजी! जो आपका शरीर यौवन के अहंकार से चंचल की हुई गोपियों की दृष्टि का प्यारा है वह

रहे यानी आपका युवती जन मन मोहक स्वरूप आपके पास ही रहे उससे हमें कोई मतलब नहीं परंतु मेरे तो श्री लक्ष्मीजीके नेत्रों को भी सुन्दर लगने वाला यह आपका दिव्य शरीर मेरे हृदय में हर्ष उत्पन्न कर रहा है ।८८॥

स कश्चन गिरीन्द्रजासखशरासनत्रश्चनो
मनो हरिति मामकं मरतकोपलश्यामलः ।
धनुःशरलसत्करो धरणिकन्यका प्रेमभू
र्धनञ्जयरथध्वजाभरणभूतदूतः प्रभुः ॥८९॥

अन्वय–कश्चन सः गिरीन्द्रजासखशरासनत्रश्चनः मरतकोपलश्यामलः धनुः शरलसत्करः धरणिकन्यक प्रेमभूः धनंजय रथध्वजाभरणभूतदूतः प्रभुः मामकम् मनः हरति ॥८९॥

कोई वे गिरिजा–पार्वती पति शंकर के चाप को तोडने वाले मरकतमणि के समान श्यामवर्ण वाले चाप बाणों से शोभायमान हाथ वाले श्री सीताजी के प्रेमपात्र, अर्जुन के रथ के ध्वजा के अलङ्कार हुए श्री हनुमान्जी रूप दूत वाले प्रभु सर्वसमर्थ श्रीराम जो मेरे मनका हरण कर रहे हैं ॥८९॥

धन्या वयं धरणिकन्यकया सनाथे
नाथे स्थिते जगति नः परिपालनाय ।
यः शीलितो यतिभिरात्मनि निष्कलङ्के
लङ्केश्वरं लवितुमात्तमनुष्यरूपः ॥९०॥

अन्वय -नः परिपालनाय जगति धरणिकन्यकया सनाथे

निष्कलंके नाथे स्थिते वयम् धन्याः यः लङ्केश्वरम् लवितुम् आत्त मनुष्यरूपः यतिभिः आत्मनिशीलितः अस्ति ॥९०॥

हमारी रक्षा करने के लिए जगत में श्री सीताजी के साथ जगद्रक्षक निष्कलंकचरित्र श्रीरामचन्द्रजी के रहने से हम सब श्रीरामोपासक धन्य हैं। जिन श्रीरामचन्द्रजी ने रावण को छिन्न अर्थात् नाश करने के लिए मनुष्य रूप धारण किया है। जिनका संयमन शील यति—महर्षि लोग सर्वदा विशुद्ध अन्तः करण में परिशीलन यानी ध्यान किया करते हैं ॥९०॥

दीनानुकम्पि दिवसेश्वरवंशरत्नं
कर्तृव्यपेतवचसा कथमप्युपेयम् ।
तापिच्छनीलरुचि तामरसायताक्षं
चापोज्ज्वलं किमपि वस्तु ममाविरस्तु ॥९१॥

गरीबों के उपर दया करने वाले सूर्यवंश के रत्न कर्ताओं से व्यपेत यानी छूटी अर्थात् निकली वाणी से किसी प्रकार से प्राप्य शरणागत व्यक्ति की निस्छल प्रार्थना—उपासना से प्राप्य तमाल वृक्ष के समान श्याम वर्ण कान्तिवाले कमल के समान दीर्घ नेत्र वाले धनुष से शोभ मान कोई श्रीराम तत्त्वस्वरूप वस्तु मेरे सामने प्रगट हो ॥९१॥

आबद्धतूणमंसेकरकमलद्वन्द्वधृतधनुर्बाणम् ।
पश्यामिहृदयकमले रामं दूर्वादलश्यामम् ॥९२॥

अन्वय- अंसे आबद्धतूणम् करकमलद्वन्द्वधृतधनुर्बाणम् दूर्वादलश्यामम् रामम् हृदयकमले पश्यामि ॥९२॥

कंधे पर तरकस दोनों हाथ रूप कमलों से चाप और शर का धारण करने वाले दुर्वादल के समान श्यामवर्ण वाले श्रीरामजी को हृदयरूप कमल में देखा करता हूँ ॥९२॥

मज्जति मनो मदीयं
क्वचिदपि दलितेन्द्रनीलमणिनीले ।
महिमनि महीकुमारी-
कुचकुड्मलकुङ्कुमाङ्कितोरस्के ॥९३॥

अन्वय–मदीयम् मनः दलितेन्द्रनीलमणिनीले महीकुमारी कुच कुड्मल कुङ्कुमाङ्कितोरस्के क्वचित् अपि महिमनि मज्जति॥

मेरा मन इन्द्र नीलमणि के शोभा को तिरस्कृत करने वाले श्याम वर्ण तथा श्रीसीताजी के स्तन रूप कुडमल यानी अविकसित फूल में लगे हुए कुंकुम से चिह्नित वक्षस्थल वाले किसी महा महिम श्रीरामचन्द्रजी में निमग्न हो रहा है ॥९३॥

जगदघहरप्रशंसे जनकसुतावलयपदविलसदंसे ।
निगमान्तनलिनहंसे रमते मम हृदयमिनकुलवतंसे ॥९४॥

अन्वय–मम हृदयम् जगदघहरप्रशंसे जनकसुता वलय पदविलसदंसे निगमान्तनलिनहंसे इनकुलवतंसे रमते ॥९४॥

मेरा हृदय जगत् के पापों को हरने वाली प्रशंसा वाले श्री

सीताजी की कलाई से शोभमान कंधे वाले वेदान्त रूप कमल के विकाशी सूर्यवंश के शिरोभूषण श्रीरामजी में रमता है ॥९४॥

विकचेन्दीवरनीलं विदेहतनयाकुचस्तवकलोलम् ।
निगमान्तसुधानिलयं माधुर्यं पिबति मामकं हृदयम् ।९५।

अन्वय–मामकम् हृदयम् विकचेन्दीवरनीलम् विदेहतनया कुचस्तबकलोलम् निगमान्तसुधानिलयम् माधुर्यम् पिबति ॥९५॥

मेरा हृदय विकसित नील कमल के समान श्यामवर्णवाला श्रीसीताजी के स्तन रूप फूल के गुच्छे में चञ्चलतायुक्त वेदान्त रूप अमृत का घर आधारभूत स्थान रूप माधुर्य पी रहा है अर्थात् वेदान्त का सार एक मात्र वेदान्त वेद्य सर्वेश्वर श्रीराम तत्त्व का सर्वदा पान करता हूँ ॥९५॥

सरसघनसारमेदुरचन्दननिष्यन्दशीतलालोकम् ।
कमपि दलितमयकन्यामङ्गलमालिङ्गति मनो मे ॥९६॥

अन्वय– मे मनः सरसघनसारमेदुरचन्दननिष्यन्द-शीतलालोकम् दलितमयकन्यामङ्गलम् कमपि आलिङ्गति ॥९६॥

मेरा मन रस सहित कर्पूरसमान चीकना चन्दन रस सदृश शीतल दृष्टि वाले मय नामक दानव की कन्या के कल्याणों का नाश करने वाले अर्थात् रावण का वध करने वाले किसी विलक्षण चीज श्रीराम रूप पर ब्रह्म तत्त्व का आलिंगन कर रहा है ॥९६॥

गिरिशधनुस्तरु(नु) करिणं
दलितभृगुप्रवरगर्वसर्वस्वम् ।
कलयामि कमपि वीरं
कृत्तकबन्धं कृताम्बुनिधिबन्धम् ॥९७॥

अन्वय–गिरिशधनुस्तरु (नु) करिणम् दलितभृगुप्रवरगर्वसर्वस्वम् कृत्तकबन्धम् कृताम्बुधिनिबन्धम् कमपि वरम् अहम् कलयामि ॥९७॥

शिवजी के चाप रूप वृक्ष के वा चाप रूप शरीर के भङ्ग करने में हाथी के समान परशुरामजी के गर्व सर्वस्व का यानी अहंकार रूप सकल धन का नाश करने वाले कबन्ध राक्षसको संक्षिन्न कनेर वाले और समुद्र का बन्धन करने वा समुद्र में पुल बांधने वाले किसी विलक्षण वोर की गणना मैं किया करता हूँ अर्थात् पर ब्रह्म श्रीराम का नाम सर्वदा जपा करता हूँ ॥९७॥

कुशिकसुतकुतुकदायी
कुवलयदलनीलकोमलशरीरः ।
कोसलकुलतिलको मे
कोऽपि गतिः कोविदाररथकेतुः ॥९८॥

अन्वय–कुशिकसुतकुतुकदायी कुवलयदलनीलकोमल शरीरः कोसलकुलतिलकः कोविदाररथकेतुः कोऽपि मे गतिः अस्ति ॥९८॥

कुशिक पुत्र विश्वामित्रजी को कुतूहल देने वाले नील कमल के समान श्याम अतिसुन्दर कोमल शरीर वाले कोसल-कुल के तिलक यानी शिरोभूषण और कोविदार ध्वज रथ वाले कोई विलक्षण पुरुष श्री रामजी मेरी गति यानी अवलम्ब हैं ॥९८॥

कुवलयदामसरूपं
कुण्ठितदशकण्ठनिरुपमाटोपम् ।
करतलगृहीतचापं
कयले तद्धाम पामरदुरापम् ॥९९॥

अन्वय—कुवलयदामसरूपम् कुण्ठितदशकण्ठनिरुपमाऽऽटोपम् करतलगृहीतचापम पामरदुरापम् तत् धाम कलये ॥९९॥

कमल की माला के समान चमकीले रूप वाले रावण के अतुल्य आडम्बर को स्तब्ध करने वाले करकमल से धनुष का ग्रहण करने वाले पामरों से दुर्लभ प्रसिद्ध तेज का मैं आश्रय लेता हूँ, अर्थात् भगवत् शरणापन्न होकर प्रभुकृपा अप्राप्त जनों से दुर्लभ श्रीरामजी का दिव्य तेज का ध्यान किया करता हूँ ९९

दलितेन्दीवररूपे
दर्शितदशकण्ठयौवतविलापे ।
धृतशरचापकलापे
दीव्यति हृदयं दिलीपकुलदीपे ॥१००॥

अन्वय–मम हृदयम् दलितेन्दीवररूपे दर्शितदशकण्ठयौवत विलापे धृतशरचापकलापे दिलीपकुलदीपे दीव्यति ॥१००॥

मेरा मन विकसित नीलकमल के समान श्यामवर्ण वाले रावण की युवतियों का विलाप दिखाचुकने वाले बाण और धनुष को धारणकरने वाले दिलीप के वंश के दीप श्रीरामचन्द्रजी में रमता है ॥१००॥

निगमान्तवनकुरङ्गे
निर्मलमुन्यन्तरङ्गनटरङ्गे ।
रुचितुलितरवितुरङ्गे
क्वचन रमे रघुकुलार्णवतरङ्गे ॥१०१॥

अन्वय–निगमान्तवनकुरङ्गे निर्मलमुन्यन्तरङ्गनटरङ्गे रुचितुलितरवितुरङ्गे क्वचनरविकुलार्णव तरंगे रमे ॥१०१॥

वेदान्त रूप वन के हरिण विशुद्ध मुनियों के अन्तःकरण रूप नटों के रंग यानी खेलने के मैदान स्वरूप सूर्य के घोडो को अपनी कान्ति से निस्तेज करने वाले किसी सूर्यवंश रूप समुद्र के तरङ्ग में मैं रमण किया करता हूँ अर्थात् "रमन्ते योगिनो ऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि" इस श्रुति के अनुसार जिस पर तत्त्व श्री राम रूप ब्रह्म में मुनिजन रमणरूप चिन्तन सर्वदा किया करते हैं उसी श्रीरामचन्द्रजी के अगाध समुद्र के विशाल तरंग रूप यश गान में मैं सर्वदा मग्न रहता हूँ ॥१०१॥

दशकन्धर मद सिन्धुर-
दलनधुरन्धरनिशातशरनखरम् ।
पटुमवने निगमवने
चरमवनेः कन्यया हरिं कलये ॥१०२॥

अन्वय—दशकन्धरमदसिन्धुरदलनधुरन्धरनिशातशरनखरम् अवने पटुम् निगमवने चरम् अवनेः कन्यया हरिम् कलये ।१०२।

रावण रूप मद मत्त हाथी के विदारण में धुरीण तीक्ष्ण बाण रूप नख वाले रक्षा में कुशल वेदरूप वन में विचरने वाले श्री सीताजी के साथ हरि श्रीरामरूपसिंह का मैं आश्रय लेता हूँ अर्थात् श्रीसीतारामजी का सर्वदा भजन करता हूँ ॥१०२॥

कपिकुलकलितपरिधये
करुणानिधये शरास्तवारिधये ।
वितनोमि दाशरथये
विनतिं सीताविहारसारथये ॥१०३॥

अन्वयः—कपिकुलकलितपरिधये करुणानिधये शरास्तवारिधये सीताबिहार सारथये दाशरथये विनतिम् वितनोमि ॥

वानरों के झुण्ड से चारो तरफ से किये हुए वेष्टन वाले दयाके सागर वा खजाने बाणों से समुद्र को परास्त करने वाले श्री सीता जी के विहार के यानी विचरण के सारथि रूप श्री दशरथ महाराज के नन्दन के लिये मैं विनती करता हुं अर्थात् श्री राम चन्द्र जी का भजन करता हुं ॥ १०३
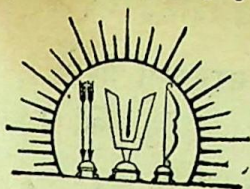
सर्वेश्वराभ्यां श्रीसीतारामाभ्यांनमः ।

आनन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।

जगद्गुरुश्रीटीलाचार्याय नमः । जगद्गुरुश्रीमङ्गलाचार्याय नमः ।

पण्डितसम्राट्श्रीवैष्णवाचार्यवेदान्तपीठाचार्यनिर्मिते

लघूपासनाङ्गचतुष्टयसङ्ग्रहे

श्रीरामानन्दीयद्वाराचार्यलघूपलासनाङ्ग-चतुष्टयम् ।

सर्वज्ञौ सर्वहेतू च शास्त्रवेद्यौ परेश्वरौ ।
दयालू मुक्तसम्प्राप्यौ सीतारामौ नमाम्यहम् ॥१॥

प्रकाशकः—पण्डितसम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य
त्रणदेरी श्रीराममन्दिर—शारंगपुर दर्वाजाबाहर
अहमदाबाद—२

प्रति ५००

श्रीरामानन्दसप्तमशताब्दी
सन् १९८३ ईसवी

मूल्य ७५ पैसे

श्रीद्वारपीठेशपञ्चश्लोकी ।

नमस्ते नमः सद्गुणानां प्रदात्रे
नमस्ते नमो दुर्गुणानां च हर्त्रे ।
नमस्ते नमः सम्प्रदायैकरक्षिन्
नमस्ते नमो द्वारपीठेश ! देव ! ॥१॥

नमस्ते नमः श्रीश्रुतेर्भाष्यपाठिन् !
नमस्ते नमो भव्यगीतार्थवेदिन् ।।
नमस्ते नमो ब्रह्मसूत्रार्थबोधिन् !
नमस्ते नमो द्वारपीठेश ! देव ! ॥२॥

नमस्ते नमः श्री महापापहर्त्रे
नमस्ते नमः श्रीमहानुग्रहाब्धे !
नमस्ते नमो द्वारपीठेश ! देव ! ॥३॥

नमस्ते नमो ब्रह्मबोधप्रदात्रे
नमस्ते नमो रामभक्तिप्रदात्रे ।
नमस्ते नमः संसृतेर्मुक्तिदात्रे
नमस्ते नमो द्वारपीठेश ! देव ! ।४॥

नमस्ते नमः श्रीयतीन्द्रानुगामिन् !
नमस्ते नमो वैष्णवाचार्यवर्य ।।
नमस्ते नमो राममन्त्रप्रदात्र
नमस्ते नमो द्वारपीठेश ! देव ! ॥५॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता ।
भवतात् पठनाच्चेयं पञ्चश्लोकी सुखप्रदा ॥६॥

श्रीद्वारपीठाचार्यप्रातःस्तवः ।

आनन्दभाष्यकारश्रीरामानन्दानुयायिनम् ।
श्रीमन्तं द्वारपीठेशं प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥१॥
अमोघपूजनां दिव्यां चामोघवन्दनां तथा ।
द्वारपीठेशसम्मूर्त्तिं प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥२॥
मनोज्ञं पादपद्मं च पाणिपद्मं तथैव हि ।
द्वाराचार्यस्य नित्यं च प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥३॥
रम्यं प्रभान्वितं चथ सौम्यं धर्मोपदेशकम् ।
द्वाराचार्यमुखं नित्यं प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥४॥
भक्तिमुक्तिप्रदं चाथ कीर्त्तनात् कीर्त्तिदायकम् ।
द्वाराचार्यस्य सन्नाम प्रातःकाले स्मराम्यहम् ॥५॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितः ।
भवतात् पठनात् प्रातःस्तवोऽयं सुखदायकः ॥६॥

गीतानन्दभाष्ये ज०गु० श्रीरामानन्दाचार्यपरम्परा ।

श्रीरामं जनकात्मजामनिलजं वेधोवसिष्ठावृषी
योगीशं च पराशरं श्रुतिविदं व्यासं जितात्क्षं शुकम् ।
श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यान् यतीन्
श्रीमद्राघवदेशिकं च वरदं स्वाचार्यवर्यं श्रये ॥१॥

श्रीरामानन्दीयद्वाराचार्यस्तवः ।

आनन्दभाष्यमर्मज्ञमात्मानात्मप्रबोधकम् ।
अनन्तानन्दनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यम ॥१॥

रामानन्दकृतानन्दभाष्यत्रयप्रचारकम् ।
श्रीमत्सुरसुरानन्दं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥२॥
रक्षकं सम्प्रदायस्यानन्दभाष्यस्य शिक्षकम् ।
श्रीभावानन्दनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ।३॥
निरस्य दम्भिनां दम्भं रामकीर्त्तनकारकम् ।
रामकबीरनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥४॥
रहस्यत्रयबोद्धारं श्रीसम्प्रदायरक्षकम् ।
श्रीसुखानन्दनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ।५॥
रामानन्दीयधर्माब्धेर्वर्धकं विधुमुत्तमम् ।
श्रीपापाचार्यनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥६॥
श्रीरामानन्दभाष्यस्य शिक्षकं धर्मरक्षकम् ।
नृहर्यानन्दनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥७॥
दीक्षितं धर्मरक्षायां भक्तियोगोपदेशकम् ।
श्रीयोगानन्दनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥८॥
श्रीरामतारकं दत्त्वा तारकं हि भवाम्बुधेः ।
श्रीकीलाचार्यनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥९॥
रहस्यत्रयवक्तारं रामभक्तिसमाम्बुधम् ।
श्रीअग्राचार्यनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥१०॥
रामानन्दकृतानन्दभाष्याम्भोजस्य भास्करम् ।
श्रीटीलाचार्यनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥११॥
अप्रतिद्वन्द्विनं वादे विशिष्टाद्वैतवादिनम् ।
श्रीमदनुभवानन्दं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥१२॥

शिक्षकं भक्तभक्तेश्च भक्तमालाविधायकम् ।
श्रीनभाचार्यनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥१३॥
वचस्तम्भनकर्त्तारं वादिनां वादसंगरे ।
श्रीरामस्तम्भनाचार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥१४॥
रामभक्तिप्रदानेन भक्तिमुक्तिप्रद नृणाम् ।
श्रीमद्देवाकराचार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥१५॥
राघवभक्तिदातारं राघवदासनामकम् ।
श्रीयुतखोजिदेवार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥१६॥
अर्थपञ्चकबोद्धारं वैष्णवधर्मरक्षकम् ।
श्रीकूबाचार्यनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ।१७॥
तत्त्वत्रयोपदेष्टारं रहस्यत्रयवेदिनम् ।
श्रीतनतुलसीदासं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ।१८॥
श्रीमद्वैष्णवधर्मस्य रक्षकं तत्त्ववेदिनम् ।
लालतुरङ्गिनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥१९॥
सिद्धवादिविजेतारं विशिष्टाद्वैतरक्षकम् ।
देवमुरारिनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥२०॥
आनान्दभाष्यतत्त्वज्ञं सन्तोषामृतवारिधिम् ।
श्रीमन्मलूकदासार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥२१॥
जनानां मुक्तिदातारं राममन्त्रं प्रदाय हि ।
श्रीमद्भङ्गद्देवार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥२२॥
सद्रहस्योपदेष्टारं धार्मिकं धर्मकोविदम् ।
राघवचेतनाचार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥२३॥

महासिद्धं महाप्राज्ञं रामोपासनकारकम् ।
भगवन्नारायणार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥२४॥
आत्मानात्मपरात्मज्ञमानन्दभाष्यपण्डितम् ।
पूर्णविराठिदेवार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥२५॥
रहस्यत्रयवेत्तारमर्थपञ्चकबोधकम् ।
श्रीरामरावळाचार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥२६॥
श्रीसम्प्रदायधर्मस्य रक्षकं धर्मशिक्षकम् ।
श्रीमद्धनुमदाचार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥२७॥
श्रीरामानन्दधर्मस्य रक्षाकर्मणि दीक्षितम् ।
श्रीदुन्दुरामनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥२८॥
मुद्रामालादिसंस्काराद्भुतमहात्म्यदर्शकम् ।
श्रीकाळूरामनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥२९॥
कर्मबन्धच्छिदं भक्त्या रामभक्तिप्रदं नृणाम् ।
श्रीकर्मचन्द्रनामानं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥३०॥
श्रीरामायणमर्मज्ञं वेदवेदान्तपारगम् ।
रामरामायणीत्याख्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥३१॥
हठाज्जितेन्द्रियं प्राज्ञं रामपादाब्जभक्तिदम् ।
हठीनारायणाचार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥३२॥
ब्रह्मविद्यानिधिं रामब्रह्मोपासनतत्परम् ।
श्रीमद्भङ्गिदेवार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥३३॥
श्रीरामानन्दभाष्यज्ञं विशिष्टाद्वैतसाधकम् ।
श्रीयुतालखरामार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥३४॥

श्रीरामकीर्त्तनासक्तं सिद्धवन्द्यं तपोनिधिम् ।
श्रीरामरङ्गिदेवार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥३५॥
आनन्दभाष्यतत्त्वज्ञं विजेतारं च वादिनाम् ।
श्रीलाहारामदेवार्यं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥३६॥
द्वारापीठाधिपा ये च वैष्णवधर्मरक्षकाः ।
आचार्यपुङ्गवाँस्ताँश्च द्वाराचार्यान् नमाम्यहम् ।३७॥
वैष्णवभाष्यकर्त्रा श्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितः ।
द्वाराचार्यस्तवश्चायं पठतां हि सुखप्रदः ॥३८॥

जगद्गुरु श्री द्वाराचार्यपूजापद्धतिः ।

संस्कृतः पञ्चसंस्कारै राममन्त्रप्रदः सुधीः ।
आनन्दभाष्यतत्त्वज्ञो द्वाराचार्यो जगद्गुरुः ॥१॥
बोधायनानुगो यः श्रीरामानन्दानुगश्च सः ।
श्रीरामगुरुभक्तश्च द्वाराचार्यो जगद्गुरुः ॥२॥ ध्यानम् ।
ज्ञानादिसद्गुणाम्भोधे ! द्वाराचार्य ! मुनीश्वर !
त्वदर्चनं करिष्येऽहमागच्छ करुणानिधे ।।३॥ आवाहनम् ।
भगवन् द्वारपीठेश ! रामानन्दजयध्वज ! ।
भव्यासने मयादत्ते भवासीनः कृपां कुरु ।।४॥ आसनम् ।
सिद्धयोगिनृपालैश्चार्चितस्त्वं धर्मशिक्षक ! ।
पाद्यं गृहाण धर्मात्मन् ! महाचार्यशिरोमणे ! ॥५॥ पाद्यम्
संयुतं दिव्यगन्धेन दिव्यौषधिरसैर्युतम् ।
मया दत्तं गृहाणार्घ्यं द्वारपीठाधिनायक ! ! ॥६॥ अर्घ्यम्

निर्मलं पावनं नीरं पुष्पगन्धेन वासितम् ।
गृह्णाणाचमनं दत्तं द्वाराचार्य ! जगद्गुरो ! ॥७॥ आचमनम्
मधुपर्कं मयादत्तं गृहाण करुणार्णव ! ।
जगद्गुरो ! उपाचार्य ! वादे वादिनिरासक ! ॥८॥ मधुपर्क
आनीतं पुण्यतीर्थेभ्यो दिव्योषधिरसैर्युतम् ।
दत्तं शुद्धं जलं स्नातुं स्वीकुरु देशिकेश्वर ! ॥९॥ स्नानम्
महाचार्यशिरोरत्न ! सम्प्रदायाब्जभास्कर ! ।
दत्तं गृहाण वस्त्रं च द्वाराचार्य जगद्गुरो ! ॥१०॥ वस्त्रम्
रामानन्दानुग स्वामिन् श्रीरामानन्दभाष्यवित् !
मलयाचलसम्भूतं गृहाण चन्दनं शुभम् ॥११॥ चन्दनम्
त्वयाऽपमार्य चाधर्मं धर्मेण भूषिता जनाः ।
पुष्पहारो मया दत्तः स्वीकुरुष्व जगद्गुरो ! ॥१२॥ पुष्पहारः
त्वया भक्ताः कृता लोकाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः ।
यशस्विन् गृह्यतां धूपं पूजनीय ! जगद्गुरो ! ॥१३॥ धूप
दिव्यप्रकाशयुक्तं च घृताक्तवर्तिसंयुतम् ।
दत्तं गृहाण दीपं त्वं ज्ञानप्रकाशदायक ! ॥१४॥ दीपः ॥
पूपादिमोदकं चाथ पायसं व्यञ्जनं तथा ।
दत्तं गृहाण नैवेद्यमुपाचार्य ! महामते ! ॥१५॥ नैवेद्यम्
सुधया सदृशं स्वादु शीतलं हिमवज्जलम् ।
दयाब्धे ! गृह्यतां दत्तं कीर्त्तिभिर्दिक्षु विश्रुत ! ॥१६॥ जलम्
दिव्यौषधिरसैर्युक्तं दिव्यगन्धान्वितं जलम् ।
गृहाणाचमनं दत्तं द्वाराचार्य ! जगद्गुरो ! ॥१७॥ आचमनम्

छत्र चामर सुस्तोत्रचरित्रपठनादिभिः ।
सर्वैं राजोपचारैश्च तुष्यस्वाचार्यभूपते ! ॥१८॥ राजोपचाराः
घृताक्तवर्तिकर्पूरज्वालाभिः संयुतं मया ।
दत्तं नीराजनं भव्यं स्वीकरोतु जगद्गुरो ! ॥१९। निराजनम्
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तिन् ! श्रौतधर्माब्जभास्कर !
दत्तं पुष्पाञ्जलिं देव ! स्वीकरोतु जगद्गुरो ! ॥२०। पुष्पाञ्जलिः
ज्ञानादज्ञानतो वाथ पापं यद्विहितं मया ।
नष्टं भवतु तत् सर्वं द्वाराचार्यप्रदक्षिणात् ॥२१॥ प्रदक्षिणा
निरस्य वादिदुर्वादान् स्वीयसिद्धान्तरक्षक ! ।
गृह्यतां श्रीफलं स्वादु द्वारपीठाधिनायक ! ।२२। श्रीफलम् ।
भक्तिप्रद ! नमस्तुभ्यं मुक्तिप्रद ! नमोऽस्तु ते ।
भूयोभूयो नमस्तुभ्यं द्वाराचार्य ! जगद्गुरो ! ।२३। नमस्कारः
उदलब्धोपचारैस्ते कृता पूजा जगद्गुरो ! ॥
पूर्णतां यातु सा सर्वा ह्यपराधं क्षमस्व मे ।२४॥ क्षमापनम्
धर्माचार्यशिरोरत्न ! वैष्णवधर्मरक्षक !
मुक्तिदां देहि भक्तिं मे द्वाराचार्य ! जगद्गुरो ॥२५॥ विसर्जनम्
वैष्णवभाष्यकारश्रीगौष्णवाचार्यनिर्मिता ।
अवतात् पद्धतिश्चैषाऽर्चकानां मङ्गलप्रदा ।२६।
इतिश्रीद्वाराचार्यलघूपासनाङ्गचतुष्टये प्रथममङ्गम् ॥१॥

श्रीद्वाराचार्यकवचम् ।

पुण्यं शक्तिं मतिं कोर्तिं धनं धर्मं सुखं तनुम् ।
संरक्ष्य मे मदीयानां द्वाराचार्यो हि पातु माम् ॥१॥

दिक्षु रक्षतु सर्वासु मम सर्वदशासु च ।
भक्तिदो मुक्तिदश्चाथ द्वाराचार्यो हि पातु माम् ॥२॥
निशायां दिवसे चाथ स्वापे जागरणे तथा ।
सर्वथा सर्वकालेषु द्वाराचार्यो हि पातु माम् ॥३॥
विपत्तौ चाथ सम्पत्तावाकाशे च जले स्थले ।
भवने च वने नित्यं द्वाराचार्यो हि पातु माम् ॥४॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
धारणात् पठनाद् भूयात् कवचं विघ्ननाशकम् ॥५॥

पण्डितसम्राट् श्रीवैष्णवाचार्यकृता

श्रीद्वाराचार्यनमस्कारमाला

नमोऽस्तु रामभक्ताय जगतो गुरवे नमः ।
नमोऽस्तु देशिकेन्द्राय द्वाराचार्याय ते नमः ॥१॥
नमोऽस्तु धर्मतत्त्वज्ञ सद्धर्मरक्षिणे नमः ।
धर्माचार्य नमस्तेऽस्तु द्वाराचार्याय ते नमः ॥२॥
नमोऽस्तु ते सदाचारिन् सदाचारविदे नमः ।
नमोऽस्तु शिक्षिताचार ! द्वाराचार्याय ते नमः ॥३॥
नमस्तेऽस्तु सुधीन्द्राय सिद्धेन्द्राय नमोऽस्तु ते ।
नमस्तेऽस्तु मुनीन्द्राय द्वाराचार्याय ते नमः ॥४॥
नमोऽस्तु योगिराजाय मुनिराज ! नमोऽस्तु ते ।
नमोऽस्तु गुरुराजाय द्वाराचार्याय ते नमः ॥५॥
नमोऽवगुणशून्याय सद्गुणाब्धे नमोऽस्तु ते ।
दोषहारिन् नमस्तेऽस्तु द्वाराचार्याय ते नमः ॥६॥

भक्तिदाय नमस्तेऽस्तु मुक्तिप्रद ! नमोऽस्तु ते ।
शक्तिदाय नमस्तेऽस्तु द्वाराचार्याय ते नमः ॥७॥
नमोस्तु ज्ञानसिन्धो ते ज्ञानप्रद ! नमोऽस्तु ते ।
संशयघ्न ! नमस्तेऽस्तु द्वाराचार्याय ते नमः ॥८॥
नमोऽस्तु वेदवेत्रे ते वेदान्तवेदिने नमः ।
नमश्चागमवेत्रे ते द्वाराचार्याय ते नमः ॥९॥
नमोऽस्तु सिद्धपूज्याय सिद्धवन्द्याय ते नमः ।
नमोऽस्तु सिद्धभूपाय द्वाराचार्याय ते नमः ॥१०॥
नमस्तेऽर्चितरामाय स्तुतराम ! नमोऽस्तु ते !
नमोऽस्तु नतरामाय द्वाराचार्याय ते नमः ॥११॥
नमोऽस्तु गुरुभक्ताय नमोऽस्तु गुरुसेविने ।
नमस्ते पूजिताचार्य ! द्वाराचार्याय ते नमः ॥१२॥
नमोऽस्तु श्रुतरामाय स्मृतराम ! नमोऽस्तु ते ।
नमोऽस्तु श्रितरामाय द्वाराचार्याय ते नमः ॥१३॥
नमोस्तु श्रवणीयाय कीर्त्तनीयाय ते नमः ।
नमोऽस्तु स्मरणीयाय द्वाराचार्याय ते नमः ॥१४॥
नमोस्तु चार्चनीयाय वन्दनीयाय ते नमः ।
नमोऽस्तु सेव्यपादाय द्वाराचार्याय ते नमः ॥१५॥
महाज्ञानिन् ! नमस्तुभ्यं महाध्यानिन् ! नमोऽस्तु ते ।
महाकीर्त्ते नमस्तुभ्यं द्वाराचार्याय ते नमः ॥१६॥
आयुःप्रद ! नमस्तुभ्यं नमस्ते बलबुद्धिद ! ।
यशःप्रद ! नमस्तुभ्यं द्वाराचार्याय ते नमः ॥१७॥

नमः परम्पराभक्त ! नमश्चाचार्यनिष्ठ ! ते ।
नमः श्रीसम्प्रदायिं स्ते द्वाराचार्याय ते नमः ॥१८॥
नमो वादिविजेत्रे ते वादिभीकर ! ते नमः ।
दिग्विजेत्रे नमस्तुभ्यमुपाचार्याय ते नमः ॥१९॥
नमश्चानन्दभाष्यज्ञ ! भाष्यकृन्निष्ठ ते नमः ।
नमश्चाचार्यनिष्ठाय द्वाराचार्याय ते नमः ॥२०॥
नमोस्तु रामदासाय सीतादासाय ते नमः ।
नमोऽस्तु हनुमद्दास ! द्वाराचार्याय ते नमः ॥२१॥
नमोस्तु ज्ञातसिद्धान्त ! सिद्धान्तरक्षिणे नमः ।
नमः शिक्षितसिद्धान्त ! द्वाराचार्याय ते नमः ॥२२॥
नमोऽस्तु वैष्णवाचार्य ! वैष्णवरक्षिणे नमः ।
जगद्गुरो नमस्तुभ्यमुपाचार्याय ते नमः ॥२३॥
नमश्चास्तिकरत्नाय नास्तिकजिन्नमोऽस्तु ते ।
विद्यानिधे नमस्तुभ्यमुपाचार्याय ते नमः ॥२४॥
नमश्चाश्रितरामाय भक्तानां रक्षिणे नमः ।
नमस्ते भक्तितत्त्वज्ञ ! द्वाराचार्याय ते नमः ॥२५॥
नमोस्तु रामधामज्ञ ! रामब्रह्मज्ञ ! ते नमः
नमोऽस्तु रामलीलाज्ञ ! द्वाराचार्याय ते नमः ॥२६॥
नमो रामकथाऽऽसक्त ! रामयज्ञविदे नमः ।
नमश्चाचार्यदेवेन्द्र ! द्वारराचार्याय ते नमः ॥२७॥

श्रीद्वाराचार्यनामपञ्चाशिका

जय जय वैष्णवधर्माचार्य जय जय वैदिकधर्माचार्य ।
जय जय रामानन्दाचार्य उपाचार्य जय द्वाराचार्य ॥१॥
राम परेशबोधकाचार्य रामपरेशपूजकाचार्य
जय जय रामानन्दाचार्य उपाचार्य जय द्वाराचार्य ॥२॥
वैदिकधर्मरक्षकाचार्य आगमधर्मरक्षकाचार्य ।
जय जय रामानन्दाचार्य उपाचार्य जय द्वाराचार्य ॥३॥
वैष्णवधर्मशिक्षकाचार्य साधनभक्तिशिक्षकाचार्य ।
जय जय रामानन्दाचार्य उपाचार्य जय द्वाराचार्य ॥४॥
वैष्णवसंस्कृतिकर्त्राचार्य वैष्णवधर्मरक्षकाचार्य ।
जय जय रामानन्दाचार्य उपाचार्य जय द्वाराचार्य ॥५॥
श्रीसद्गुरुप्रपन्नाचार्य देशिकजनगणभक्ताचार्य ।
जय जय रामानन्दाचार्य उपाचार्य जय द्वाराचार्य ॥६॥
तुलसीमालाधर्त्राचार्य उर्ध्वपुण्ड्रगणकर्त्राऽऽचार्य ।
जय जय रामानन्दाचार्य उपाचार्य जय द्वाराचार्य ॥७॥
पूर्वाचार्यपूजकाचार्य भक्तिप्रबन्धशिक्षकाचार्य ।
जय जय रामानन्दाचार्य उपाचार्य जय द्वाराचार्य ॥८॥
रामानन्दमतज्ञाचार्य श्रीबोधायननिष्ठाचार्य ।
जय जय रामानन्दाचार्य उपाचार्य जय द्वाराचार्य ॥९॥
साधनसम्यकवक्त्राचार्य द्वादशशुद्धिबोधकाचार्य ।
जय जय रामानन्दाचार्य उपाचार्य जय द्वाराचार्य ॥१०॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता ।
भूयात् पञ्चाशिका चेयं पठतां सुखदायिका ॥११॥

श्रीद्वारपीठेश्वरपञ्चकम्

यो रामश्चिदचित्तनुर्गुणनिधिः कार्यं तथा कारणं
यो मूलं च निमित्तकं च जगतः सर्वेश्वरः सर्ववित् ।
यः सच्चित्सुखरूपवाञ्छ्रुतिमतः स्वामी, विभोस्तस्य च
श्रीरामस्य जयध्वजो विजयते श्रीद्वारपीठेश्वरः ॥१॥

या रामस्य परेमेश्वरस्य महिषी या नित्यधामेश्वरी
वात्सल्याम्बुधिरूपिणी च जननी योमारमासंस्तुता ।
या चाभीष्टफलप्रदा हरिहरब्रह्मादिभिर्वन्दिता
तत्सीतासुजयध्वजो विजयते श्रीद्वारपीठेश्वरः ॥२॥

सीताऽऽपादितसम्प्रदायजलधेर्यो वर्धकश्चन्द्रमा
वैदेहीसुखदो महाकृतिकरो यो रामसन्देशदः ।
यो रामस्य सुकिङ्करो त्रिधिगुरुः, श्रीमारुतेस्तस्य च-
वज्राङ्गस्य जयध्वजो विजयते श्रीद्वारपीठेश्वरः ॥३॥

आनन्दाख्यसुभाष्यरत्नरचको यः श्रीसुशीलासुतः
श्रौतस्मार्त्तवचःसमन्वितविशिष्टाद्वैतसिद्धान्तदः ।
जन्माद्यस्ययतस्त्वनित्य जगतस्तद्रामरूपश्च, तद्-
रामानन्दजयध्वजो विजयते श्रीद्वारपीठेश्वरः ॥४॥

यश्चाङ्गं मिथिलात्मजाप्रियपतेः सायुज्यकृत्संसृते-
र्यत्प्राप्त्यै विहितः श्रुतौ सुमतिमच्छ्रीमद्गुरोः संश्रयः ।
यो हेतुः सुखसम्पदोश्च सततं मृत्युंगतस्याद्गुग-
स्तद्धर्मस्य जयध्वजो विजयते श्रीद्वारपीठेश्वरः ॥५॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
पञ्चकं भवतादेतत् सर्वकल्याणकारकम् ॥६॥

असाम्यावेदनम्

श्रीरामेण समो नास्ति स्वप्रपत्त्याऽभयप्रदः ।
अमोघं साधनं मुक्ते रामभक्तिसमं न हि ॥१॥
भवाब्धेस्तारको नास्ति रामेण ब्रह्मणा समः ।
मायया न समो बन्धो बन्धभिन्न च रामवत् ॥२॥
अदुष्टः श्रौतसिद्धान्तो विशिष्टाद्वैतवन्न हि ।
वैष्णवधर्मवद् धर्मो नास्ति चेशप्रसादकः ॥३॥
रामध्यानसमो योगो नो न सत्यसमं तपः ।
नास्त्यहिंसा समो धर्मः पापं हिंसासमं न हि ॥४॥
शत्रुर्गर्वसमो नास्ति नो मित्रं प्रियवाक्यवत् ।
पावनं ज्ञानतुल्यं नापावनं वञ्चनेव न ॥५॥
नापकीर्त्तिसमो मृत्युः कीर्त्तितुल्यं न जीवनम् ।
नासत्सङ्गसमा हानिर्लाभः सत्सङ्गवन्न हि ॥६॥
न प्रतिष्ठाकरो लोके दयादानोपकारवत् ।
नाप्रतिष्ठाकरश्चात्र याञ्चाकोपापहारवत् ॥७॥
नास्ति रामसमः स्वामी स्वभक्तत्राणकारकः ।
वदान्यो रामवन्नास्ति सर्वाभीष्टप्रदायकः ॥८॥
अमोघं कीर्त्तनं किञ्चिद् रामकीर्त्तनवन्न हि ।
अमोघं वन्दनं किञ्चिद् रामवन्दनवन्न च ॥९॥
अमोघं पूजनं चापि रामपूजनवन्न हि ।
कृपालुर्हितकर्त्ताऽथ गुरुदेवसमो न च ॥१०॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
असाम्यावेदनं भूयात् सर्वकल्याणकारकम् ॥११॥

संसारतारकज्ञानाष्टकम् ।

ब्रह्म सत्यं जगत् सत्यं जीवो ब्रह्म कदापि न ।
इत्यर्धश्लोकतः प्रोक्तं ज्ञानं संसारतारकम् ॥१॥
रामः स्वामी परब्रह्म जीवो दासः सदैव हि ।
इत्यर्धश्लोकतः प्रोक्तं ज्ञानं संसारतारकम् ॥२॥
देही रामः परब्रह्म देहो जीवो जगच्च हि ।
इत्यर्धश्लोकतः प्रोक्तं ज्ञानं संसारतारकम् ॥३॥
जीवाश्च कर्मणा बद्धा रामो भक्त्या च तारकः ।
इत्यर्धश्लोकतः प्रोक्तं ज्ञानं संसारतारकम् ॥४॥
एको रामः परब्रह्मानन्ता जीवा मिथः पृथक् ।
इत्यर्धश्लोकतः प्रोक्तं ज्ञानं संसारतारकम् ॥५॥
अणुप्रमाणको जीवो रामो ब्रह्म विभुः सदा ।
इत्यर्धश्लोकतः प्रोक्तं ज्ञानं संसारतारकम् ॥६॥
रामाधीनता जीवे सदा रामे स्वतन्त्रता ।
इत्यर्धश्लोकतः प्रोक्तं ज्ञानं संसारतारकम् ॥७॥
अनीश्वरा मता जीवा रामो ब्रह्माऽखिलेश्वरः ।
इत्यर्धश्लोकतः प्रोक्तं ज्ञानं संसारतारकम् ॥८॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
अष्टकं पठितं चेदं भवताद् भक्तिमुक्तिदम् ॥९॥

शीघ्र छपने जा रहा है। सायं ६ से ७-३० स्वामीजी का बडेमार्मिक ढंग से रहस्य मय प्रवचन होता है। अनेक जिज्ञासु इस मार्मिक प्रवचनसे लाभान्वित हो रहे हैं। श्रोताओं की भीड जम जाती है। श्रोता गण निश्चलभाव से एक चित्त बैठे रहते हैं, उनका उठने का मन हो नहीं करता क्यो कि प्रवाचक महानुभाव की वाणीही ऐसी है जो मन्त्र मुग्ध कर देती है।

श्रीमद्भागवत-सप्ताह ज्ञान-यज्ञ सानन्द सम्पन्न

पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्य पीठों में उत्सव समैये प्रवचन आदि की झड़सी लगी रहती है। कभी यहां कुछ आयोजन तो कभी वहां कुछ आयोजन मुस्किलसे १५-२० दिन का फासला रहपाता है। एक कार्यक्रम पूर्ण हुआ नहीं की दूसरा तैयार! होना भी तो यही चाहिये। आचार्यपीठ, मठ, मन्दिरों का लक्ष्य भी तो यही है-"नित्योत्सवं हि मन्दिरम्" इसी के माध्यमसे जनताको सद्धर्मोपदेश अनायास दिया जा सकता है, यही प्राचीन परिपाटी रही, वर्तमानमें तदध्यक्षगणमें विलास प्रधानतया देखने में आता है अतः परिपाटी लुप्तसी है उन धर्म के मूलस्थानों में वे सत्प्रवृत्तियाँ नहीं देखने को मिलती क्या यह खेदका विषय नहिं!

आचार्यत्वेन या मठाध्यक्षत्वेन एकाकी निवास या आहार विहार कोई तल्लक्षण नहीं यह तो मनुष्येतरत्वही है। कोई पठ या मठ से सार्वजनिक रूप से कोई मानवोपयोगी कार्य सञ्चालित नहीं हों तो क्या उन्हे भी तल्लणयुक्तता कहलाने का अधिकार है? स्मसानतुल्यानि वाली सदुक्ति चरितार्थ नहीं होतो है वहां?

आचार्य पीठोद्देश्य न्तर्गत प्रतिनियत प्रतिवर्ष के तरह इसवर्ष में भी श्रीकृष्णाष्टमी के उपलक्ष में ता: २४-८-८३ से ३१।८।८३ तक का विशेष कार्यक्रम आयोजित था मंलगवार ता० २३।८ के अपराह्न में श्रीरामार्चामहापूजन के साथ कार्यारम्भ हुआ प्रवाचक दार्शनिकजगत के ख्यातनामा भागवत रहस्यज्ञ पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्य पीठाधीश्वर स्वामीरामेश्वरानादाचार्य जी थे। भागवत रस लंपटों का जमघट लगा रहता था। हजारों व्यक्ति लाभान्वित हुए। सानन्द वातावरण में कार्य सम्पन्न हुआ।

धन्यवाद—श्रीसीतारामीय शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष्य में स्वामी भगवानदासजी मु० कटाव पो० गराबडी वाया पालनपुर जि० बनासकाठां ने ५१ रुपये आचार्य पीठ में मनीआर्डर से भेजे हैं एतदर्थ अनेक धन्यवाद।

मुद्रकः-श्रीरामानन्द प्रिंटिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद-२२
त्रिदण्डि संस्थान श्रीशेषमठ-धर्मप्रचार बिभागसे धर्मप्रचार्थ प्रकाशित

प्रेषक-श्री कोसलेन्द्र मठ सरखेज रोड
पो० पालड़ी, अहमदाबाद-३८०००७

ग्राहक नं.

प्रति श्री ....

१७७ रजिस्ट्रार
गुरूकुल कांगड़ीं विश्वविद्यालय,
हरिद्वार (यु. पी.)

वाराणसीस्थ आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यपीठाचार्य

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य- राम प्रपन्नाचार्य

योगीन्द्र प्रवर्तित विश्राम द्वारकास्थ श्री कोसलेन्द्रमठ संचालित

ज.गु.श्री रामानन्दाचार्य-पीठ

सचित्र धार्मिक मासिक

संरक्षक- सेठ श्री अमरशी कुरजी मजिठिया

सम्पादक- स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य

सहसम्पादक- पं. शरच्चन्द्र शास्त्री

स्वात्मा कुजे शैवतिथौतु कार्तिके
कृष्णेऽञ्जनागर्भत मुव मेषके ।
श्रीमान् कपीट प्रादुरभूत्परन्तयो
व्रतादिना तत्र तदुत्सघ चरेत ॥
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्याः

कार्यालयः श्री कोसलेन्द्र मठ, सरखेज रोड, पालडी,
अहमदाबाद-३८०००७

वर्ष ४ विक्रमाब्द २०३९ अंक १०
श्रीरामानन्दाब्द ६८२ १ डिसेम्बर १९८२

[पेज नं. ११ का शेष भाग]

सिद्धि ही होती है। विश्वनिर्माण एवं संचालन में अनेक कर्त्ताओ के मानने से अव्यवस्था होगी। अब एक आपत्ति यह की जाती है कि अनुमान से जो ईश्वर सिद्ध होगा वह दृष्टान्त भूत घट के कर्त्ता कुम्हार के समान अल्पज्ञ अल्पशक्ति कर्मपरवश दुःखी ही सिद्ध होगा महीमहीधर आदि के कर्त्ता में दृष्टान्त भूत घट के कर्त्ता कुम्हार से कुछ अधिक ज्ञानशक्ति भले ही कार्यानुसार सिद्ध हो।

यह आपत्ति भी भ्रान्त है। कार्यअनुसार कर्ता के ज्ञान का निर्धारण आपत्ति कर्ता भी मानते हैं अल्पज्ञान का विषय घट होने से उसका कर्ता अल्पज्ञ है तो सर्वज्ञान का विषय विश्व होने से उसका कर्ता सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् स्वतः सिद्ध है। कर्ता के साथ कर्म परवशता और दुःखी आदि का कोई सम्बन्ध नहीं अतः विश्व कर्ता न तो अल्पशक्तिमान् और परवश सिद्ध होता है और न दुःखीः प्रत्युत वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् सिद्ध होता है अतः अनुमान द्वारा ईश्वर सिद्ध नही होता का कथन सर्वथा भ्रान्त है।

अब यह कहना कि ब्रह्म के सम्बन्ध में केवल शब्द प्रमाण ही है भी सर्वथा भ्रान्त है।

जिस ब्रह्म सूत्र के "शास्त्र योनित्वात-१-१-३ "सूत्र के भाष्य में भाष्यकार वैसा कहने का साहस करते हैं, उसमें अन्य योगव्यवच्छेद अर्थक विशेष्य सङ्गत 'एवंकार का प्रयोग नहीं ही है, जिससे ब्रह्म के सम्बन्ध में अन्य प्रमाणों प्रत्यक्षानुमानादि को

[शेष भाग टाइटल नं. ३ पर]

काशीपीठाधीश्वर अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीरामा नन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्य जी योगीन्द्र का

नूतन वर्ष का शुभाशीर्वाद

नवे वर्षे सौम्ये भवतु भवताङ्कमितिरतुला
वपुः स्वास्थ्यं श्रेयः श्रयतु सततं श्रीपतिजुषाम् ।
विरोधं हित्वा श्रीःसह वसतु वाण्या शुचिकुले
रतिभूमाच्छश्वद्रघुपतिपदे मङ्गल करे ॥

आचार्य पीठों में श्रीहनुमज्जयन्ती

लौकिके तु समापन्ने मां स्मरे द्राम सेवकमूज की घोषणा करने वाले सर्वजन संरक्षण के लिये सर्वदा तत्पर श्री सम्प्रदाय के तीसरे आचार्य श्री मज्जनानन्द की जयन्ती श्रीरामानन्दपीठ श्रीकोसलेद्र-मठ में विशेष समारोह के साथ मनाई जाती है। इस वर्ष में भी

"स्वत्यां कुजे शैवतिथौतु कार्तिके
कृष्णेऽञ्जनागर्भत एव मेषके ।
श्रीमान् कपीट् प्रादुरभूत्परन्तयो
व्रतदिना तत्र तदुत्सवं चरेत् ॥"

श्रीवैष्णव मताब्ज भास्कर ४।३१ आचार्य प्रवर की इस दिव्याज्ञा के अनुसार दि. १४-११ ८२ रविवार को वेदोक्त विधान से श्रीअञ्जनासुत की पूजा आरती स्तुति प्रार्थना आदि से समाराधना की गई। आचार्यपीठाध्यक्ष स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य

जी ने जयन्ती का महत्व तथा श्रीहनुमान् जी के दिव्यादर्शों पर प्रकाश डालते हुए उपस्थित आविकों को श्रीरामसेवक के पथचिह्न पर चलकर स्वजीवन धन्य बनाने का आदेश दिया। प्रसाद वितरण तथा श्रीहनुमन्तलता की जय-जयकार के साथ कार्यक्रम-प्रधान श्रीरामनन्द पींठ काशी में

श्री हनुमान् जयन्ती

विगत वर्षों की भांती इस वर्ष में भी प्रधान आचार्यपीठ वाराणसी में अनन्त श्रीविभूपित जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र के तत्वप्रधान में सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी के कृपापात्र श्रीसंप्रदायाचार्य श्रीहनुमान् जी की जयन्ती वैदिक विधान से सम्पन्न हुई। बड़े मनोयोग के साथ श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के ३३ वें आचार्य जगद्गुरु श्रीरामकिशोराचार्य प्रणीत श्रीहनुमत्स्तव तथा श्रीरामानन्द सम्प्रदाय ये ३८व आचार्य जगदगुरुश्री हनुमदाचार्यजीं प्रणीत श्रीहनुमत्पञ्चक प्रभृति स्तोत्रों का पाठ किया गया। इस प्रसंग में आचार्य श्री ने समस्त मानवधो श्रीहनुमान जी के आदर्शों पर चलकर स्वकल्याण करने का आशीर्वाद दिया।

ईश्वर के साधक प्रमाण

(ले० वैदेहीकान्तशरण –तुरकी)

यों तो प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, संभव, ऐतिह्य एवं चैष्टिक—ये नव विध—प्रमाण माने

जाते हैं, परन्तु प्रमाण दीपिकाकार ने मुख्य त्रिविध प्रमाण (त्रिधा प्रमाण-मध्यक्षानुमानशब्द भेदतः –श्लो०४) ही माना हैं और ष सभी का इन्हीं में अन्तर्भाव माना है।

अब प्रश्न उठता है कि ईश्वर के विषय में इन उपरोक्त तीनों प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द प्रमाणों में से कौन प्रमाण है? क्या ईश्वर के सम्बन्ध में ये तीनों ही प्रमाण हैं या इनमें से केवल एक यदि केवल एक तो कौन?

प्रथम पक्ष का कथन है कि ईश्वर के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष एवं अनुमान प्रमाण कथमपि हो ही नहीं सकते है। उसके सम्बन्ध में केवल शब्द प्रमाण ही है।

द्वितीय पक्ष का कथन है कि ईश्वर के विषय में प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द-ये तीनों ही प्रमाण हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में प्रस्तुत किये जाने वाले प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण का खण्डन करना नास्तिकता है। इन प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाणों का खण्डन नहीं होता। ईश्वर सर्व प्रमाण सिद्ध है।

तृतीय पक्ष का कथन है कि जब ईश्वर प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों से सिद्ध नहीं हो सकता है तब वह शब्द प्रमाण से भी सिद्ध नहीं हो सकता।

सर्व प्रथम प्रथम पक्ष के कथन पर विचार किया जाता है। ब्रह्म सूत्र के शास्त्रयोनित्वात् –१।१।३ के भाष्य में कुछ भाष्य

कारों ने ऐसा मत प्रस्तुत किया है। प्रत्यक्ष प्रमाण के सम्बन्ध में उनका कथन है कि ब्रह्म के विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हो सकता है ? क्योंकि प्रत्यक्ष दो प्रकार के होते हैं–इन्द्रिय से उत्पन्न और योग से उत्पन्न पुनः इन्द्रियज भी दो प्रकार के होते हैं–बाह्य संभव और अन्तर संभव बाह्येन्द्रियां विद्यमान सन्निकर्ष योग्य स्वविषय बोध उत्पन्न करने वाली है न कि सर्वार्थ साक्षात्कार उस निर्माण समर्थ पुरुष विशेष के बोध उत्पन्न करनेवाली अतः बाह्य संभव प्रत्यक्ष नहि बन सकता परन्तु भाष्यकार का यह कथन सभी चीन नही है। 'जगत् सर्वं शरीरं ते' के अनुसार जगत् को ब्रह्म का शरीर माना गया है हमारी आँखे चैत्र के शरीर के प्रत्यक्ष दर्शन के समान ब्रह्म शरीर इस जगत् का प्रत्यक्ष दर्शन कर रही है। हम चैत्र शरीर और आत्मा में पार्थक्य मानते हैं तद्वै मानते हैं, परंतु ब्रह्म और उसके शरीर जगत् में अद्वैत (विशिष्टाद्वैत) मानते हैं, अपार्थक्य मानते हैं। जब चैत्र के शरीर दर्शन से चैत्र का प्रत्यक्ष मानते हैं। तब ब्रह्म के शरीर दर्शन ब्रह्म का प्रत्यक्ष कैसे नही होगा सच तो यह है कि जैसे हम एक शरीर पिण्ड का नाम योजना रहित प्रत्यक्ष दर्शन करने पर भी उसके नाम का ज्ञान नहीं होने के कारण यह नहीं जानते है कि मैं चैत्र का प्रत्यक्ष कर रहा हूँ–''रूप विशेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचाने।', इसी प्रकार हम जगत् रूपी ब्रह्म के शरीर का प्रत्यक्ष दर्शन करते हुये भी इसे ब्रह्म के शरीर होने का ज्ञान नहीं रहने के कारण हम नही जान पा रहे हैं कि हम

ब्रह्म का जगत् के कण-कण में दर्शन कर रहे हैं। भगवान् ने स्पष्ट कहा है—"यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वञ्च मयि पश्यति। गी० ६।-२०।" इस प्रकार ब्रह्म का बाह्य इन्द्रियज प्रत्यक्ष अबाध है। जगत् रचना के प्रत्येक कला कौशल में ब्रह्म के कर्म का प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है—"विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे इन्द्रस्य युज्यः सखा। ऋ १-२२-१९ इस प्रकार ब्रह्म के रूप एवं कर्मों का बाह्य इन्द्रियज प्रत्यक्ष शास्त्र सम्मत एवं प्रत्यक्ष सिद्ध है।

अन्तर इन्द्रियज प्रत्यक्ष के सम्बन्ध में भाष्य कार का कथन है कि ब्रह्म का अन्तर प्रत्यक्ष भी नहीं बन सकता। क्योंकि आ-न्तरिक सुख दुःखादि से भिन्न बाहरी विषयों में उस बाह्येन्द्रिय अनपेक्ष प्रवृत्ति की अनुपपत्ति होने के कारण। परन्तु भाष्यकार का यह कथन भी भ्रान्त है। हम जिस प्रकार आन्तरिक सुख दुः खादि का अन्तर प्रत्यक्ष करते हैं, ठीक उसी प्रकार आन्तरिक ईश्वरीय प्रेरणा, स्मृति, ज्ञान एवं तर्कशक्ति का भी अन्तर प्रत्यक्ष अनुभूति करते हैं भगवान् ने भी कहा है—"सर्वस्य चाऽहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृति ज्ञानमपोहनं च। गी० १५-१५ ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया" गी० १८।६१ अतः सुख दुःखादि के अन्तर अनुभूति के समान इश्वरीय प्रेरणादि की भी प्रत्यक्ष अनुभूति शास्त्र एवं प्रत्यक्ष सिद्ध है

योगज प्रत्यक्ष के सम्बन्ध में भाष्यकार कहते हैं कि ब्रह्म का योगज प्रत्यक्ष भी नहीं हो सकता है। क्योंकि भावना प्रकर्ष पर्यन्त उत्पन्न उसके विशद अवभास होने पर भी पूर्वानु भूत विषय के स्मृति मात्र होने के कारण उसकी प्रमाणिकता ही नहीं है, फिर प्रत्यक्ष कहाँ से ? परन्तु भाष्यकार का कथन ठीक नहीं है। उसके योगज प्रत्यक्ष की बात श्रीमद्भागवत में भी स्वीकृत है-"ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो-१२।१३।१।" अतः ब्रह्म का योगज प्रत्यक्ष शास्त्र सम्मत भी है। पुनः योगज ब्रह्म प्रत्यक्ष दिव्यचक्षु जन्य भी है। "प्रत्यक्षं तु द्वितीयं हि विद्वद्भिर्द्विविधं मतम्। स्वयं सिद्धं च भेदाद् दिव्यञ्च, हि संमतम्॥ आद्यं तु योगजं चान्त्यमीशानुग्रहजं मतम्। मानरत्नावली प्रत्यक्षखण्ड ३३--३४॥ "न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा। दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥गी ११। ८॥" ज्ञान चक्षु से भी दर्शन होता है--"उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्। विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यति ज्ञान चक्षुषः ॥गी १५।१०॥"

उपनिषदों में भी ब्रह्म के प्रत्यक्ष गम्य होने के प्रमाण हैं "रूपं कल्याणतमन्तत्ते पश्यामि--ईश. १६" नित्यं विभुं सर्वं गतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः"मु० १।१" "तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति॥मु० २।२।७" "ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः। मु० १।३।८" "त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। तैत्ति०"

पराञ्चिखानि व्यतृणत् स्वयंभूः, तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मान् कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्, आवृत्तो चक्षुरमृतत्व मिच्छन्" कठ २।२।१

अतएव ब्रह्म के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रमाण का अभाव कहना "नोलूको अवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य कि दूषणम्" ही है। निराकार माने जाने वाले ब्रह्म भी अपने ज्ञान--इच्छा क्रिया रूप से प्रत्यक्ष ही हैं। विश्व और प्राणियों की शरीर रचना उसका पोषण संचालन व्याकरण आदि एक सर्व मौन नियम बद्ध यान्त्रिक, नैतिक और बौद्धिक व्यवस्था उसके असीम ज्ञान का प्रत्यक्ष दर्शन है। "ममेच्छा सर्वोनास्ति दैवेच्चा प्रवलायते" अथवा "दैवेच्छा बलियसी" का प्रत्यक्ष अनुभव उसकी इच्छा का प्रत्यक्ष प्रमाण है विश्व में होने वाले सभी कार्य जो तत्काल में अच्छे मालूम नहीं होते परन्तु बाद में अच्छे मालूम पड़ते है, उसकी क्रिया विशेष का प्रत्यक्ष प्रमाण है। तभी अनुभवी लोग इसी निणय पर आये हैं कि ईश्वर जो कुछ भी करता है, अच्छा के लिये ही करता हैं। ईश्वर को साकार मानने वालों के यहाँ तो अवतार काल में नृसिंह, श्रीराम, कृष्ण आदि का ईश्वर रूपों का साक्षात् दर्शन अबाध ही है।

पुनः अर्चावतार मानने वालों के यहां ईश्वर के अर्चा विग्रह का प्रत्यक्ष होता है। अर्चा विग्रहं पाषाणा दि नहीं प्रत्युत साक्षात् ईश्वर माने जाते हैं। अत एव साकार वादियों के यहां ईश्वर

के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रमाण का अभाव कहना 'मुखे में जिह्वा नास्ति के कथन के समान व्याघातपूर्ण हैं। वेदान्त का तात्पर्य भी ब्रह्म के प्रत्यक्ष दर्शन में ही है, केवल शब्द से जानने में नहीं-- 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः "बृह०२।५॥" अत एव ब्रह्म को प्रत्यक्ष के अयोग्य बतलाना अथवा ब्रह्म के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रमाण का प्रतिषेध करना सर्वथा भ्रान्त और वेदान्त के तात्पर्य को हत्या करना है।

अनुमान प्रमाण के सम्बन्ध के भाष्यकारों का कहना है कि ब्रह्मण के सम्बन्ध में विशेषतो दृष्ट अथवा सामान्य तो दृष्ट कोई भी अनुमान प्रमाण नहीं हो सकता। क्योंकि अतीन्द्रिय वस्तुओं में सम्बन्ध के निश्चय के अभाव में विशेषतो दृष्ट अनुमान नहीं हो सकता एवं समस्त वस्तुओं के साक्षात्कार तथा उसके निर्माण समर्थ नियत पुरुष विशेष को सामान्यतो दृष्ट लिङ्ग नहीं उपलब्ध होता है।

परन्तु भाष्यकार का यह कथन भी भ्रान्त है ऐसे भ्रान्त विचार को फटकारते हुये कहा गया है —

"विश्वं विलोक्याप्यखिलं तदीयं, कर्त्तारमीशं नहि मन्यते यः।
अहं हि जातो जनकं बिनेति, न भाषते निह्नवरः कथं सः॥"

सामान्य तो दृष्ट नामक अनुमान में प्रत्यक्ष नहीं होने वाले साध्य तथा हेतु के व्याप्ति रूप सम्बन्ध रहने के कारण किसी एक विषय के साथ लिङ्ग के सामान्य से अप्रत्यक्ष साध्य

रूप अर्थ का बोध होता है। कितने पदार्थ ऐसे हैं जो कभी प्रत्यक्ष नहीं देखे जाते हैं. उनका केवल कुछ चिह्न (लिङ्ग) या लक्षण ऐसा मिलता है जिससे उनके अस्तित्व का अनुमान होता है। ऐसे स्थान में लिङ्ग के साथ लिङ्गी का सम्बन्ध तो कभी देखा जा ही नहीं सकता है। क्योंकि लिङ्गी नित्य परोक्ष रहता है। किन्तु समान्य ज्ञान से उस सम्बन्ध को स्थापित कर लिङ्गी का अनुमान होता है। जैसे इच्छादि गुणों से आत्मा का अनुमान से सिद्धि होती है। क्योंकि इच्छादि गुण हैं और गुण किसी द्रव्य में ही आश्रित रहता है। अतः जो इच्छादि गुणों का आधार वा आश्रय है वह आत्मा है। हम यहाँ सामान्य सम्बन्ध के आधार पर आत्मा का ज्ञान प्राप्त करते हैं। अतः इसे सामान्यतोदृष्ट अनुमान कहते हैं। कोई कोई इसको सामान्यतोऽदृष्ट अनुमान भी कहते है क्योंकि इसमें लिङ्गी साधारणतः अदृष्ट (अप्रत्यक्ष) पाया जाता है—सामान्यतो दृष्टं नाम—यत्राऽप्रत्यक्षे लिङ्गलिङ्गिनोः सम्बन्धे केनाचिदर्थेन लिङ्गस्य सामान्यात्प्रत्यक्षो लिङ्गी गम्यते, यथेच्छादिभिरात्मा, इच्छा दयो गुणा., गुणाश्चद्रव्य संस्थानाः, तद्येषां स्थानं स आत्मेति ॥वा० भा०॥ इस सामान्यतोदृष्ट अथवा सामान्यतोऽदृष्ट अनुमान से अतीन्द्रिय वस्तुओं में भी सामान्यलक्षण प्रत्यासत्ति से सम्बन्ध का निश्चय होता है एवं सामान्यतोदृष्ट लिङ्ग उपलब्ध होता हैं तथा उससे ईश्वर की सिद्धि होती हैं। जिस प्रकार 'सुखादि प्रत्यक्षमिन्द्रियजन्यम, जन्यप्रत्यक्षत्वात् घटवत्, तथा चेन्द्रियान्तरबाधे मनसः सिद्धिः। होती है,

उसी प्रकार क्षित्यादिकं कर्म सकर्तृकं कार्यत्वात्, घटवत्, तथा च कर्त्तान्तरबाधे सर्वज्ञसर्वशक्तिमान् ईश्वरसिद्धिः।' होती है जगत्कर्तृत्वेनैव चेश्वरस्यसार्वज्ञमप्यायाति, विलक्षणस्य जगतः सर्वज्ञेनैव रचयितुं शक्यत्वात्। यहाँ सर्वज्ञत्व सर्वशक्तिमत्व दृष्ट लिङ्ग से अदृष्ट लिङ्गी ईश्वर का अनुमान होता है। सामान्यलक्षणा प्रत्यासत्ति के द्वारा अनन्त विज्ञान पूर्ण अनन्त विश्व का कर्त्ता सर्वज्ञ और सर्वशक्ति मान ईश्वर अनुमान सिद्ध है। जो ज्ञान लक्षण प्रयक्ष भी कहा जा सकता है 'विमूढा नानु पश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः। गी० १५.१०

ब्रह्म के सम्बन्ध में अनुमान प्रमाण का खण्डन करते हुयेकहा जाता है कि जिस प्रकार पर्वतो वह्निमान्, धूमात, महानसवत् इस अनुमान में साध्य अग्नि का सपक्ष महानस में लिए धूम के साथ प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, उस प्रकार यहां साध्य ब्रह्म का किसी सपक्ष में प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता, जिससे किसी हेतु के साथ उसकी व्याप्ति का ज्ञान हो अतः व्याप्तिज्ञान का अभाव होने से ब्रह्म का अनुमान प्रमाण नहीं हो सकता।

परन्तु यह कथन अनुमान प्रमाण का यथार्थ ज्ञान एवं लिङ्ग तथा व्याप्ति का यथार्थ ज्ञान रखने के कारण सर्वथा भ्रान्त है। न तो सभी अनुमानों में समक्ष का होना अनिवार्य है और न सपक्ष में सर्वत्र लिङ्गी का प्रत्यक्ष दर्शन ही आवश्यक है। केवल व्यतिरेकी अनुमान में सपक्ष नही होता है वहाँ विपक्ष व्याकृतव

ही आवश्यक है जैसे जो जो चैतन्यवान् है सो सो आत्मवान् भी है इसका सपक्ष नहीं हो सकता। सभी दृष्टान्त पक्ष में ही अन्तर्भुक्त जता है। हत एव यह अन्वय नही होने से यहाँ केवल व्यतिरेकी व्याप्ति के आधार पर जो जो आत्मवान् नही है सो सो चैतन्यवान् भी नही है, जैसे पत्थर 'यद्याँ सपक्ष नही होने पर भी अनुमान हैं। पुनः लिङ्गी के समक्ष मे हेतु के साथ प्रत्यक्ष दर्शन भी आवश्यक नही है। लिङ्गतीन प्रकार के होते हैं–पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतो दृष्ट। इस सामान्यतो दृष्ट लिङ्ग का साध्य के साथ सपक्ष में दर्शन नही होता है–"सामान्य तो दृष्यमित्यनेन विपक्षादव्यावृतं लिङ्ग मुच्यते, कथम्, आकारप्रश्लेषात् सामान्यतोऽदृष्ट मिति तिष्ठतु तावद्विशेषः सामान्यतोऽपि न दृष्टम्, क्येति पक्ष सपक्षयोवृते रुक्तत्वात्तेपरिशेषा द्विपक्षो सामान्यतोऽपि न दृष्टमित्यवतिष्ठते।न्या० मञ्जरी॥' पुनः न्यायसार में भी अनुमान को दृष्ट विषयक और अदृष्ट विषयक भेद से दो प्रकार का कहा गया है–"साधनं लिङ्गम् तपद्द्विधम्। दृष्ट सामान्यतो दृष्टं च। तत्र प्रत्यक्षयोग्यार्थानुमापकं दृष्टं। यथा धूमोऽग्निः इति। स्वभाव विप्र कृष्टार्थानुमापकं सामान्तो दृष्टम्। "अत एव अदृष्टार्थ विषयक ईश्वर को अनुमान का लिङ्ग दृष्टाथ विषयक अग्नि के लिङ्ग से भिन्न होने के कारण उसके (ईश्वर के) अनुमान में अग्नि के अनुमान के लिङ्ग की समानता नही खोजी जा सकती पुनः प्रत्यक्ष प्रमाण भी दृष्टार्थ एवं अदृष्टार्थ भेद से दो प्रकार का कहा गया है– द्विविधः दृष्टादृष्टा र्थत्वात् न्या सू. १-१-८॥ जो प्रत्यक्ष

द्वारा जाना जा सकता है वह दृष्टार्थ एवं जो अनुमान द्वारा जाना जाता है वह अदृष्टार्थ–"अदृष्टार्थोऽपि प्रमाणमर्थस्याऽनुमानादिति (वा. भा.) अदृष्ट विषयक प्रत्यक्ष को भी सिद्धि अनुमान से ही होती है।

सांख्य दर्शन ने भी अतान्द्रिय पदार्थों की सिद्धि अनुमान से ही की है– "सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्दियाणां प्रतीतिरनुमानम्" कारिका ५।। अतिन्द्रियाणां प्रकृत्यादींनां सिद्धिरनुमानात यथामहत्तत्त्वं सकारणकं कार्यत्वात् घटवदिति, कारणान्तर बाधात् प्रकृति सिद्धिः। इस प्रकार अतीन्द्रिय पदार्थों की सिद्धि सामान्यतोदृष्ट अनुमान द्वारा सबों को मान्य है। चाहे वह ईश्वर वादि न्यायसूत्र कार गौतम हो चाहे अनीश्वर वादी सांख्यकारिकार ईश्वरकृष्ण।

अत एव व्याप्ति के लिए सपक्ष में लिङ्ग के साथ अतीन्दिय लिङ्गी का प्रत्यक्ष दर्शन खोजना लिङ्ग भेद और लिङ्गी भेद नहीं के कारण एवं व्याप्ति ज्ञान के अभाव के कारण हैं।

प्रत्यक्ष न होने वाले साध्य तथा हेतु के व्याप्ति के रूप सम्बन्ध रहने के कारण किसी एक अर्थ के साथ लिङ्ग के सादृश्य से अप्रत्यक्ष साध्यरूप अर्थ का अनुमान होता है। इसे सामान्य तो दृष्ट नामक अनुमान कहते है। इसका दृष्टार्थ विषयक अनुमानों सभेद है पार्थक्य है, उसी प्रकार जैसे पशुओं के दो भेद है–एक श्रृंग वाला पशु तथा दूसरा बिना श्रृंग वाला पशु

केवल शृंग वाले पशु के सम्बन्ध में ही पशुत्व का लिङ्ग शृंग हो सकता है शृंग रहित पशुओं के सम्बन्ध में नहीं । इसी प्रकार दृष्टार्थ विषयक अनुमानों में ही साध्य का लिङ्ग के साथ सपक्ष में दर्शन हो सकता है अदृष्टार्थ विषयक अनुमानों में नहीं । अत एव सामान्यतो दृष्ट अथवा सामान्य तोऽदृष्ट अनुमानों, जिसका लिङ्गी नित्य परोक्ष रहता है, में हेतु के साथ साध्य का किसी सपक्ष में प्रत्यक्ष दर्शन का आग्रह खरहे में भी शृंग देखने के दुराग्रह के समान अनर्गल है । साध्य के अनुरूप ही साधन होता है ।

स्वयं ब्रह्मसूत्रकार श्रीबादरायण ने भी–"फलमत उपपत्तेः । पूर्वं तु बादरायण हेतु व्यपदेशात्–ब्र. सू ३।२।३७,४०।" में इसी प्रकार सिद्ध किया है । वहां भी उनका हेतु और साध्य ईश्वर का किसी सपक्ष में प्रत्यक्ष दर्शन कहाँ है ? परन्तु इसी सामान्यतोऽदृष्ट अनुमान के द्वारा ही वहां ईश्वर का कर्म फल प्रदाता के रूप में सिद्धि की गयी हैं । फिर ब्रह्म सूत्र को प्रमाण मानने वाले अग्नि धूम के समक्ष महास में प्रत्यक्ष दर्शण के समान अतीन्द्रिय साध्य के विषय में भी समक्ष में प्रत्यक्ष दर्शन का आग्रह कैसे कर सकते है ? किंच ऊह को विशिष्टाद्वैत वेदान्त प्रत्यक्ष ही मानता है –"प्रतिभा संशयश्चोहः प्रत्यक्षत्वेन सम्मता" मानरत्नवली प्रत्यक्षखण्ड श्लो ४४" अत एव ऊह के द्वारा स पक्ष या विपक्ष में साध्य के साथ हेतु का रहना जानना भी प्रत्यक्ष ज्ञान ही है ।

अब अनुमान के सम्बन्ध में दूसरी आपत्ति यह की जाती है कि यह आवश्यक नहीं है कि पृथिवी आदि का जो कर्त्ता हो वह जीव भिन्न भी हो। यह सच है कि हम लोगों में से कोई भी इनके कर्त्ता नहीं हैं। परन्तु इसी से यह मानलेना आवश्यक नहीं हो सकता कि किसीभी जीव ने इसकी रचना नहीं की। मनुष्यों में एक से एक बढ़कर ज्ञान-शक्तिशाली पुरुष देखने में आते हैं। मनुष्य से देवताओं की शक्ति अधिक मानी जाती है। योगी तपस्वी आदि की विचित्र अलौकिक शक्तियां सब लोग मानते है ऐसे औकिक शक्तिशाली किसी जीवने ही इस पृथिवी अङ्कुर आदि पदार्थों की रचना की, ऐसा मानलेने में क्या आपत्ति है।

परन्तु यह आपत्ति बाल वार्ता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। आपत्तिकर्ता यह स्वयं मानते है कि हम लोगो में से कोई भी इसका कर्त्ता नहीं। मनुष्यों में एक से एक बढ़कर ज्ञान शक्ति शाली पुरुष देखे जाने की बात तो करते है, परन्तु इन लोगों की ज्ञान शक्ति सृष्टि कार्य करने की ज्ञान शक्ति का कौन न्यूनतम भाग है। यह वे भी नहीं बता सकते। जिस प्रकार एक मक्खी को उडने की शक्ति हैं किन्तु वह अनन्त ब्रह्माण्ड तक अनन्त दूरी तय करने की शक्ति का कौन सा न्यूनतम भाग हैं। वे यह भी नहीं बता सकते। अत एव असीम विज्ञान पूर्ण असीम शक्तिनिर्मित विश्व की रचना मनुष्य या कोई भी जीव कर सकता

है-ऐसा एक-"चन्द्र खिलौना लेंगे कहने वाला बालक ही कह सकता है। योगी तपस्वी लोगो की विचित्र और औकिकशक्ति देखी सुनी जाती है तो अवश्य परन्तु कोई एक हिमालय पर्वत को बनाना तो दूर रहे उसे नेपाल के उत्तर से उठाकर कन्या कुकारी के दक्षिण रखने में भी सक्षम नहीं है । फिर वह विश्व की रचना कैसे कर सकतीं। जोव से देवताओ की शक्ति अधिक कहते है, परन्तु देवताओ की शक्ति भी सीमित है एवं विभाजित हैं तथा अपनी नहीं है । अग्नि का कार्य जलाना वायुदेव का कार्य सुखाना उडाना जादि विभाजित है । एक देवता का कार्य दूसरा देवदा नहीं कर सकता:। पुनः वह सीमित है अग्नि सभी को जला नहीं सकते, वायु सभी को सुखा नही सकते । आत्मा में उनको शक्ति की प्रवृत्ति नहीं है। पुनः केनोप निषद् से सिद्ध है कि उन देवताओं की वह शक्ति भी अपनी नही प्रत्युत ब्रह्म की ही शक्ति है। अत एव वे विश्वस्रष्टा नहीं हो सकते। इसका स्रष्टा सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान् जो केवल एकही सर्वोच्च पुरुष हो सकता है। उसे आप जीव कहें देवता कहें चाहे जो कहे वही ब्रह्म है। संज्ञा मात्र भेद है। तात्त्विक नहीं ।

अब आपत्ति करते है कि इन सभी चीजों को एक ही व्यक्ति ने बनाया, इसमें क्या प्रमाण है ? हम देखते हैं कि छोटी कुटिया को एक ही मनुष्य बना लेता है , बडे म.

राजमहलों को अनेक मनुष्य मिलकर बनाते है। तब ऐसा भी-तो हो सकता है कि मही महीधर आधि बड़ी बड़ी चीजें एक व्यक्ति की बनायी न होकर अनेक पुरुषों की बनायी हुई हो। ऐसी हालत में उक्त अनुमान से सकल पदार्थ निर्माणक्षम् एक ईश्वर की सिद्धि कैसे हो सकती है ?

यह आपत्ति भीभ्रान्त है! यद्यपि बड़ा बड़ राज महल अनेक कारीगरों द्वारा बनाया जाता हैं, फिर भी वह किसी एक बडे कारीगर के सङ्केत और देखरेख के अधीन बनाया जाता है तभी उसके अवयवों में सामञ्जस एक रूपता ओर पूर्णसामाञ्जस एक वाक्यता और एकरूपता रहती है और वह बन पाता है उसी प्रकार यह विश्व जिसके प्रत्येक अवयवो में एक वाक्यता, एकरूपता और पूर्ण सामाञ्जस तथा नियामकत्व है: किसी एक बडे कारीगर के इच्छाधीन एक ही विज्ञान के द्वारा एक ही नियन्त्रण नियम से नियन्त्रित निर्मित और संचालित प्रत्यक्ष सिद्ध यह अनन्तः विश्व भी किसी एक ही सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् के इच्छा के अधीन निर्मित हो सकता है अनेकों के इच्छाधीन नही "मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्-गी० ९-१०- का भी यही तात्पर्य है कि ईश्वर की अध्यक्षता (स्वामी) में ही प्रकृति (ईश्वर की इच्छा शक्ति चराचरों को उत्पन्न करती है। अतः राजमहल के दृष्टान्त से भी जगत् के एक कर्तत्व में कोई बाध नही है, प्रत्युत एक कर्तृत्व की

[शेष भाग टाइटल २ पर]

दाहे तु पातकाभावान्न देहश्चात्मसंज्ञकः ।
इन्द्रियाणामचैतन्यान्न तान्यपि स चेतनः ॥५०॥
अनित्यत्वादनेकत्वात्तेषां नात्मत्वमीरितम् ।
यदि चक्षुर्भवेदात्मा नान्धो रूपं स्मरेत् क्वचित् ॥५१॥
श्रोत्रस्य यदि चात्मत्वं स्वीकृतं स्यान्महर्षयः ? ।
शब्दस्मृतिः पुनश्चात्र बाध्या स्यात् सर्वथाऽनघाः ॥५२॥

अर्थ—हे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यह चेतनाचेतनात्मक समस्त जगत् आपका शरीर है। (वा०यु०)

अपृथक्सिद्धसम्बन्ध से जो सर्वथा धार्य नियाम्य और शेष होता है वही चेतन का शरीर कहा जाता है ॥४९॥

आत्माके नाशक (हत्यारे) को पातकी कहा गया है। परन्तु मरने के पश्चात् शरीरके दाह करनेवालेको पातक नहीं लगता। इसलिए देह आत्मा नहीं है । इन्द्रियोंके चैतन्य (चेतनता) न होने से वे इन्द्रियां भी वह चेतन (जीव) नहीं हैं।।५०॥

इन्द्रियोंके अनित्य होनेसे और अनेक होनेसे इन्द्रियोंका आत्मत्व नहीं कहा। अर्थात् अनित्य होनेसे और अनेक होनेके हेतुसे इन्द्रियों को आत्मा नहीं कहा गया। क्योंकि आत्मा नित्य और एक होता है।

अब एक एक इन्द्रियोंके आत्मत्वका खण्डन करते हैं—यदि चक्षु इन्द्रियको आत्मा माना जाय तो अन्धा पुरुष कभी रूपका स्मरण न कर सकेगा। क्योंकि रूपका अनुभव करनेवावा चक्षुरूप आत्मा तो नष्ट हो चुका। यह नियम है कि जो जिसका अनुभव करता है वही उसी का स्मरण कर सकता है ॥५१॥

स्थूलोऽहमिति संवादो गुणीभूतो हि निश्चितः ।
तस्माद् देहस्य चात्मत्वं न स्यात् सिद्ध कदापि तु ॥५३॥
अन्याधीनप्रकाशस्तु स्याद् यश्च महर्षयः ।
अजडं तं विजानीथ ह्येषा शास्त्रीयकल्पना ॥५४॥
अजडश्चायमात्माऽस्ति स्वयं ज्योतिरिति श्रुतेः ।
बद्धा मुक्ताश्च नित्याश्च त्रिधाऽऽत्मानः समीरिताः ॥५५॥
ब्रह्मादिकीटपर्यन्ता देवदानवमानवाः ।
तिर्यञ्चः स्थावराश्चापि बद्धाः संसारिणो मताः ॥५६॥

हे पापरहित महर्षियो ! यदि श्रोत्र इन्द्रियको आत्मत्व माना जायगा तो श्रोत्रके नष्ट हो जाने पर बधिर (बहरे) पुरुषको शब्दानुभव करनेवाले श्रोत्ररूप आत्माके न होनेसे शब्दकी स्मृति बाध्य होगी अर्थात् न होगी ॥५२॥

'स्थूलोऽहम्' मै स्थूल हूँ ' यह प्रतीति गौण है मुख्य नहीं । इसलिए देहका आत्मत्व कभी नहीं सिद्ध हो सकता है ॥५३॥

हे महर्षियों ! जिस पदार्थका प्रकाश अन्यके अधीन न हो अर्थात् जो तत्व स्वयं प्रकाश हो उसे अजड जानो । यही शास्त्रीय मन्तव्य है ॥५४॥

'यत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति' इत्यादि श्रुतिके प्रमाण से यह आत्मा अजड़ है । बद्ध मुक्त और नित्य भेदसे जीव तीन प्रकारके कहे गये हैं ॥५५॥

ते चापि द्विविधा एके शास्त्राधीनत्वमागताः ।
परे चोच्छृङ्खला ज्ञेयाः शास्त्रधर्मपरिच्युताः ॥५७॥
शास्त्राधीनाश्च विज्ञेयास्तत्त्वस्य प्रबुभुत्सवः ।
बुभुक्षुत्व मुमुक्षुत्वभेदेन द्विविधा हि ते ॥५८॥
बुभुक्षवो द्विधाः प्रोक्ताः प्राणिनो जगति तले ।
अर्थकर्मपरा एके ततो धर्मपराः परे ॥५९॥
ये च धर्मपरास्तेऽपि द्विविधाः सन्ति जन्मिनः ।
देवान्तरेषु संलग्नाः श्रीरामचरणेषु च ॥६०॥
मुमुक्षवो द्विधा ज्ञेयाः कैवल्या मोक्षमार्गिणः ।
शणुध्वमृषयो वेदे मोक्षकामा द्विधा मताः ॥६१॥

ब्रह्माजीसे लेकर कीटपर्यन्त देव दानव मनुष्य पशु पक्षी तथा स्थावर (वृक्षलतादि) संसारी जीव बद्ध माने गये हैं ॥५६॥

वे बद्धजीव भी दो प्रकारके है । एक शास्त्राधीन दूसरे शास्त्रीय धर्मसे पतित उच्छृंखल ॥५७॥

तत्वके जिज्ञासु प्राणियोंको शास्त्र अनुसार जानना चाहिये । वे शास्त्राधीन दो प्रकारके हैं बुभुक्षु और मुमुक्षु ॥५८॥

संसारमें बुभुक्षु जीव दो प्रकार के होते हें । एक अर्थकाम पर दूसरे धर्मपर ॥५८॥

जो धर्मपर हैं वे प्राणी भी दो प्रकारके हैं । एक देवतान्तरपर दूसरे श्रीरामचरणरत ॥५९॥

कैवल्य और मोक्षपर (सायुज्यमुक्तिपरायण) भेदसे मुमुक्षु दो प्रकारके जानने चाहिये। हे ऋषियो मुनो वेद में मोक्ष चाहनेवाले

भक्ताश्चाथ प्रपन्नाश्च भक्ताश्चापि द्विधा मताः ।
साध्यसाधनभेदेन भक्तेर्द्वैविध्यकारणात् ॥६२॥
प्रपन्ना बहुधा ज्ञेया मोक्षेच्छुश्च त्रिवर्गवान् ।
एकान्ती परमैकान्ती दृप्त आर्त्तश्च विश्रुताः ॥६३॥
भेदाश्च बहवः सन्ति बद्धानां तु महर्षयः ! ।
मुक्ता निवृत्तसंसारा उच्यन्ते वेदवेदिभिः ॥६४॥
सूर्यमण्डलमाभिद्य सूर्यलोकमवाप्य च ।
विरजां सम्प्रतीर्याथ वैकुण्ठं सम्प्रविश्य च ॥६५॥

दो प्रकारके माने गये हैं भक्त और प्रपन्न । साध्य और साधन भेदसे भक्ति दो प्रकार की है । इसलिये भक्त भी दो प्रकारके हैं। साध्यभक्तिनिष्ठ और साधनभक्तिनिष्ठ ॥६१-६२॥

प्रपन्न बहुत प्रकारके हैं । उनका क्रम इस प्रकार है-प्रपन्न दो प्रकारके होते हैं। मुमुक्षु और धर्म अर्थ काम रूप त्रिवर्गपर। मुमुक्षु प्रपन्न भी दो प्रकारके होते हैं । एकान्ती और परमैकान्ती परमैकान्ती दो प्रकार के होते हैं । दृप्त और आर्त ॥६३॥

हे महर्षियो ! बद्धजीवोंके उक्त बहुत भेद हैं । जिन जीवों की संसारावस्था (जन्ममरणावस्था) निवृत हो जाती है उन्हें वेद वेत्ता लोग मुक्त कहते हैं । ।६४॥

अब मुक्तों कि स्थिति स्पष्ट रूपसे कही जाती है । सूर्य मण्डलको भेदकर सूर्यलोकको प्राप्त होकर तथा बिरजा नदीको पार करके वैकुण्ठमें प्रविष्ट होकर ॥६५।

तत्र हनुमदादींश्च साष्टाङ्गं प्रणिपत्य हि ।
श्रद्धया परया युक्ता आचार्यानितरांस्तथा ॥६५॥
भगवन्तं रामचन्द्रं धनुर्बाणविभूषितम् ।
श्रियः श्रिया च जानक्या कमले च विराजितम् ॥६६॥
दिव्यासनसमासीनं दिव्यभूषणभूषितम् ।
ब्रुवाणा नाथनाथेति प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥६७॥
स्वाङ्के श्रीरामचन्द्रेण करुणासागरेण च ।
स्थापिताश्च महाभागस्तेनैव च कटाक्षिताः ॥६८॥
ब्रह्मानुभव कर्त्तारो मुक्ता उच्यन्त आस्तिकैः ।
संसारमनवाप्तास्तु नित्या हनुमदादयः ॥६९॥

वहां श्रीहनुमान्‌जी आदि नित्यपार्षदोंको तथा अन्यान्य पूर्वाचार्योंको परमश्रद्धासे साष्टाङ्ग प्रणाम कर

धनुर्बाण तथा दिव्यभूषणोंसे विभूषित श्री की भी श्री श्रीजानकीजीके साथमें कमलके ऊपर दिव्यसिंहासन पर विराजित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके हे नाथ हे नाथ इस प्रकारसे दैन्य स्वरसे पुकारते हुए, और करुणासागर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा अपने अङ्क (गोद) में स्थापित किये हुए, उन्हीं भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे कृपाकटाक्ष द्वारा देखे हुए, ब्रह्मानुभव करनेवाले महानुभाव आस्तिकों द्वारा मुक्त जीव कहे जाते हैं। और जो कभी भी संसारावस्था अर्थात् जन्ममृत्युचक्रको नहीं प्राप्त होते हैं वे श्रीहनुमान्‌जी इत्यादि नित्य जीव हैं ॥६५-६९॥

ज्ञानेन यद्विहीनं तद्ध्यचित्तत्त्वं निगद्यते ।
शुद्धसत्त्वमिश्रसत्त्वसत्त्वशून्यत्रिभेदतः ॥७०॥
त्रिविधं तस्य भेदास्तु ज्ञेया सर्वे मनीषिभिः ।
ईश्वरः सर्वभूतानामादिकारणमुच्यते ॥७१॥
सर्वज्ञो ज्ञानशक्त्यादिकल्याणगुणभूषितः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रदाता रघुनन्दनः ॥७२॥

जो ज्ञानसे शून्य है वह अचित् तत्त्व कहा जाता है । वह शुद्धसत्व, मिश्रसत्व और सत्वशून्य भेद से तीन प्रकारका है । उसके सर्वभेद विद्वानों से जान लेना चाहिये । शुद्ध सत्वको ही त्रिपादविभूति परधाम अथवा मोक्षधाम कहते हैं । मिश्रसत्व प्रकृति को कहते हैं । इसके चौवीस भेद हैं । मूलप्रकृति महत्तत्व अहङ्कार मन श्रोत्र त्वक् चक्षु रसना घ्राण वाक् पाणि पाद पायु (गुदा) और उपस्थ (लिङ्ग) इत्यादि एकादश इन्द्रियां शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध नामक पञ्च तन्मात्रा तथा आकाश वायु तेज जल और पृथ्वी नामक पञ्च महाभूत । सत्वशून्यतत्व कालको कहते हैं । यह भूत वर्त्तमान और भविष्यद् भेद से तीन प्रकारका होता है । कालके एक होने पर भी उपाधि भेदसे निमिष कला आदि बहुत भेद हैं । इनका निरूपण श्रीटीलाचार्यजीकृत शिक्षासुधा इत्यादि ग्रन्थों में बहुत सुन्दर है ॥७०–७१॥

ईश्वर (भगवान् श्रीरामचन्द्रजी) सर्वभूतोंके आदिकारण कहे जाते हैं । सर्वज्ञ तथा ज्ञान शक्ति इत्यादि कल्याण गुणोंसे अलङ्कृत हैं ।

दिव्यविग्रहसंयुक्तोऽनन्तानन्दो जगत्पतिः ।
तथाप्यार्तिहरो रामो ह्यन्तर्यामी महाप्रभुः ॥७३॥
यद्यप्यात्मकृतैः पापैर्न कदापि स बध्यते ।
यथा बालाद्यवस्थाभिर्न जीवो दूष्यते क्वचित् ॥७४॥
तथाऽन्तश्चरमाणोऽपि न भवेद् दूषितो हरिः ।
परव्यूहादिभेदेन विज्ञेयः स च पञ्चधा ॥७५॥
बहुभिर्द्वारपालैश्च कोटपालैश्च संयुतः ।
महामणिसमाकीर्णे मण्डपे च विराजितः ॥७६॥
शोभया परया युक्तः किरीटकुण्डलादिभिः ।
महाराज्ञ्या च जानक्या भूलीलाभ्याञ्च सेवितः ॥७७॥

धर्म अर्थ काम और मोक्ष नामक चतुर्विध पुरुषार्थोंके देनेवाले अनन्त आनन्दको देनेवाले दिव्यदेहसे युक्त जगत्पति भगवान् श्रीरघुनन्दन ही सर्वेश्वर हैं ॥७२॥

आर्त (दुःख) का हरण करनेवाले महाप्रभु भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यद्यपि अन्तर्यामी हैं तथापि जीवोंके किये हुए कार्योंसे वे कभी भी नहीं बंधते हैं ।७३॥

जैसे बाल्य यौवन आदि अवस्थाओंसे जीव दूषित नहीं होता है उसी प्रकार अन्तरमें रमण करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भी जीवोंके कृत्यों से दूषित नहीं होते हैं ॥७४॥

पर व्यूह विभव अन्तर्यामी और अर्चावतार भेदसे वह ईश्वर को पांच प्रकारका जानना चाहिये ।७५॥

परो हि भगवान् रामः परे लोके शुशोभितः ।
सङ्कर्षणश्च प्रद्युम्नोऽनिरुद्ध इति भेदतः ॥७८॥
विज्ञेयश्च त्रिधा व्यूहो जगत्सृष्ट्यादिकारकः ।
पूर्णो ज्ञानबलाभ्याश्च सङ्कर्षण इति स्मृतः ॥७९॥
वीर्यैश्वर्ययुतस्तत्र प्रद्युम्न इति कथ्यते ।
शक्तितेजोविशिष्टस्तु ह्यनिरुद्ध इतीरितः ॥८०॥
मत्स्यादिर्विभवो ज्ञेयो मुख्यो गौणश्च स द्विधा ।
उपास्यः पुरुषैर्मुख्यो न च गौणः कदाचन ॥८१॥

बहुत से द्वारपाल और कोटपालोंसे युक्त तथा महामणिजडित मण्डपमें शोभित ॥७६॥

किरीट कुण्डलादिकों और परमशोभासे युक्त महाराणी श्रीजानकीजी तथा भू लीला देवियोंसे सेवित परलोकमें (सर्वलोकोंसे परलोक श्रीसाकेतमें) सुशोभित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही'पर' ईश्वर हैं । ॥७७॥

सङ्कर्षण प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इस भेदसे जगत्सृष्टिस्थित्यादिकारक 'व्यूह' तीन प्रकारका है । ज्ञान और बलसे पूर्ण व्यूहको 'सङ्कर्षण' कहते है,

वीर्य और ऐश्वय युक्त व्यूहको 'प्रद्युम्न' कहते हैं तथा शक्ति और तेजसे युक्त व्यूहको 'अनिरुद्ध' कहते हैं ॥.७८–७९–८०॥

मत्स्यादि तत्तत्सजातीय रूपसे 'पर' ईश्वरका (भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का) जो आविर्भाव (अवतार) होता है वह' 'विभव' कहा जाता है ।

सर्वत्र सर्वदा यस्तु जीवांस्त्यक्तुं न च क्षमः ।
अन्तर्यामी स विज्ञेयो जीवदोषैरदूषितः ॥८२॥
देशकालादिनियमै रहितश्च महाप्रभुः ।
धातुपाषाणकाष्ठादिकृतविग्रहमाश्रितः ॥८३॥
श्रीरामः स परं ब्रह्म जानकीसहितो विभुः ।
अर्चावतारो विज्ञेयः कृपाशीलो गुणाम्बुधिः ॥८४॥
एवं पञ्चप्रकारेण ह्येकोऽपि स महाप्रभुः ।
विभक्तो भगवान् रामः सर्वलोकैकरक्षकः ॥८५॥
सेवितः परया भक्त्या सन्तुष्टः स हरिः सदा ।
स्वाश्रितेभ्यश्च दासेभ्यः सायुज्यं सम्प्रयच्छति ॥८६॥

मुख्य और गौण भेदसे विभव दो प्रकारका है । मनुष्यों को मुख्यावतारकी ही उपासना करनी चाहिये । गौण अवतारकी उपासना कभी नही करना चाहिये ॥८१॥

सर्वत्र तथा सर्वदा अर्थात् गर्भ तथा नरकादि निकृष्ट अवस्थाओं में भी जीवोंका त्याग करने में असमर्थ तथा जीवदोषों से अदूषित 'ईश्वर' को अन्तर्यामी जानना चाहिये ॥८२॥

देशकालादि के नियमसे रहित महाप्रभु धातु पाषाण तथा काष्ठादिकों के किये हुए विग्रह (मूर्तिरूप शरीर) का आश्रय किये हुए श्रीजानकीजी के सहित विभु कृपाशील और गुणसिन्धु परब्रह्म उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को ही अर्चावतार जानना जाहिये ॥८३॥ ॥८४॥

सर्वलोकों के अद्वितीयरक्षक महाप्रभु वे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी एक हैं तो भी उक्तप्रकार से पांचरूप में विभक्त हैं ॥८५॥

परमभक्ति से सेवित होने पर सन्तुष्ट हुए वे भगवान् हरि (पापों के हरण करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी) सदा स्वाश्रित-तदासों को) सायुज्य मुक्ति देते हैं ॥८६॥

इति तत्त्वत्रय बोधप्रकरण

इति वाल्मीकिसंहितायां द्वितीयोऽध्यायः

श्री पुरुषोत्तमप्रपत्तिषट्कम्

रामिति बीजवान् नाथ ? मन्त्रराजोहि तारकः ।
तं जपामि तवप्रीत्यै पाहि मां पुरुषोत्तम ? ॥१॥
राम ? दीनोऽनुकूलोऽहं विश्वस्तोऽप्रातिकूल्यवान् ।
त्वयिन्यस्यामि चात्मानं पाहि मां पुरुषोत्तम ? ॥२॥
मामनाथं स्वशेषं च न्यासितं स्वार्थमेवहि ।
निर्भर स्वभरत्वेन पाहि मां पुरुषोत्तम ? ॥३॥
यस्मिन् देहेऽहमानीतः कर्मणा स्वेन राघव ? ।
तदन्ते देहि सायुज्यं पाहि मां पुरुषोत्तम ? ॥४॥
न गतिर्जानकीनाथ ? त्वां विना परमेश्वर ? ।
परां गतिं प्रपन्नां त्वां पाहि मां पुरुषोत्तम ? ॥५॥
मोहितो मायया तेऽहं दैव्या गुणविशिष्टया ।
शरण्यं त्वां प्रपन्नोऽस्मि पाहि मां पुरुषोत्तम ? ॥६॥

बोधायनमहर्षि श्री पुरुषोत्तमनिर्मितम् ।
प्रपत्तिषट्कमेतच्छ्री भक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

बाल्मीकिसंहिता

तृतीयोऽध्यायः ३

ऋषयऊचुः

राममन्त्रस्य माहात्म्यं कथितं भवता पुरा ।
तथापि चाधिकं श्रोतुमीहानस्तु प्रजायते ॥१॥
भगवंस्तत् कृपां कृत्वा दीनेष्वस्मासु सुव्रत ! ।
कथयस्व कथां काञ्चिद् येनास्माकं सुखं भवेत् ॥२॥
राम एवास्ति सर्वेषामस्माकं जीवनं परम् ।
रामे च योगिनः सर्वे रमन्ते मोक्षकाङ्क्षया ॥३॥
त्रयाणामपि लोकानां पाता धाता च सर्वथा ।
संहर्ता चापि श्रीराम उच्यते सकलैर्बुधैः ॥४॥

हे बाल्मीकिजी ! आपने पहले श्रीरामजी के मन्त्रका माहात्म्य कहा तो भी अधिक सुनने की हमारी इच्छा होती है ॥१॥

इससे हे भगवन् ! सुव्रत दीन जन हम पर कृपा कर कोई कथा कहिये जिससे इसमें हमारा सुख [हमारी रति] हो ॥२॥

हमारे सभी के श्रीरामजी ही उत्कृष्ट जीवन धन है। श्रीरामजी ही में सभी योगिजन मोक्षकी इच्छा से रमण करते है ॥३॥

तीनों लोकों के सर्वदा पालक धारयिता सब प्रकार से हमेशा संहारक श्रीरामजी हीं है ऐसा बुधों से कहा जाता है ॥४॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रदाता रघुनायकः ।
श्रूयते सततं वेदे जानकीजानिरीश्वरः ॥५॥
सुराणां च परित्राता निहन्ता रक्षसां प्रभुः ।
सर्वशक्तिसमायुक्तो रघुनायक ईश्वरः ॥६॥
तस्मात् त्वं करुणासिन्धो ! रामभक्तिपरायण ! ।
राममन्त्रस्य माहात्म्यं याथार्थ्येन वदस्व नः ॥७॥

वाल्मीकिरुवाच

ऋषयः श्रूयतामद्य सर्वपापविनाशनम् ।
राममन्त्रस्य माहात्म्यं देवानामप्यगोचरम् ॥८॥
लक्षत्रयं समाधिस्थो राममन्त्रं जपन् सदा ।
अपुत्रो लभते पुत्रं सर्वशत्रुविकर्षणम् ॥९॥

श्रीरघुनाथजी धर्म अर्थ काम और मोक्षों के देने वाले श्रीजानकी पति ईश्वर है ऐसा हमेशा वेदों में सुना जाता है ॥५॥

श्रीरघुनायक ईश्वर प्रभु देवों के रक्षक राक्षसों के मारनेवाले सब शक्तियों से संयुक्त हैं ऐसा भी वेद में कहा जाता है ॥६॥

अतः हे करुणासागर श्रीरामभक्ति में तत्पर ! मुनीश्वर ? श्रीरामजी के मन्त्र का माहात्म्य हमें यथार्थ भाव से कहिये ॥७॥

श्री वाल्मीकिजी ने कहा हे ऋषियों ! आज आप लोग श्रीरामचन्द्रजी के मंत्र का माहात्म्य जो सब पापों का नाश करने वाला देवों के लिए भी अगोचर है उसे सुनिये ॥८॥

समाधिस्थ हो श्रीरामचन्द्रजी का मन्त्र तीन लाख जो सदा जपता है वह अपुत्र हो तो भी सर्वशत्रुनाशक पुत्र प्राप्त करता है ॥९॥

मोक्षस्तु नियतस्तस्य वाक्सिद्धिश्च प्रजायते ।
तेजसा सञ्ज्वलन्नेव नित्यमित्थं प्रतीयते ॥१०॥
पुराकश्चिन्महापुण्यो 'वत्सलो' नाम भूपतिः ।
तेन मन्त्रस्य माहात्म्यमनुभूतं यथा, तथा ॥११॥
कथ्यते श्रूयतां सम्यक् सावधानेन चेतसा ।
तच्छ्रवणेन युष्माकं सुसिद्धं स्यान्मनीषितम् ॥१२॥
एकदा 'वत्सलो' राजा सर्वभूतहिते रतः ।
कार्तिके मासि सञ्चिन्वन्नेकादश्यां व्रतं ध्रुवम् ॥१३॥
प्रथमे प्रहरे राजा दिनस्य, विदुषां गणैः ।
यज्ञभूमौ यजन् देवानासीत्तिष्ठन् महामनाः ॥१४॥

उसके लिये मोक्ष तो नियम से सिद्ध है ही उसकी वाणी की सिद्धिभी होती है, तथा हमेशा तेज से देदीप्यमान है ऐसा प्रतीत होता है ॥१०॥

इस विषयमें मैं आप लोगों को एक प्रसंग कहता हूँ । पहले कोई बडा धर्मात्मा 'वत्सल' नामक राजा हुआ, उसने मन्त्र राज का महात्म्य जैसे जाना ॥११॥

वैसे कहा जाता है कि हे ऋषियों ! आप लोग सावधान होकर मन को स्थिरकर अच्छी तरह सुनिये जिसके सुनने से आप लोगों का अभिलषित श्रीराममन्त्रराजमाहात्म्य अच्छी तरह सिद्ध हो जायगा ॥१२॥

एक समय में सभी प्राणियों के हित में रत 'वत्सल'

तस्मिन् काले महाक्रोधो विप्रः कश्चित् समाययौ ।
घर्षन् दन्तांश्च रक्ताक्षः कोपेन स्फुरिताधरः ॥१५॥
यज्ञभूमिं स सम्प्राप द्वारपालैरवारितः ।
तत्र तं भूपतिं दृष्ट्वा क्रोशयामास स द्विजः ॥१६॥
तव राज्ये महीपाल ! ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
कोटयो ब्राह्मणा नित्यं संवसन्ति यजन्ति च ॥१७॥
वीक्षस्व यजमानानामस्माकं शान्तिशालिनाम् ।
केनापि रक्षसा नूनं यज्ञः सम्प्रत्युपद्रुतः ॥१८॥

राजा कार्तिक महीने में एकादशी तिथि में निश्चित व्रत करता हुआ ॥१३॥ वह मनस्वी राजा दिनके प्रथम पहर में पण्डितों के समूहों के साथ यज्ञभूमि में देवों का यजन कर रहा था ॥१४॥

उसी समय में कोई वडा क्रोधी एक ब्राह्मण आया वंह द्वांतो को धिसता हुआ लाल आंखवाला क्रोध से हलता हुआ ओठवाला था ॥१५॥

द्वाररक्षकों से अवारित हो यज्ञभूमिमें प्राप्त हो गया उस यज्ञभूमि में वत्सल राजा को देख कर वह ब्राह्मण आक्रोश और आवेग से कहने लगा कि हे भूप ! आपके राज्य में अनेक कोटि ब्राह्मण नित्य वास करते हैं और यज्ञ भी किया करते हैं ॥१७॥

हे राजन् ! देखिये निश्चिन्त शान्ति से यज्ञ करते हुए हमारा यज्ञ किसी राक्षस से अभी उपद्रव युक्त हुआ है ॥१८॥

निश्चिन्तेन त्वया राजन् ! साध्यते स्वार्थ एव हि ।
चल, रक्ष महायागानस्माकं राक्षसाच्छुभान् ॥१९॥
अन्यथा ते कुलं सर्वं दहेयं शापवह्निना ।
सत्यं तेऽहं वदाम्येतत् कर्तव्यो नात्र संशयः ॥२०॥
श्रुत्वेदं विप्रवाक्यं स तस्मिन्नेव क्षणे नृपः ।
धनुर्बाणौ समादाय वनं प्रतिययौ मुदा ॥२१॥
यत्रैव यजमानास्ते विप्रा आसन्नुपद्रुताः ।
तत्रैव स समागत्य राक्षसं च तथाविधम् ॥२२॥
अवलोक्य महावीरः क्रोधसंव्याप्तमानसः ।
एकेनैव च बाणेन निजघान स राक्षसम् ॥२३॥

हे राजन् ! आप चिन्तारहित हो अपने अर्थ का साधन करते हैं चलिये उस शुभ हमारे यज्ञों की राक्षस से रक्षा कीजिये ॥१९॥

अन्यथा यानि हमारे यज्ञों की रक्षा नहीं करने पर शाप-रूप अग्नि से आप के सभी कुलों को भस्म कर दूँगा । यह सत्य कहता हूँ इसमें संदेह नहीं करना चाहिये ।२०॥

इस प्रकार का ब्राह्मण का वाक्य सुनकर वह वत्सल राजा उसी क्षण में धनुष और बाणों को लेकर हर्ष से वन की ओर चला ॥२१॥

जहां वे ब्राह्मण यज्ञ करते हुए उपद्रुव थे वहीं वह वत्सल राजा पहुँच कर उपद्रवी राक्षस को ॥२२॥

प्रसन्नैर्ब्राह्मणैः सर्वैराज्ञप्तो नृपसत्तमः ।
राजधानीं समागच्छन् हृदये स व्यचीचरत् ॥२४॥
इतः समीपे देशे हि कन्दलं नाम जङ्गलम् ।
विद्यते यत्र विद्यन्ते वहवः सुन्दरा मृगाः ॥२५॥
हत्वा कतिपयाँस्तांस्तु समादाय ततः शनैः ।
राजधानीं च गच्छामि सर्वसौख्यसमाकुलम् ॥२६॥
एतद् विचार्य राजा स प्रययौ 'कन्दलं' ततः ।
निर्भये यत्र वहवो विचरन्ति स्म ते मृगाः ॥२७॥
प्राप तत्राचिरेणैव भूमिपालो महाबलः ।
पश्यंश्च जाङ्गलीं शोभां मृगव्यूहं व्यलोकयत् ॥२८॥

देखकर क्रोध से व्याकूलमनवाले उस महाशूर राजा ने एक ही शर से राक्षस को मार दिया ।२३॥

तव प्रसन्न हुए सभी ब्राह्मणों से आज्ञा ले वापस आने की आज्ञा प्राप्त कर वह राजा अपनी राजधानी के तरफ आता हुआ मन में विचार किया कि ॥२४॥

यहाँ से नजदीक प्रदेश में कन्दल नाम का जङ्गल है वहां बडे सुन्दर हरिण हैं ॥२५॥

वहां कितने ही मृगों को मार कर उन्हें लेकर सभी समृद्धि युक्त अपनी राजधानी को धीरे से जाऊगा ॥२६॥

यह विचार कर वह राजा 'कन्दल' जङ्गल के लिए वहां से चल पडा । जहां बहुत हरिण निर्भय घूम रहे थे ॥२७॥

क्रीडन्त केचनाऽऽसँस्तु खादन्त केचनासत ।
निर्मलापे तटाकेऽपः पिवन्तः केचनासत ॥२९॥
मृगवालान् समादाय धापयन्त्यो मृगस्त्रियः ।
उपविष्टाश्च तत्राऽऽसन् पादपानामधस्तले ॥३०॥
केचिद् वालमृगास्तत्र वृक्षमूले समन्ततः ।
क्रीडन्ति स्म सुखेनैव कुर्वन्तः शृङ्गघर्षणम् ॥३१॥
केचिच्चापि मिथस्तत्र प्रेम्णा वालस्वभावतः ।
युद्ध्यन्ते स्म चिरेणैव शृङ्गाशृङ्गि सुखाकरम् ॥३२॥
धनुष्पाणिं विलोक्यापि ह्यायान्तमवनीपतिम् ।
अव्याकुलाः स्थिता आसँस्तत्रसुर्मनसाऽपि न ॥३३॥

वडा बलशाली वह राजा उस कन्दल जङ्गल मे जल्दी पहुचा जंगल की शोभा को देखता हुआ मृगसंघ को देखा ॥२८॥

वे कोई खेल रहे थे, कोई घास चर रहे थे, कोई स्वच्छ जल वाले तलाव में पानी पी रहे थे, ॥२९॥

हरिणिया हरिण के बच्चे को लेकर दूध पीला रही थी और कितने ही पेड़ों के नीचे बैठी हुई थी ॥३०॥

कोई मृग के बच्चे पेड के जड में चारों तरफ सुख से शींग का घर्षण करते हुए ॥३१॥

वहीं कोई परस्पर बच्चे के स्वभाव से सुखोत्पाद के लिये शींग से शींग भीडाते हुये दीर्घकालतक युद्ध कर रहे थे ॥३२॥

हाथ में धनुष लिये आते हुए राजा को देखकर अव्याकुल ठहरे हुए वे मनसे भी उद्विग्ननहीं हुए ॥३३॥

पूर्वजन्मकृतेनैव केनचित् पापकर्मणा ।
विकृतास्तस्य वै बुद्धिर्धार्मिकस्यापि भूपतेः ॥३४॥
दंशानपि वारयितुं यो न धर्मधिया मतिम् ।
कदाचिदपि सुप्तोऽपि कृतवान् दीनरक्षकः ॥३५॥
मृगानेवं निषण्णान् स एवं निर्दयतां गतः ।
धनुषि स्थापयामास तत्राऽऽशु विशिखान् नृपः ॥३६॥
मृगमेकं निहत्यैव व्रजतः पथि तस्य वै ।
गज एको महारत्नैर्वेष्टितो दृष्टिमाययौ ॥३७॥
तमेवं भूपति दृष्ट्वा स्वायत्तीकृत्य विद्यया ।
आरुरोह च तत्पृष्ठे मृगं चास्थापयत्ततः ॥३८॥

पूर्वजन्म में किये हुए किसी पाप कर्म से उस धार्मिक राजा की बुद्धि विगड गई । ॥३४॥

दीन रक्षक वत्सल राजा अधर्म के भय से दंशों को भी हटाने के लिए स्वप्न में भी कभी नहीं विचार करता था ।।३५॥

वही राजा बैठे हुए मृगों के प्रति निर्दय हो वहां धनुष पर शीघ्र बाण स्थापित करने लगा ।।३६

एक मृग को मारकर रास्ते में जाते हुए उसे महारत्नों से शोभित आच्छादित एक हाथी नजर में आया ।।३७॥

राजा उसे इस प्रकार देखकर वशीकरण विद्या द्वारा उसे वश कर उसके पीठ पर चढा और चढने के वाद मृग को भी चढाया ॥३८।

सुखोपविष्टमात्मनं जानाति स्म यदा नृपः ।
महत् कुतूहलं जातं तदा तस्य निशम्यताम् ॥३९॥
त्रितालदघ्न एवाभूत् सहसा स गजस्तदा ।
राजा तत्पृष्ठमारूढो बिभीतिं जन्मिवान् पराम् ॥४०॥
स करीन्द्रस्तदा भूपमुक्तवानेवमुच्चकैः ।
राजंस्त्वमतिमूर्खोऽसि निष्करुणोऽसि पापकृत् ॥४१॥
सुखसुप्तांश्च विश्वस्तान् वञ्चयित्वा मृगानिमान् ।
एकं तेषु च संबध्य कुकृत्यं कृतवान् नृप ! ॥४२॥
यद् दुष्कर्म कृतं राजस्त्वया धर्म विघातिना ।
तत्फलं भुज्यतां सद्यः पतन् प्राणानितो जहि ॥४३॥

जब राजा 'वत्सल' अपने को सुख से बैठा हुआ जाना नि समझा कि मैं ठीक से बैठ गया हूँ तब बडा कुतूहल हुआ ो सुनिये ॥३९॥

उस समय में वह हाथी तीन ताड वृक्षों के समान ऊचा हो या गज के पीठ पर चढा हुआ राजा बडा भय पाया अर्थात् य भीत हुआ ॥४०॥

वह गजराज उस काल में उच्च स्वर से राजा के प्रति कहने गा कि हे राजन् ! तू बडा मूर्ख है निर्दय और पापकारी है ।४१।

सुख से सोए हुए तुम्हारे पर विश्वास कर चुके इन मृगों को ा कर उनके बच्चों में से एक मृग को मार कर तुमने कुकर्म िया है ॥४२॥

राज्यं च तव नष्टं स्यादपुत्रस्य कुकर्मणः ।
कृमियोनिं समापद्य त्वं खिद्यस्व शतं समाः ॥४४॥
राजा तद्वचनं श्रुत्वा ह्येवमन्तर्भिदाकरम् ।
पश्चात्तताप मूढात्मा दुःखसंविग्नमानसः ।४५॥
अश्रूणि पातयन् राजा विलपञ्छोकविह्वलः ।
अञ्जलिं शिरसि न्यस्य प्रोचे विगतचेतनः ॥४६॥
अकर्तव्यं कृतं कर्म मयाऽवश्यं तु पापिना ।
तेन मह्यं महाभाग क्रुध्यसे [स] त्वं भृशं गज ॥४७॥
किन्तु कस्त्वमिति ज्ञातुं समीहा जायते मम ।
विज्ञापयस्व तन्मह्यं नूनं त्वं धर्मकोविद ! ॥४८॥

हे राजन् धर्म विघाती तूने जो दुष्कर्म किया उसका फल तुरत तुम भोगों इस मेरे पीठ से गिरता हुआ प्राणों को छोड कर अर्थात् मर जाओ ॥४३॥

कुकर्मी और पुत्र रहित तेरा राज्य नष्ट हो जायगा, तू कीडे की योनि पाकर सौ वर्ष तक दुःखी होगा ॥४४॥

अन्तः करण का विदारक उसका वचन सुनकर मूढात्मा राजा दुःख में पडा हुआ मन ही मन पीछे पछताने लगा ।४५॥

राजा शोक से व्याकुल हो आंखों से आसू गिराता हुआ नष्ट चेतन हो शिर पर अञ्जलि कर बोला ॥४६॥

हे राजन् ! पापी मैं ने अकर्तव्य कर्म किया उससे हे महाभाग गज ! तुम अत्यन्त क्रोध करते हो ॥४७॥

हे देव ! हे विपिननायक ! नागराज ! ।
हे सत्त्वनाथ ! गजराज ! विशालकाय ! ।
तुभ्यं नमोऽस्तु भगवन्नतिदिव्यरूप !
देवोऽसि वा सुरगजोऽस्यथ योऽसि सोऽसि ॥४९॥

सत्यं कृतं पतितपावन ! पापमद्य
दुर्बुद्धिना तु मयका विदुषां वरिष्ठ ? ।
हा हा भवेत् कथमये मम नाथ ? शुद्धि-
र्हे दीर्घशुण्ड ! गजराज ! वनाधिराज ? ॥५०॥

आजन्मनो नहि मयाऽऽचरितं गजेन्द्र !
पापं कदापि सुरसेवन तत्परेण ।
तस्मात् क्षमस्व गजनायक ! पापमेक-
मज्ञानगर्तपतितस्य दुरात्मनो मे ॥५१॥

किन्तु तुम कौन हो यह समझ ने के लिये मेरी इच्छा हो रही है । हे धर्म विज्ञ ! अवश्य आप यह मुझे बताइये ॥४८॥

हे देव ! वन के स्वामी हाथि के नाथ ! हे सत्यनाथ बडा शरीर वाले ! तुम्हें नमस्कार हो आप वडा दिव्य रूप वाले ! देव वा देवराज कें हाथी है जो हों सो आप कों नमस्कार है ।४९।

हे पतित पावन ! विद्वानों में श्रेष्ठतर ! दुर्बुद्धि मैंने सचमुच पाप किया है हे बड़ीसूड वाले ! हाथी के राजा ! वन के राजा मुझे विचार है मेरी शुद्धि किस प्रकार सें होगी ? ॥५०॥

हे गजराज जन्म से लेकर मैंने कभी भी देव की सेवा में

मातः ! पितस्तव सुतोऽद्य विपद्यतेऽद्य [थ]
निस्सन्ततिस्तु भविता तव वंश एषः ।
युष्मभ्यमद्य वद को जगतीतलेऽस्मिन्
निर्वाप [मम्बु खलु] दास्यति योग्यकाले ॥५२॥

हा राम ! हा जननि जानकि ! रक्ष शीघ्रं
त्रायध्वमद्य नितरां कुलदेवता मे ।
मत्पापकर्म फलतोऽपरवंश्य कीर्ति-
[मेतां सुधांशुधवलां] प्रलयं व्रजन्तीम् ॥५३॥

निपपात पृथिव्यां स विलपन्नित्थमाकुलः ।
निश्चेतनोऽपि सञ्जातः क्षणं तु तदनन्तरम् ॥५४॥

तत्पर होने के कारण पाप नहीं किया है इसलिये हे गजनायक ! अज्ञानरूप गड्ढे में गिरे हुए दुरात्मा मेरा एक अपराध को क्षमा कीजिये ॥५१॥

हे माताजी! हे पिताजी ! आज तेरा लडका मर रहा है, तेरा यह वंश सन्तानरहित होगा । तुम लोगो के लिये आज कहिये या कभी भी इस पृथिवीतल में पिण्ड क्रिया जलतर्पण उचित समय पर कौन देगा ? ॥५२॥

हे रामचन्द्रजी ! हे माता श्री जानकी जी ! मेरी रक्षा कीजिये मेरी कुल देवताएं आज मेरी रक्षा कीजिये मेरे कर्म के फल से यह चन्द्र के समान स्वच्छ वडी से बडी वंश की कीर्ति नाश प्राप्त होती हुई की रक्षा कीजिये ॥५३॥

लघुरूपधरो हस्ती ह्युपतस्थौ समीपतः ।
शुण्डेनोत्थाप्य तं भूपं व्याजहार वचस्त्विदम् ॥५५॥
राजन्नुत्तिष्ठ बुध्यस्व श्रृणुचेदं वचो मम ।
यत् त्वया ज्ञानहीनेन पूर्वकर्म विपाकतः ॥५६॥
पापमाचरितं तस्मात्तव क्षेमो विनङ्क्ष्यति ।
शापो यस्तु मया दत्तो न स मिथ्या भविष्यति ॥५७॥
किन्त्येकेन प्रयत्नेन क्षीणशक्तिर्भविष्यति ।
यदि स्यात् प्राणहानिस्ते विकलाः स्युः प्रजास्तव ॥५८

इस प्रकार विलाप करता हुआ राजा भूतल में व्याकुल हो गिर पडा और चेष्टा रहित भी हो गया ॥५४॥

तब वह हाथी तुरन्त छोटा रूप धारणकर राजा के पास उपस्थित हूआ और सूढ से उस राजा को उठाकर यह वचन कहने लगा कि ॥५५॥

हे राजन् ! तुम उठो मेरा यह वचन सुनो जो ज्ञान से रहित तूने पूर्व कर्म के विपाक से पाप किया है उससे तेरा कल्याण नष्ट हो जाएगा ॥५६॥

मैंने जो शाप दिया है वह मिथ्या नहीं होगा किन्तु एक प्रयत्न हैं कि पाप क्षीणशक्ति वाला होगा ॥५७॥

यदि तेरे प्राणों का त्याग हो जायगा तो तेरी प्रजा विकल यानि दुःखी होगी एंक भी ऐसा पुरुष नहीं है जों सब प्रजाओं की रक्षा करेगा ॥५८।

नैकोऽप्यस्तीदृशो यस्तु रक्षेत् सर्वाः प्रजाः किल ।
सर्वा एव प्रजा अद्य त्वां विना पृथिवीपते ! ॥५९॥

उच्छृङ्खलत्वमेत्यात्र प्राप्नुयुर्धर्महीनताम् ।
कुलस्त्रियो विनष्टाः स्युः कुलधर्म परिच्युताः ॥६०॥

सङ्कराणां च संवृद्धिर्भवेन्नूनं ततः परम् ।
तस्मान्नाशयितुं शापं मया दत्तं महीपते ! ॥६१॥

उपायः सरलोऽस्माभिः कथ्यते स निशम्यताम् ।
राममन्त्रस्य माहात्म्यं सर्वपापहरस्य च ॥६२।

गीयते सर्वशास्त्रेषु वेदेषु च तथैव च ।
मोक्षार्थी मोक्षमागच्छेत् पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ॥६३॥

हे भूप तेरे बिना आज सभी प्रजाएं उद्दण्डता प्राप्तकर धर्म रहित हो जायगी ॥५९॥

कुल स्त्रियां कुल धर्म से गिरी हुई होकर विनष्ट हो जायगी उसके बाद वर्ण संकरों की अच्छी तरह वृद्धि हो जायगी ॥६०।

इस हेतु से राजन् मुझ से दिए हुए शाप को नष्ट करने के लिये हम उपाय जो कहते हैं उसे सुनो ॥६१॥

श्री रामचन्द्रजी के सर्व पाप नाशक मन्त्र राज का माहात्म्य सब शास्त्रों में और वेदों में प्रचूर रूप से वर्णित है ॥६२॥

उससे मोक्षार्थी मोक्ष पातें है पुत्रार्थी पुत्र तथा विद्यार्थी विद्या और धनार्थी धन पाते है ॥६३॥

विद्यार्थी प्राप्नुयाद् विद्यां धनार्थी प्राप्नुयाद् धनम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां नास्तिकोऽपि च तादृशः ॥६४॥
यं च नाराधितो दद्याद् राममन्त्रः प्रतापवान् ।
ब्रह्महत्या सुरापानं कनकाहरणं तथा ॥६५॥
सङ्गमो गुरुपत्न्या च महापातकमुच्यते ।
महापातकनाशोऽपि मन्त्राणां क्षणेन च ॥६६॥
जपतो राममन्त्रस्य भवतीह न संशयः ।
अज्ञानेन कृतं कर्म नश्यत्यल्पप्रयत्नतः ।६७॥
कृतवानसि पापं त्वमज्ञानेनैव भूपते ! ।
अज्ञानेन कृतं कर्म न च पापाय कल्पते ॥६८॥

धर्म अर्थ काम और मोक्षों में कोई ऐसा नहीं है जो प्रतापशाली श्रीराम मन्त्रराज आराधित होनेपर नहीं दे सकता है, अर्थात धर्माथ काम मोक्षान्त सभी पुरुषार्थ श्री राम मन्त्रराज आराधना करनेवाले को दे सकता है ॥६४।

ब्रह्महत्या' मद्यपान स्वर्ण की चोरी गुरु पत्नी के साथ मैथुन ये महापाप कहे जाते हैं ॥६५॥

श्रीरामचन्द्रजी के मन्त्र राज के जपने से मनुष्यों के महापातकों का नाश क्षण में हो जाता है इस में संशय नहीं है॥६६॥

अज्ञान से किया हुआ कर्म थोडे प्रयत्न से नष्ट हो जाता है राजन् ! तू अज्ञान से पाप कर चुका है ॥६७॥

अज्ञान से किया हुआ कर्म पाप के लिये नहीं होता है।

यत् त्वं तथापि शप्तोऽसि कोपयुक्तेन वै मया ।
श्रूयतां पृथिवीपाल! तस्य हेतुं ब्रवीमि ते ॥६९॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्र एव तथैव च ।
वर्णा एते हि चत्वारः कथिताः शास्त्रपारगैः ॥७०॥
सर्वेष्वेषु च वर्णेषु ब्राह्मणः श्रेष्ठतां गतः ।
सर्वे तेन नियम्याः स्युरन्ये वर्णास्त्रयः खलु ॥७१॥
रक्षको भक्षकश्चेत् स्यात् कथं धर्मस्थितिर्भवेत् ।
तस्मादल्पेऽपराधेऽपि दण्डनीयो महान् सदा ॥७२॥
येन न स्यात् पुनस्तेन पापकर्म कृतं क्वचित् ।
क्षत्रियः सर्ववर्णानां धर्मतो रक्षकः स्मृतः ॥७३॥

जो तुम क्रोध युक्त मुझ से शप्त है तो सुनो ! हे राजन्! तुम्हें उस हेतु को कहता हूं ।६८।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद ये चार वर्ण शास्त्रपारगों से कहें हुए हैं ॥६९॥

सभी वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ट है अन्य वर्ण नियत रूप ब्रह्मण से राजा से नियमनीय हैं ॥७०॥

रक्षक यदि भक्षक हो जाय तो धर्म की स्थिति किस प्रकार होगी, इस हेतु से थोडे अपराध में भी सर्वदा से रक्षक दण्ड-योग्य है । जिससे पाप कर्म उससे पुनः कहीं और कभी आच-रित न हों ॥७१॥

सबवर्णों में क्षत्रिय धर्म से रक्षक कहा गया है, जो नाश से रक्षा करे वही क्षत्रिय कहा जाता है ।७२।

यः क्षतात् त्रायते सर्वान् क्षत्रियः स हि कथ्यते ।
स्वाधिकारात् प्रमत्तश्चेद् भवेद् राजन्यकः क्वचित् ॥७४॥
देवेन ब्राह्मणेनापि दण्डनीयः स तत्क्षणम् ।
अपराध विहीनोऽयं मृगो राजंस्त्वया हतः ॥७५॥
ततः शप्तोऽसि भूपाल ? धर्मं पालयता मया ।
विधिना चेत्त्वयाऽऽमासं राममन्त्रस्य नित्यशः ॥७६॥
जपः स्याच्चेत्कृतो भूप ? वारं दशसहस्रकम् ।
शापात्प्रमुच्य भूपाल ? शुद्धां बुद्धिं समेत्य च ॥७७॥

अपने अधिकार से यदि प्रमादयुक्त हो तो वह कहीं क्षत्रिय हो सकेगा ? अर्थात प्रमादी क्षत्रिय नहीं होगा वह सभी क्षण में देव से और ब्राह्मण से दण्डयोग्य होता है ॥७३॥

हे भूपाल राजन् ? तू ने निरपराध हरिण को मारा है उस हेतु से मुझ से शप्त हुए हो ॥७४॥

हे भूप ! विधि से मासपर्यन्त प्रतिदिन यदि दश हजार वार यानि अयुत श्रीराम मन्त्र राज का तुझ से जप किया जाय अर्थात् जपकर ॥७५।

तो राजन् शाप से छुटकर तू शुद्ध बुद्धि पाकर अपनी प्रजा को धर्म से पालन करता हुआ और सौ वर्ष जीवित रहेगा ॥७६॥

ऐसा सुनकर निश्चितव्रत धर्मात्मा वह राजा 'वित्सल' भूतल में साष्टाङ्ग प्रणाम कर प्रार्थना करने लगा कि ॥७७॥

धर्मेणस्य प्रजारक्षत् जीवसे शरदः शतम् ।
एवं श्रुत्वा स धर्मात्मा भूपतिर्निश्चलव्रतः ॥
प्रार्थयामास साष्टाङ्गं प्रणिपत्य महीतले ॥७८॥

राजोवाच

महती ते दया देव यत् त्वया पापनाशनम् ।
प्रतीज्ञाय महादुःखे पतितं मामरक्षयत् ।७९। ॥
नमस्ते देवराजाय नमस्ते शोकहारिणे ।
नमस्ते धर्मरूपाय नमस्ते गजरूपिणे ॥७९॥
नमस्ते सर्वगायस्तु नमस्ते बुद्धिशालिने ।
नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते शक्तिशालिने ॥८०॥
भगवन् ! श्रूयतामेषा प्रार्थना कृपया त्वया ।
समीहा जायते श्रोतुं साकल्येनैव तं विधम् ॥८१॥

राजा ने कहा-कि—हे देव! आप की बड़ी दया है जो पाप-नाशन उपाय बताने में स्वीकृति प्रदान कर महादुःख में पडे हुए मेरी रक्षा की॥७८॥

आप जैसे देवराज को नमस्कार हो शोकहारी आपको नमस्कार हो धर्मराज रूप को नमस्कार हो गज रूप में आये आप कों नमस्कार हो ॥७९॥

आप जैसे सर्व गामी को नमस्कार बुद्धिमान आप को नमस्कार हो हे सर्वरूप आपको नमस्कार हो शक्तिशाली प्रभु आप को नमस्कार हो ॥८०॥

येनैव विधिना मन्त्रं जपच्छापात तव प्रभो ! ।
मुक्तः स्यां कथ्यतां सर्वः सप्रश्नो विधिः स च ॥८२॥

गजउवाच

राजञ्छुद्धमनाभूत्वा श्रूयतां [शृणु त्वं] वचनं मम ।
यस्माच्च शापमोक्षः स्यात् तं विधिं ते दिशाम्यहम् ॥८३।
गंगातीरं समासाद्य तत्रैवाहश्चतुष्टयम्
निर्जलेन निरन्नेन संस्थातव्यं त्वया नृपः ॥८४।
दर्शनं स्पर्शनं सर्वमन्येषां परिवर्ज्य च ।
केवलं रामरामेति मनसा संजयन् नृपः ॥८५।

हे भगवन् मेरी एक प्रार्थना कृपया सुनिये उस रामभक्ति श्रीराममन्त्रानुष्ठान के विधि को संपूर्णरूप से सुनने की इच्छा होती है ॥८१॥

जिससे की बिधि से श्रीरामचन्द्र मन्त्र राज को जपता हुआ मैं आप के दिये शाम से मुक्त हो जाऊगा वह विधि विस्तार पूर्वक मुझे बताएं ॥८२॥

हाथी ने कहा हे राजन् शुद्ध मन हों तुम मेरा वचन सुनो जिसविधि से तेरा मेरे आप से छुटकारा होगा वह विधि तुझे बतलाता हूँ ॥८३॥

हे नृप गङ्गातीर पर जाकर वही चार दिन विशुद्ध अन्तः करण होकर बिना अन्न तथा विना जल रहना ॥८४॥

दुसरों का दर्शन और स्पर्श छोडकर केवल राम राम यह मन्त्र मनसे वाणी को रोक कर जपता हुआ चार दिन बिताओ ॥८५॥

प्रसन्नवदनो भूत्वा मूकवच्चव समाचरन ॥८६।
चतुरोदिवसानेतान् नयत्वं वीचि संयतः ।
पञ्चमे दिवसे प्राप्ते मुहुर्ते ब्रह्मणः शुभे ।
स्नात्वा भूप ! शुचिर्भूत्वा परिधाय सुवाससी ॥८७॥
गंगाया मृत्तिकां शुद्धामादायातिसुखावहाम् ।
एकां च वेदिकां कुर्या ह्रस्वां कोणत्रयीयुताम् ॥८८॥
प्रत्येकं तु भुजस्तस्या हस्तत्रयप्रमाणवान् ।
सरलो श्लक्ष्णः कार्यो दर्शनीयो विशेषतः ॥८९॥
पूर्वाभिमुख आ [भा] स्थाय तस्या मध्ये प्रयत्नतः ।
कुण्डमेकं निखातव्यं वितस्तिपरिमाणवत् ॥९०॥
कुण्डस्य दक्षिणे भागे पूर्वतः पश्चिमां प्रति ।
रेखांच सरलां कुर्यास्तत्र विन्दून् समालिखेः ॥९१॥

गूंगे के समान प्रसन्न मुख होकर चार दिन बिताना पांचवे दिन में ब्राह्म मुहूर्त—पुण्य समय में स्नानकर पवित्र होकर शुद्ध दो नवीन वस्त्र पहन कर ॥८७॥

गङ्गा की शुद्ध चिकनी मिट्टी लेकर एक छोटी वेदिका तीन-कोन वाली वनाना ॥८८॥

उस वेदिका के तीन भुज तीन २ हाथ के प्रमाण वाले सीधे२ चिकने २ विशेष रूप से देखने योग्य सुन्दर वनाना ॥८९॥

पूर्व दिशा के तरफ मूह कर स्थित हो उसके बींच में यत्न से वित्त के प्रमाण एक कुण्ड खनना यानी खोदना ॥९०॥

कुण्ड के दक्षिण भाग में पूर्व से पश्चिम के तरफ सीधी रेखा करना वहां विन्द लिखना ॥९१॥

प्रतीच्यास्तु समारभ्य पूर्वां प्रति तथोत्तरे।
कृत्वा सुसरलां रेखां रा पदानि लिखेर्बहु ॥९२॥
यावन्ति राऽक्षराणि स्युतावन्तो बिन्दवः स्मृताः ।९३।
मध्ये तिलान् समाकीर्य कृष्णाञ्छुद्धान् समीक्षितान्
कुर्या यवानामाक्षेपं तेषामुपरि सर्वतः
वहिश्चोपरि भागे तु रां बीजं च समालिखेः ॥९४॥
उतरे राऽक्षरं स्थाप्यं दक्षिणे मेति स्पष्टतः ।
पश्चिमे केवलं शून्यं सावकाशं च विन्यसेः ॥९५॥
मासं दशसहस्त्राणि विशुद्धः प्रत्यहं जपेः ।
राममन्त्रं महामन्त्रं सावधानेन चेतसा ॥९६॥
मासान्ते प्रातरुत्थाय स्नानादीनि विधाय च ।
पूर्वतो निर्मिते कुण्डे होमं कुर्या अतन्द्रितः ॥९७॥

मध्य वाले मे तिल जो शुद्ध परिस्कृत हों उस पर छीट कर पश्चिम दिशा से सुरू कर पूर्वदिशा पर्यन्त और उत्तर तरफ में अत्यन्त सीधी रेखा कर अधिक 'रा' यह शब्द लिखना ९२

जितने रा अक्षर लिखे उतने हो बिन्दु लिखना चाहिये ।९३। उसके ऊपर जब चारो तरफ छीटे तथा उसके वाहर और ऊपर भाग में रां बीज लिखे ॥९४॥

उत्तर में रां अक्षर दक्षिण में म स्पष्ट लिखे पश्चिम में अवकाश सहित शून्यरखे ॥९५॥

इस प्रकार एक मास विशुद्ध होकर प्रतिदिन दश हजार सावधान मन से श्रीराममहामन्त्र जपना ॥९६॥

ब्राह्मणान् भोजयित्वा च विमुक्तः कल्मषाद्ध्रुवम् ।
भविष्यसीति भो राजन् ! पुत्रोऽपि च भविष्यति ॥९८॥
तेजस्वी विजिताक्षश्च पुरुषार्थपरायणः ।
परमार्थ समायुक्तः शत्रुसंक्षय कारकः ॥९९॥
सुन्दरः सरलो विद्वान् वाग्मी धर्मिष्ठ ऐश्वरः ।
चक्रवर्ती महाबाहू राजशक्तिसमन्वितः ॥१००॥
स्निग्धः सौजन्यवाञ्छुद्धः प्रजानामनुरञ्जकः ।
प्रजाप्रियः प्रजापालः पुत्र स्ते प्रभविष्यति ॥१०१॥
इत्येवं गजदेवस्य वचः श्रुत्वा स भूपतिः ।
प्रसन्नः शिरसा नागं प्रणनाम पुनः पुनः ॥१०२॥

महीने के अन्त में प्रातः काल में उठकर स्नान आदि नित्य-कर्म कर पहले से वनाए हुए कुण्ड में आलस्य रहित होकर होम करना पुनः ब्राह्मणभोजन कराना तब पाप से मुक्त अवश्य हो जाओगे । हे राजन् ! बाद में पुत्र भी होगा ॥९७॥

वह तेजस्वी जितेन्द्रिय धर्मादिपुरुषार्थों में तत्पर परमार्थ से संयुक्त शत्रुओं का नाशक होगा ॥९८॥

और सुन्दर सरल वाणी वोलने वाला तथा धार्मिकऐश्वर्यशाली चक्रवर्ती महाभुज श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति से युक्त सर्वराज शक्ति से युक्त ॥१००॥

सुजन शुद्ध प्रजाओं को खुश करने वाला प्रजाओं का बहुत प्रिय प्रजा रक्षक तेरा पुत्र होगा ॥१०१॥

ऐसा वचन उस हाथी का वह 'वत्सल' राजा सुनकर प्रसन्न हो शिर से हाथी को वार वार प्रणाम किया ॥१०२॥

का व्यावर्तन वा प्रत्याख्यान हो। अत एव वैसा भाष्य करना सूत्राक्षरार्थ विरोधी एतावता अप्रमाणिक है।

पुनः वेदान्त सूत्र ने स्वतः प्रत्यक्ष और अनुमान को भी प्रमाण माना है—"प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् —१। ३।२८, प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् प्रत्यक्षानुमाने —४—४—२० अतएव प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों ही प्रमाण ब्रह्म सूत्र को मान्य और स्वीकृत है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी ब्रह्म सूत्र द्वारा अनुमान प्रमाण को आधार मानकर सिद्धि करने की बात लिखी है— "ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः गी० १३—४ हेतु नाम है अनुमान का—" हेतुरनुमानं—वा० भा० १-१- १।"

जिस प्रकार न्याय सुत्र कार महर्षि गौतम ने अनुमान के द्वारा ईश्वर और उसके फलदातृत्व को सिद्ध किया है— "ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्य दर्शनात्- न्या. सू. ४-१-१९ ठीक उसी प्रकार ब्रह्म सुत्र कार महर्षि वादरायण ने भी अनुमान के द्वारा ईश्वर और फलदातृत्व को सिद्ध किया है " फलमत उपपत्तेः श्रुतत्वाच्च। धर्मं जैमिनिरत एव पूर्वं तु बादरायणो हेतुव्यपदेशात्॥ ब. सू. ३। ३७—४० यहाँ स्पष्ट शब्द " हेतु व्यपदेशात् इस अनुमान के द्वारा ही ईश्वर एवं उसके फलदातृत्व को बादरायण ने सिद्ध किया ठीक उसी प्रकार केनोपनिषद् के वाक्य भाष्य में शंकराचार्य जी ने भी " कर्म फल प्रदाने ईश्वरस्य प्राधान्यम् शीर्षक में बडे घोटाटोप के साथ अनुमान द्वारा ईश्वर और उसके कर्मफल प्रदातृत्व की सिद्धि की है — सेव्यबुद्धिवत् सेवकेन सर्वेश्वर बुद्धौ तु संस्कृतायां

Regd. No. GAMC 145

यागादि कर्मणा विनष्टेऽपि कर्मणि सेव्यादिव ईश्वरात्फलं कर्तुंभवेत्...
...न तु पुनः पदार्थ शक्यशतेनापि देशान्तरे कालान्तरे वा
स्व स्वं स्वभावं जहाति । नहि देश कालान्तरेषु चाग्निरनुष्णो
भवति एवं कर्मणोऽपि कालान्तरे फलं द्विप्रकारमेवोपलभ्यते । बो...
क्षेत्र संस्कारापेक्ष विज्ञ ...तर कर्त्रपेक्ष फलं कृष्यादि विज्ञानवत्सेव्य
बुद्धिसंस्कारापेक्ष फलं च सेवादि । यागादेः कर्मणः स्तथाविज्ञ...
वत्कर्त्र पेक्षफलत्वानुपपत्तौ कालान्तर फलत्वात् कर्म देश का...
निमित्त विभाग बुद्धिसंस्कारापेक्षं फलं भवितुमर्हति: सेवादिकर्म...
रूप फलञ्च सेव्य बुद्धिसंस्कारापेक्ष फलस्येव । तस्मात्सिद्धः सर्व...
ईश्वरः सर्वजन्तुबुद्धि कर्मफल बिभाग साक्षी सर्वभूतान्तरात्मा ।"

क्रमशः

मुद्रक:-श्रीरामानन्द प्रिंटिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद-२...

त्रिदण्डि संस्थान श्रीशेषमठ-धर्मप्रचार विभागसे धर्मप्रचारार्थ प्रकाशि...

प्रेषक-श्री कोसलेन्द्र मठ, सरखेज रोड
पो० पालड़ी, अहमदाबाद-३८०००७
ग्राहक ग्रा. नं.

प्रति
१७७ रजिस्ट्रार
गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार (यु. पी.)